ब्रह्महत्या होनेके सम्बन्धसे जिसकी बुद्धि विपर्यय हुई है (पाप कर्मों से अवश्य बुद्धि विपरीत होती है) ऐसा जो वैशंपायनऋषि सो याज्ञवल्क्यप्रति कहताहुआ कि हे याज्ञवल्क्य! मैं मानता हौं कि तूबड़ा गर्विष्ठ है और इन ब्राह्मणोंके बालक विद्यार्थियों का अपमान करताहुआ है अतएव अब तू मुझसे अध्ययन करीहुई विद्याको त्यागकर, न करेगा तो तेरे अर्थ शीघ्रही मरणका हेतु शाप देऊंगा। इसप्रकार वैशंपायनने क्रोधित हो कहा तब याज्ञवल्क्य ऋषि उस शापके भय से तिस अध्ययन करीहुई वेद विद्याको गज क्रियावत् योगबलसे वमन करके त्यागताहुआ, तब तिस याज्ञवल्क्य करके वमन करीहुई विद्याको अन्य कईएक ब्राह्मणोंके बालक विद्यार्थियोंने अपने गुरुकी आज्ञासे अपने बिषे तीतर नाम पक्षी विशेषका रूपधारके वो विद्या ग्रहणकर लिया, तब से उस विद्याका नाम तैत्तिरीयविद्या हुआ, अरु जिन ब्राह्मणों ने उस विद्या को धारण किया सो सर्व ब्राह्मण तैत्तिरीय शाखा वाले विख्यात हुये। अरु उनके वंशमें जो हैं सो आज पर्यन्त तैत्तिरीय शाखावाले कहेजाते हैं। औ तिस तैत्तिरीय शाखाका यह उपनिषद् भी तैत्तिरीय उपनिषद् कहाजाता है] व्याख्यान करनेको इच्छतेहुये भगवान् भाष्यकार तिस तैत्तिरीय उपनिषद् बिषे प्रतिपादन किया जो ब्रह्म सो जगत्के जन्मादिकके कारणपने रूप तटस्थलक्षणसे (जो लक्षण कदाचित् (किसी कालबिषे) हुआ व्यावर्तक (पृथक्करनेवाला) होय तिसको तटस्थलक्षण कहतेहैं।' जैसे देवदत्तके गृहपर बैठा जो काकनाम पक्षी सो यावत् उसगृहपर स्थित है तावत् उसगृहको अन्यगृहोंसे पृथक्करके लखावताहै कि देखो जिसगृहपर काकनाम पक्षी बैठा है वो देवदत्तका गृह है, इस प्रकार वो काकपक्षी देवदत्तके गृहका उपलक्षण है, तैसेही जगत्के जन्मादिकोंका कारणपना जो है सो कदाचित् (अज्ञानदशा बिषे वा सृष्टिकालबिषे) हुआ वेदबाह्यमतवादियोंकरके कल्पित जो परमाणु प्रधानादिक जगत्के कारण ति-

गुरुस्तुति ॥

यैरिमे गुरुभिः पूर्वं पदवाक्य प्रमाणतः । व्याख्याताः सर्ववेदान्तास्तान्नित्यंप्रणमाम्यहम् १ ॥

नसे व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) होनेसेसोब्रह्मकातटस्थलक्षण है] मन्दबुद्धिवाले पुरुषों के अर्थ सामान्यभावकरकेलक्ष्यकराया है औ " सत्यं ज्ञानमनन्तंब्रह्म " इत्यादि प्रमाण से सत्यचैतन्य-त्वादि स्वरूप लक्षण से [जो लक्षण सर्वदाहुआ व्यावर्त्तकहोय तिसको स्वरूप लक्षण कहते हैं, जैसे सर्वकालवर्त्तमान हुआ देवदत्त के गृहका अन्यगृहों से व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) धवल (श्वेत) पना वा ऊंचापना सो उस देवदत्तके गृहका स्वरूप लक्षण है, तैसे सत्य ज्ञानादि रूपपना जो है सो ब्रह्मविषे सर्वदा स्वरूप भूत वर्त्तमान हुआ अविद्यादिकों से व्यावर्त्तक (पृथक् करनेवाला) होनेसे सो ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है] विशेषकरके निश्चय किया है, तिस ब्रह्म को नमस्कारके मिसकरके संक्षेपसे लक्ष करावे हैं " यस्माज्जातंजगत्सर्वंयस्मिन्नेव विलीयते । येनेदंधार्य्यतेचैव तस्मैज्ञानात्मनेनमः " { जिससे सर्व जगत् जन्मता है औ जिसविषे लीनहोता है औ जिसकरके यह धारण किया है तिस ज्ञानात्मा को नमस्कार करते हैं } अर्थात् जिस ज्ञानस्वरूप परमात्मा परब्रह्मसे यह समस्त कार्य कारण नामरूपात्मक जगत् उत्पन्न होता है औ जिस करके धारणाकिया वर्त्तताहै औ परिमाणमें जिसविषे लीनहोता है तिस महाकारण परमाश्रय सर्वाधिष्ठानको नमस्कार करते हैं ॥

हे सौम्य ! अब गुरुभक्तिको विद्याकी प्राप्तिविषे जो मुख्यतासे अन्तरंग साधनपनाहै तिसको प्रकट प्रसिद्ध करनेकेअर्थ गुरुनको प्रणाम करते हैं जिन गुरुओंकरके पदवाक्य औ प्रमाण (व्याकरण मीमांसा, न्याय) इनकोविवेचनसे यह सर्ववेदान्तशास्त्रका व्याख्यानकरते हैं तिनसद्गुरुओंके अर्थ मैं नित्य २ प्रणामकरताहौं

तैत्तिरीयकसारस्यमयाऽऽचार्य्यप्रसादतः । विस्पष्टार्थरुचीनांहि व्याख्येयं सम्प्रर्णायते २ ॥

हे सौम्य! अब व्याख्यान करने को इच्छित जो ग्रन्थ तिसका कथन करते हैं [मनुशास्त्रके बोधवाले पुरुषों को पदोंसेही पदों के अर्थ की स्मृति का सम्भवहै ताते, अरु पदोंकरके स्मरणहुये पदार्थोंके सम्बन्ध कोही वाक्यार्थ रूपताहै ताते,औ सूत्रकारकरके उपनिषदोंके तात्पर्य को निरूपणहुआ होने से भिन्न व्याख्यान का करना व्यर्थ है। यह शङ्का करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि अशास्त्रज्ञ मन्दबुद्धिवाले पुरुषोंको स्वतःही सर्व पदों के अर्थों की स्मृति होने का असम्भवहै ताते, उपनिषद् गत सर्व पदों के अर्थोंके विशेष करके निःसंशय ज्ञान होने को इच्छते हैं तिनके उपकारार्थ पृथक् व्याख्यान करनेकाप्रारम्भहै, " विस्पष्टार्थरुचीनांहि " { विशेष करके स्पष्ट अर्थकी रुचीवाले के अर्थ } मयाऽऽचार्यप्रसादतः" { मुझकरके आचार्यके प्रसादसे } " तैत्तिरीयकसारस्य व्याख्येयं सम्प्रणीयते " { तैत्तिरीयक सारका व्याख्यान सम्यक् कियाजाताहै } अर्थात् विशेषकरके स्पष्ट अर्थ के जानने की इच्छावाले पुरुषों के उपकारार्थ मुझकरके आचार्यके प्रसादसे इस तैत्तिरीय उपनिषद्के सारका सम्यक् प्रकार व्याख्यान कियाजाता है॥ हे सौम्य! उक्त प्रकारही इस समय प्रायः बहुत से मनुष्यों की संस्कृत विद्या में प्रवृत्ति न होनेसे उनको पद पदार्थों का ज्ञान रंचक मात्रभी नहीं अरु उन सर्व पुरुषों में से किसी एक पुण्यशील पुरुषों को अपने पूर्व के अनेक जन्मों के उत्तम कर्म संस्कारोंके प्रभाव से उपनिषद् विद्या करके प्रतिपाद्य जो आत्मतत्त्व तिसके जानने की इच्छा होती है तिन पुरुषों के उपकारार्थ इस सांप्रतकालके श्रेष्ठ महात्मा पुरुषों ने उपनिषदादि बहुत से संस्कृतग्रन्थों को देशीय भाषावाणी में लिखा है, यह उन महात्मा पुरुषोंका सर्वजनों पर परम उपकार है। हे प्रियदर्शन! यह आत्म-

विद्या सनातनसेही अतिगुह्य औ दुःप्राप्यहै, इस विद्याका कहने सुननेवाला लाखों मनुष्यों में कोई एक बिरला होता है, और श्रुति स्मृति भी ऐसाही कहती है। तथाच " श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः । आश्चर्योक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः " " मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यततिसिद्धये। यततामपिसिद्धानां कश्चिन्मांवेत्ति तत्त्वतः " इत्यादि, अतएव अब सावधानचित्त करके इस तैत्तिरीय आदि उपनिषद् ब्रह्मविद्या को सम्यक्प्रकार श्रवण मनन निदिध्यासन करो २ ॥

अथ शिक्षाध्यायरूपा प्रथमावल्ली प्रारभ्यते ॥

हरिः ॥ ॐ ॥ शं नो मित्रः शं बरुणः शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु। अवतुमाम् । अवतु वक्तारम्। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! [कर्म्मके विचारसेही उपनिषद्को प्राप्त अर्थवाला होनेसे और उपनिषद्का प्रयोजन जो मोक्ष तिसके कर्म्म करके ही सम्भव से इस उपनिषद्का पृथक् व्याख्यान करनेका आरंभ करना युक्तनहीं। इस शङ्काको दूर करनेके अर्थ यहां प्रथम कर्म्मकांड के अर्थ को कहते हैं।)

हे सौम्य, ! यजुर्वेद विषे इस तैत्तिरीय उपनिषद्से पूर्व ग्रंथ विषे सञ्चित पापों के क्षयार्थ नित्यरूप अरु फलार्थी पुरुषों के काम्य रूप कर्म समाप्त कियेहैं [कर्म्मकाण्डके अर्थको कहके, वहां अविचार किये उपनिषद्के अर्थ को यहां कहतेहैं] अब इस तैत्तिरीय

उपनिषद् बिषे कर्म्मके अनुष्ठानके हेतुकी निवृत्तिके अर्थ ब्रह्मविद्याका आरम्भ करतेहैं। [कर्मके अनुष्ठानका हेतु नियोग (नियम) है तिसको प्रमाण करके सिद्ध होने से विद्यासे विरोध नहींहै। यह शङ्का करके कहे हैं। यहां यह तात्पर्यहै कि इसका यह साधन है, इसप्रकार प्रथमशास्त्र करके बोधन कियाहै। जिसकी जहां अभिलाषा है सो कामना से तहांहीं प्रवृत्त होता है, एतदर्थ नियोग को प्रवृत्ति करनेकी सम्भावना भी नहीं] कर्म्मका हेतु कामना होतीहै क्योंकि पुरुषोंकी प्रवर्त्तकहै ताते। अरु पूर्णकाम पुरुषोंकी कामना के अभावहुये अपने आप आत्मा बिषे स्थिति होनेसे, कर्म्म बिषे प्रवृत्तिका असम्भवहै। [वांछित विषयकी प्राप्तिकी कामनाकी निवृत्ति बिषे हेतु आत्मविद्या नहीं है, अतएव कर्म्मके हेतु की निवृत्तिके अर्थ आत्मविद्याका आरम्भ क्यों करतेहो, यह शङ्का करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि वाञ्छित विषयकी प्राप्ति से तिसकाल बिषे कामनाकी शान्तिमात्रही होती है, परन्तु कामना का नाश नहीं होता, क्योंकि पुनःभी विषयादिकों की आकांक्षा आदिक देखने बिषे आवते हैं। अरु निरंकुश "। आत्मैववस्तुनान्यततोऽस्तीति "। (आत्माहीवस्तु है ताते अन्यनहीं) इस रूपवाले आत्माकी कामना भी आत्मकामपने के होने से होती है, क्योंकि वाञ्छित वस्तुकी इच्छाका अभावहोने से। औ जिसकरके आत्मा के अद्वैत परमानन्दरूपको न जाननेवालाही पुरुष भिन्न विषयों को देखतसन्ते कामना करताहै, ताते कामकोआत्म विषयक अविद्यारूप मूलवाला होने से एक आत्मविद्याही तिसकी निवृत्ति का हेतुहै] आत्मा की कामना के होने से पूर्णकामना होती है [आत्मविद्या कामनाकी विरोधी होवे तो अस्तु, परन्तु कर्म्म के हेतुकी निवृत्तिके अर्थ ब्रह्मविद्याका आरम्भ करतेहैं इसप्रकारजो तुमने कहा सो किस प्रयोजन से कहा। इस शङ्कापर कहते हैं यहां यह सिद्धहुआ कि परमानन्दमयरूप परमात्मा को लेके यह श्रुति कही है। इस प्रकार प्रथम कर्म्मकाण्ड करके अप्राप्त अर्थ-

वाली होनेसे, अरु कर्म्म से अघटित जो मोक्षरूप प्रयोजन तिस वाली होने से उपनिषद्के व्याख्यान का आरम्भ घटितही है] आत्माही ब्रह्म है तिसके जाननेवाले को परब्रह्मही प्राप्ति आगे कहेंगे। अतएव अविद्या की निवृत्ति के हुये अपने आत्मा विषे स्थितरूप परब्रह्मकी प्राप्ति होवे है, क्योंकि "। अभयं प्रतिष्ठां विन्दते।" "। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामतीत्यादिश्रुतेः।" (शंकाको दूरकरके इस आनन्दमय अभय प्रतिष्ठा (आश्रय) रूप आत्मा को प्राप्त होता है) इस श्रुति के प्रमाणसे [पुनः आरंभवादी के प्रयोजन को कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि आत्यन्तिक आगामी शरीरकी अनुत्पत्ति के होने से स्वरूप से स्थितिका नाम मोक्षहै, अरु शरीरकी जो अनुत्पत्तिहै सो शरीरोत्पत्ति के हेतु के अभावसेही होवेगी, तब ज्ञान के अर्थ उपनिषद् के आरंभसे क्या प्रयोजनहै]॥ शङ्का, जो कहे काम्य अरु निषिद्ध कर्मके अनारंभ से, अरु प्रारब्धकर्मका भोगकरके क्षयहोनेसे अरु नित्य विहित कर्मों के अनुष्ठानसे सञ्चितादि पापों के अभाव होनेसे, विनाही प्रयत्नके किये स्वस्वरूप से स्थितिरूप मोक्ष होवे है [यहां अन्य मतको भी कहते हैं, यहां अर्थ यह है कि जे स्वर्ग के साधक ज्योतिष्टोमादिक कर्म हैं सोई मोक्ष के साधन हैं, क्योंकि स्वर्ग पद के अर्थरूप निरतिशय प्रीति के मोक्ष से अन्य ठिकाने (मोक्षका) असम्भव है ताते, क्योंकि "। स्वर्ग से अन्यस्थानमें।" शरीरके होते क्लेश अवश्य होता है ताते] अथवा स्वर्ग शब्दकी वाच्य निरतिशय प्रीतिहै सो कर्म्मरूप हेतुवाली है, ताते कर्म करकेही मोक्ष होता है ॥ सो कथन बने नहीं [अब एक भविकवादीके पक्षरूप प्रथम करी शंकावाले मतका निषेध करते हैं, यहां यह अर्थ है कि यद्यपि मुमुक्षु वर्त्तमान शरीर करके काम्य अरु निषिद्ध कर्मों का आरम्भ न करेगा, तथापि। अनेकजन्मों के। अनेकप्रकारके संचित कर्मों के सम्भव से पुनः शरीरोत्पत्ति के हेतु का अभाव असिद्ध है] क्योंकि कर्म्मको अनेक रूपता है ताते,। अरु जिस

करके फल के आरंभक औ अनेक जन्मान्तर बिषे किये विरुद्ध फलवाले [विशेष करके सर्वही संचित कर्म मिलके एक शरीरकी '। उत्पत्तिका ।' आरंभकरेहैं तहां सर्वकर्मोंका उपभोगसे क्षयहोने करके संचित कर्मही नहीं हैं, इस शंका के निवारणार्थ यहां ,विरुद्ध फलवाले, ऐसा कहा है। यहां यह अभिप्रायहै कि स्वर्ग नरकरूप फलवाले ज्योतिष्टोमादि अरु ब्रह्महत्यादि कर्मों के एकही देहबिषे भोगकरके क्षय होनेका असम्भवहै ताते, अरु विशेषकरके इसजीव को एकही शरीर में सर्वकर्मों के फलों के अनुभव होनेबिषे प्रमाण का अभाव है ताते, बलवान् कर्मकरके प्रतिबंध को प्राप्तहुये दुर्बल कर्मकी स्थिति सम्भवे हैं] अनेक कर्म सम्भवे हैं, एतदर्थ उनकर्मों बिषे फलके आरम्भसे रहित कर्मों के एक जन्मबिषे उपभोगसेक्षय होने का असंभवहै ताते, शेष कर्मरूप निमित्त से शरीर के आरम्भ होने का संभव अरु शेष कर्मों के सद्भावकी सिद्धि होती है। क्योंकि "। तद्य इह रमणियचरणा अभ्यासोह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् "। "। ततः कर्मशेषेणेत्यादि "। श्रुति स्मृतियों करके, जो यहां शुभ आचरण करते हैं सो शुभ योनिको प्राप्तहोते हैं, अरु, तिसके पीछे कर्म शेषकरके, । अर्थात् मरण को पाय अपने कर्म फलका अनुभव करके पुनः कर्म शेषरहे जन्म को पावता है । इस प्रकार अनेक प्रमाण हैं ॥ अरु जो ऐसा कहे कि, इष्ट अनिष्ट फलवाले अरु फल के आरंभ से रहित कर्मोंके क्षयार्थ नित्य कर्म हैं, सो कथन बने नहीं, क्योंकि तिस नित्य कर्म के न करने बिषे प्रत्यवाय होनेका श्रवण है ताते । अरु पापशब्द जो है सो अनिष्ट फलका वाची है । अरु नित्यकर्म के न करने रूप निमित्तवाले दुःखरूप आगामी पाप के निवारणार्थ नित्यकर्म हैं, परन्तु फल के आरंभ से रहित संचित कर्मों के क्षयार्थ नहीं, इसप्रकार अंगीकार करने से यद्यपि फल के आरंभ से रहित कर्मों के क्षयार्थ नित्य कर्मों को म निये, तथापि वो अशुभ संचित कर्मोंकोही क्षयकरेंगे शुभको न क्योंकि नित्य कर्मों का अरु शुभ कर्मोंका परस्पर में विरो

ताते। अरु इष्टफलवाले कर्मको शुभरूप होने से तिसका नित्य विहित कर्मों से विरोध नहीं संभवे है, शुभ अरु अशुभकाही विरोधयुक्त है। अरु कर्मरूप हेतुवाले भोगोंकी ज्ञान के अभावहोनेसे निवृत्तिका अभाव है ताते सर्वकर्मों के क्षयका संभवनहींहै। जिस करके अनात्मवेत्ता पुरुषकोही काम (कामना) है क्योंकि वो अनात्मरूप फलकोही विषय करनेवालाहै ताते। अरु अपने आत्मा विषे काम (कामना) का असम्भव है क्योंकि अपनाआप आत्मा नित्य प्राप्त है ताते, याते आप आत्मा परब्रह्म है ऐसा कहा है। औ नित्यकर्मों का जो न करना सो अभावरूप है, तिस अभाव रूप कर्म से भावरूप पापका होना असम्भव है। [" अकुर्व्वन् विहितंकर्म निन्दितश्च समाचरन्। प्रसज्जंश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतन मृच्छतीति " विहित कर्मों को न करता हुआ, अरु निन्दित कर्मों को करताहुआ, अरु इन्द्रियोंके विषयों विषे आसक्त हुआ, मनुष्य पतनको पावताहै। ऐसे पावताहै इस क्रियापद विषे स्थित शतृप्रत्ययसे कर्मके न करनेको भी पापका निमित्तपना जानाजाता है। यह शंका करके कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब यथावत् नित्य अरु नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान होता तो तब संचित कर्मों का क्षयहोता, अरु जब यह पुरुष विहित कर्म न करेगा तब तिस करके पापहोवेगा, इसप्रकार श्रेष्ठपुरुषोंकरके लक्ष्यकरायाहै। ताते शतृप्रत्ययको अन्यथा अर्थवाला होनेसे तिसके बलकरके विहित कर्मके न करनेविषे पापकी हेतुता जानने को शक्य होतीनहीं] याते पूर्व के संचित पापों से प्राप्तहोनेवाली पापरूप क्रियाका नित्यकर्मोंका न करनाही लक्षणहै, इसप्रकार " अकुर्व्वन्विहितं कर्मेति " विहित कर्मोंको न करताहुआ, । इस वाक्य विषे उक्त शतृप्रत्ययका असंभव नहीं है [. क्रियाके लक्षण अरु हेतुविषे, इसप्रकार शतृप्रत्यय को उभयस्थानमें विधान कियेहुये तिन में क्रियाकी हेतुताकोही तुम क्यों नहीं ग्रहण करतेहो। तहां कहते हैं, इसप्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाण से जानाहै। अरु शतृप्रत्ययते

अभावको हेतु भावके कथनहुये सर्व प्रमाणोंका विरोध होवेगा] अन्यथा अभावसे भावकी उत्पत्तिके कथनसे सर्व प्रमाणोंका विरोध होवेगा। [ननु तुमको भी शुभकर्मके न करने को पाप का लक्षणपना इष्टहै, अरु भट्ट अनुसारियोंकरके अप्रतीतिको अभाव प्रमाका हेतुपना अङ्गीकार कियाहै। अरु नैयायिककरके प्रतिबन्धके अभावको, अरु तिस तिस कार्यके प्रागभावको तिस तिस कार्यकी स्थितिकी हेतुता अङ्गीकार कियाहै, ताते भावरूप वस्तु कोही कारणपना कैसेहै, सो अन्य शास्त्रविषे कहाहै.जैसे भावहै तैसे अभावको भी कार्यवत् कारण माना है। तहां कहतेहैं। हम वेदान्तियों को प्रथम अभावकी स्वरूपसे कारणता इष्टनहीं,किंतु तिसके भानको पापकी सूचकता इष्टहै, अरु तिस रूपकरके पापकी जनकता अङ्गीकार नहीं करते,क्योंकि नित्यकर्मके न करने के ज्ञानविषे पापपनेका अप्रसङ्गहै ताते। अरु भट्टके अनुसारियों को भी कईएक पुरुषोंको ज्ञातहुई योग्य अप्रतीतिको अभाव प्रमाकी हेतुताहै, परन्तु ध्वंसरूप होने करके प्रमाकी हेतुताके हुये अभाव प्रमा को प्रत्यक्षपनेकी प्राप्ति होवेगी। अरु नैयायिकों को भी प्रतिबन्धके अभावको कारणताके हुये अन्योन्याश्रयरूप दोष की प्राप्तिसे प्रमाणिकपना नहीं है। प्रागभावको भी जिस करके यह कार्य पूर्व नहीं रहा, ताते यह अभी उपजा है, इस प्रकारके ज्ञातरूपसे वस्तुका ज्ञापकपनाही है, परन्तु प्रागभावको जनकपना नहीं है। अरु पूर्वकाल को नियमित प्रागभाववाला होने करके जो कारणपना है सो अपने विषे कार्यके वर्त्तमानपनेकी प्राप्तिरूप है, औ तिसको प्रागभावकरके युक्तपना भी अन्यथा सिद्ध है, इसप्रकार तत्त्वालोक नामक ग्रंथविषे कहा है। जिस करके कर्म के न करनेरूप निमित्तवाले पापके निवारणार्थ नित्यकर्म नहीं है,किन्तु " कर्मणापितृलोकः" " सर्वएतेपुण्यलोकाभवन्ति इतिश्रुतेः " कर्मसे पितृलोक होताहै, ये सर्व पुण्यलोकवाले होते हैं, इन श्रुतियोंके प्रमाणसे नित्यकर्मोंका पितृलोककी प्राप्तिफल

है, ताते उक्त आचरणवाले मुमुक्षुको शरीरकी अनुत्पत्ति नहीं होतीहै, ऐसा कहतेहैं] याते अप्रयत्नसे अपने आत्माबिषे स्थित रूप मोक्ष सो बनेनहीं । [अब दूसरे मतका अनुवाद करके दूषण देतेहैं]औ जो कहा कि स्वर्गशब्दकी वाच्य निरतिशय प्रीति को कर्मरूप निमित्तवाली होने से कर्मसे आरंभकियाही मोक्षहै। सो कथन बनेनहीं क्योंकि मोक्षको नित्यपनाहै ताते।जिसकरके कुछभी नित्यवस्तु आरंभनहीं करते हैं,लोकबिषे जो आरंभ करी हुई वस्तु है सो अनित्यही है, एतदर्थ कर्मसे आरंभकिया मोक्ष नहीं है । अरु जो कहे विद्यासहित कर्म्मको नित्यवस्तुके आरंभ करनेका सामर्थ्यहै । सोभी बनेनहीं,क्योंकि नित्य अरुआरंभका विरोधहै ताते, नित्य है औ आरंभ करतेहैं यह कथन विरुद्धहै ॥ अरु जो ऐसाकहे कि जो वस्तु विनाशको प्राप्तहुईहै सोई उत्पन्न होवेनहीं, अतएव प्र्ध्वंसाभाववत् नित्यहुआ भी मोक्ष आरंभही करतेहैं । सोभी बनेनहीं, क्योंकि मोक्ष को भावरूपता है ताते । [वास्तव करके प्र्ध्वंसको कार्यपनाभी नहीं है,ऐसा कहतेहैं।यहां यह भावहै कि प्र्ध्वंसको पृथम, जन्मका आश्रयपनाहै कार्यपना नहींहै, क्योंकि तिसको अन्यरूप कहेहुये भाव विकारवान्पनेके अङ्गीकारसे,अरु पूर्व अविद्यमान वस्तुका सत्ता समवाय आदिरूप धर्म नहीं होताहै, क्योंकि कालके सम्बन्धका अभावहै ताते, अरु अवच्छेद अरु अवच्छेदकभावरूप सम्बन्धको समवाय सम्बन्धरूप मूलवाला होनेसे,अरु अन्यसम्बन्धरूप मूलकरके युक्तताका अदर्शन है ताते। अरु जो कहे कि उत्तरकालके प्र्ध्वंसकी अवच्छेदकतारूप स्वभाव है, तो अन्यकी अवच्छेदकतारूप स्वभाव नहीं होवेगा । ताते अभावको निर्विशेष (एकरस) रूप होनेसे तिस का कार्यपना कल्पनामात्रही है] भावकी विलक्षणताके अभाव से प्र्ध्वंसाभाव भी आरम्भ करते हैं, यह कथन कल्पनामात्र है । जिस करके अभाव जो है सो भावरूप प्रतियोगीवाला है, जैसे अभिन्न एकरूप हुआ भी भाव, घट पट आदिकों करके भेदको

पावताहै, परन्तु घटकाभाव अरु पटका भाव भावरूपकरके एकही है। इसप्रकार अभिन्न एकरूपहुआ भी अभाव, भाव अभाव (उत्पत्तिविनाश) रूपक्रिया अरु गुणके योगसे द्रव्य आदिकोंवत् भेदको पावता है। अरु भाव जो है सो कमल आदिकोंवत् विशेषणवाला नहीं है, क्योंकि विशेषणवान् ताके होने से सो अभाव भावरूपही होवेगा॥ अतएव प्रतियोगीके भेदसे अभावका भेद है यह केवल कल्पनामात्रही है॥ [इसप्रकार प्रध्वंस के दृष्टान्त करके विषय किये मोक्षके नित्यपने को निषेध करके, अन्य प्रकारसे जो आशंका है तिसका निषेध करते हैं। यहां यह अर्थ है कि विद्या अरु कर्मका कर्त्ता नित्यहै, इसप्रकार साधन की नित्यतासे मोक्षरूप साध्यकी नित्यता कहनेको योग्यनहीं है, क्योंकि कर्त्तापनेकी अनिवृत्तिकेहुये मोक्षके अभावका प्रसंग है ताते, अरु कर्त्तापनेकी निवृत्तिके होने से साधनकी नित्यता के अभाव होनेसे मोक्षका विनाश होवेगा] अरु जो ऐसाकहे कि विद्या अरु कर्म्मके कर्त्ताको नित्य होने से, विद्या अरु कर्म्मरूप साधनके प्रवाहसे जनित मोक्षकी नित्यता है। सो कथन बने नहीं, क्योंकि इस प्रकार माननेसे गंगाके प्रवाहवत् कर्त्तापने को दुःखरूप होने से अरु कर्त्तापने की निवृत्तिके हुये मोक्षका भंग होताहै ताते। अरु जिसकरके ब्रह्मज्ञानके विना मोक्ष दुर्लभ है, तिसप्रकार अविद्याकाम अरु कर्म्म के अनुष्ठान हेतुकी निवृत्ति के होने से अपने आत्माविषे स्थितिरूप मोक्षहोवेहै। जाते आपही आत्मा ब्रह्महै तिसके विज्ञान से अविद्याकी निवृत्तिरूप मोक्ष होताहै, अतएव ब्रह्मविज्ञान के अर्थ उपनिषद् का आरम्भ करते हैं [ब्रह्म विद्याविषे उपनिषद् शब्दकी प्रसिद्धि जो है सोभी विद्या कीही मोक्षकी साधनताविषे प्रमाण है, ऐसा कहतेहैं] ब्रह्मविद्या जो है सो तिसविषे तत्पर मुमुक्षुओं के गर्भ जन्म जरा आदिकों को शिथिल करेहै, वा उन गर्भादिकों को विनाशकरे है, वा ब्रह्म को प्राप्त करनेवाली है वा इससे अन्य साधनों से परमश्रेय नहीं

होवेहै, याते ब्रह्म विद्याको उपनिषद् कहते हैं। अरु तिस ब्रह्म-विद्या अर्थवाला होने से इस ग्रंथको भी उपनिषद् कहते हैं। इस प्रकार उपनिषद्के व्याख्यान के आरंभ की संभावना करके अब तिसके पद पद के व्याख्यान का प्रारंभ करते हैं ॥

"शन्नोमित्रः" (मित्र सुखकारीहोवो) अर्थात् प्राणवृत्तिका अरु दिवसका अभिमानी देवतारूप जो मित्र सो हमको सुख-कारीहोवो। तैसेही "शंवरुणः" (वरुण सुखकारीहोवो) अ-र्थात् अपान वृत्तिका अरु रात्रिका अभिमानी देवतारूप जो वरुण सो हमको सुखकारी होवो। तैसेही "शंनोभवत्वर्यमा" (अर्य्यमा सुखकारीहोवो)अर्थात् चक्षुविषे वा सूर्य्यविषे अभिमानीदेवता जो अर्य्यमा सो हमको सुखकारीहोवो। तैसेही "शन्नइन्द्रोबृहस्पतिः" (इन्द्र अरु बृहस्पति सुखकारीहोवो) अर्थात् बलविषे अभिमानी देवता जो इन्द्र, अरु वाणी अरु बुद्धिविषे अभिमानी देवता जो बृहस्पति सो उभय हमको सुखकारी होवो। तैसेही "शंनोविष्णु रुरुक्रमः" (उरुक्रम विष्णु सुखकारीहोवो) अर्थात् बलिराजासे तीनपाद पृथिवी की याचनाकर सर्व राज्यके ग्रहणार्थ विश्वरूप धारके विस्तीर्ण पादों के क्रमवाला अरु पादकाभिमानी देवता जो उरुक्रम उपेन्द्र नामवाला विष्णु सो हमको सुखकारी होवो। इत्यादिक अध्यात्मरूप जो देवताहै सो सर्व हमको सुखकारीहोवो। इसप्रकार सर्व ठिकाने (अनुषंग पिछले पदका सम्बन्ध) है। अध्यात्मरूप प्राण अरु करण (इन्द्रियन)के अभिमानी देवताओं का सुखकारी होनेपना क्यों प्रार्थना करतेहो, इस शंकाकेहुये। तहां कहते हैं। गुरुपादके समीप गमनपूर्वक वेदान्तकेतात्पर्यका निश्चय, श्रवण कहते हैं। अरु श्रवण किये अर्थका अविस्मरण रूप धारणा कहते हैं। अरु शिष्यों के अर्थ निवेदन करना उप-योग कहते हैं] उक्त देवताओं के सुखकारी हुये अप्रतिबन्ध से विद्याका श्रवणधारण अरु उपयोग होता है, एतदर्थ "शंनोभव" (हमको सुखकारी होवो) इसप्रकार तिन पांच देवताओं के

सुखकारी होनेपनेकी प्रार्थना करते हैं ॥ अब ब्रह्मविद्याके जानने की इच्छावाले मुमुक्षु करके ब्रह्मविद्या के श्रवणादिकोंविषे विघ्नों की निवृत्ति के अर्थ वायुको विषय करनेवाली नमस्कार अरु वंदना रूप क्रिया को करताहौं। क्योंकि सर्व क्रिया का फल तिस वायु के अधीनहै ताते "। नमोब्रह्मणे " (ब्रह्मके अर्थ नमस्कार है) "। नमस्तेवायो " (वायुके अर्थ नमस्कार है) अर्थात् ब्रह्मरूपजो वायु है तिसके अर्थ में नमस्कार करताहौं, हे वायु!तेरे अर्थ मैं नमस्कार करताहौं [ब्रह्म अन्य है, वायु अन्य है, इस प्रकार जो कोई शंकाकरे तो, यह शंका करने योग्य नहीं। यहां यह अर्थ है कि , ब्रह्म , ऐसा परोक्षसे कहा है क्योंकि "। सब्रह्मेत्याचक्षत, इतिश्रुतेः " सो ब्रह्महै ऐसा कहते हैं, इस श्रुतिने , स , शब्द करके ब्रह्मको परोक्ष कहा है। अरु वायु शब्दसे प्रत्यक्षपनेसे कथनहै क्योंकि प्राणवायुको प्रत्यक्षता है ताते। अर्थात् एकही ब्रह्म आत्मरूप से परोक्ष है अरु प्राणरूप से प्रत्यक्ष है ताते ब्रह्म अरु वायुका भेदनहीं।' यहां परोक्ष अरु प्रत्यक्ष करके वायुकोही कहते हैं। यद्यपि सूत्र आत्मारूपसे वायु परोक्षहै, तथापि अध्यात्मिक प्राणवायु रूपसे ब्रह्म शब्द का वाच्य हुयेभीवायु का अपरोक्षपना है ऐसा कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि बाह्यके चक्षुरादिक जो हैं सो रूपके दर्शन आदिक लिंगसे अनुमान करने के योग्य हैं ताते, अन्तराय सहित है, अरु प्राणतो अन्तराय के अभाव से साक्षी करके वेद्य है, अरु भोक्ता के समीप है एतदर्थं चक्षु आदिकों की अपेक्षा से वायु प्राण प्रत्यक्ष है।] "। त्वमेव प्रत्यक्षंब्रह्मासि " (तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है) अर्थात् हे वायो!तूही चक्षुरादिकों की अपेक्षाकरके बाह्य समीप औ अंतरायसे रहित प्रत्यक्ष ब्रह्म है। [यहां यह अर्थ है कि वृद्धि करनेवाला होनेसे वायुको ब्रह्म कहते हैं। प्राणके किये श्वास आदिकों से वा भोजनादिकों से शरीरादिकों की वृद्धिहोनी प्रसिद्ध है। जैसे कोई एक राजा के दर्शनकी इच्छावाला मुमुक्षु हृदयगत

ब्रह्मके द्वारपाल को " त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि " तुझ कोही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहौं, इस प्रकार कहताहै, ऐसी ब्रह्मका कथनरूप जो क्रिया है सो प्राणदेवताकी स्तुत्यर्थ है] अतएव मैं " त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मवदिष्यामि " (तुझकोही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहता हौं) अरु जिसप्रकार शास्त्रोंविषे कहाहै, अरु जैसे करनेकोयोग्यहै, ऐसा बुद्धिविषे सम्यक् प्रकार निश्चयकिया जो अर्थ तिसको ऋत कहते हैं सोभी तेरे अधीनहैं एतदर्थ तुझकोही " ऋतंवदिष्यामि " (ऋत कहताहौं) । अरु वाणी अरु शरीर करके सम्पादनहुआ जो सत्यहै सोभी तेरे अधीनही सम्पादन करतेहैं, एतदर्थ (तुझकोही " सत्यंवदिष्यामि " (सत्य कहताहौं) " तन्मामवतु " (सो मुझको (मेरी) रक्षाकरो) अर्थात् सो सर्वात्मा वायुनाम वाला ब्रह्म मुझकरके स्तुतिको प्राप्तहुआ मुझ विद्यार्थीकी विद्या विषे जोड़ने करके रक्षाकरो । अरु " तद्वक्तारमवतु " (सो वक्ता की रक्षाकरो) अर्थात् सोई ब्रह्म आचार्यको वक्तापने के सामर्थ्य विषे जोड़ने करके उसकी रक्षाकरो, " अवतुमाम्, अवतुवक्तारम् " (मुझकोरक्षाकरो (वक्ताको रक्षाकरो) यहां पुनः जो कथन सो मंगलाचरण के आदरार्थ है " सत्यंवदिष्यामि पञ्चच " (सत्य कहताहौं अरु पांच) ॐ सत्यही कहताहौं " शान्तिः शान्तिः शान्तिः " (शान्ति होवे, शान्तिहोवे, शान्तिहोवे) यहां तीनबार जो शान्तिका कथनहै सो विद्याकी प्राप्तिविषे जो 'आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक, यह तीनप्रकार से होनेवाले जे विघ्नहैं तिनकी निवृत्तिके अर्थ है ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः १ ॥

ॐ शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः। स्वरः। मात्रा। बलम्। साम। सन्तानः। इत्युक्तःशिक्षाध्यायः॥ शिक्षां पञ्च॥ २॥ इति द्वितीयोनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः २॥

हे सौम्य! अब अर्थके ज्ञानको प्रधान होनेसे उपनिषद्ग्रन्थके पाठबिषे 'स्वर, उष्म, औ व्यंजनरूप अक्षरोंके अप्रमादरूप प्रयत्नकी निवृत्तिमतहो, इस अभिप्रायसे शिक्षाध्याय का प्रारम्भ करतेहैं। जिस करके शिक्षा करते हैं। ऐसा जो वर्ण आदिकोंके उच्चारण का लक्षण (शास्त्र) तिसको शिक्षा कहते हैं। वा जो शिक्षाको प्राप्तकरेहै ऐसे वर्ण आदिक सो शिक्षा कहते हैं। औ जो शिक्षा है सोई वेदांग बिषे शिक्षा इस नामसे कहा जाता है। "शीक्षांव्याख्यास्यामः" { शिक्षा को स्पष्ट कथन करते हैं } अर्थात् तिसशिक्षाको स्पष्ट जैसेहोय तैसे सर्व ओरसे कथन करतेहैं,। "वर्णः। स्वरः। मात्रा। बलम्। साम। सन्तानः। इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।" { वर्ण, स्वर, मात्रा,बल, साम, सन्तान, ऐसा शिक्षाध्याय कहा है } अर्थात्, तहां अकारादिवर्ण, अरु उदात्त आदिक स्वर, अरु ह्रस्वआदिक मात्रा, अरु प्रयत्न विशेषरूप बल, अरु वर्णोंका मध्यमवृत्तिसे उच्चारणरूप साम (समता), अरु सन्तति (संहिता) रूप सन्तान, यहही सखिने योग्य अर्थरूप शिक्षा, जिस अध्याय बिषे है, ऐसा शिक्षाध्याय है, इसप्रकार आगे कहा है "शिक्षांपंच" { पांच शिक्षाको } अर्थात्, पांच प्रकारकी शिक्षाको आगे कहेंगे॥ इति द्वितीयोनुवाकः॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य! अब वर्णोंके सम्बन्धरूप संहिताकी उपनिषद् अर्थात् उपासना कहते हैं। तहां संहितादिकों की उपासना के ज्ञानरूप निमित्तवाला जो यश सो प्रार्थना करते हैं, "सहनौयशः" { यश हमकोसाथ, ही हो } अर्थात्, सो यश हम शिष्य अरु आचार्य्य

सहनौयशः । सहनौब्रह्मवर्चसम् । अथातःसᳬंहिता-याउपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥ पंचस्वधिकरणेषु । अधि-लोकमधिज्योतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम् । ता म-हासᳬंहिताइत्याचक्षते । अथाधिलोकम् । पृथिवीपूर्व्व रूपम् । द्यौरुत्तररूपम् । आकाशःसन्धिः ३ ॥

दोनोंको साथही हो, अरु "सह नौ ब्रह्मवर्चसम्" (ब्रह्मवर्चस हमको साथ, ही हो) अर्थात्, तिस यशरूप निमित्तवाला जो ब्रह्मवर्चस (ब्रह्मतेज) है सो हमशिष्य अरु आचार्य्य दोनोंको साथहीहो । यहां प्रार्थनारूप शिष्यका वचनहै । यहां शिष्यको ही कृतार्थ होनेके अर्थ प्रार्थनाका करना संभवे है, अरु आचार्य जोहै सो तो प्रसिद्धही कृतार्थ होता है, एतदर्थ आचार्यको कृतार्था के अर्थ प्रार्थना करनी संभवे नहीं । अब पूर्व व्यतीतहुये अध्ययन रूप विधानकी अत्यन्तग्रंथसे निश्चितहुई जो बुद्धि, सो तत्कालही अर्थ के ज्ञानविषे प्रवर्त्त करनेको शक्य होवे नहीं, अतएव अपनी शाखाकी संहितारूप ग्रंथके समीपवर्त्ती वर्णोंके संबन्धरूपसंहिता की उपासना को कहते हैं । [यहां "पंचस्विति" पांच बिषे,इस प्रकार जो सप्तमी विभक्ति कही है, सो तृतीया विभक्तिके अर्थ करके पलटनेको योग्य है । अरु अधिकरण शब्द है सो विषयका पर्याय है । ताते पांच पदार्थ करके विशिष्ट जो ज्ञानहै सो अक्षरों बिषे कहनेको योग्य है, जैसे शालिग्राम प्रतिमा विषे विष्णुका ज्ञानहै तैसे । यह अर्थ होता है] पांच आश्रयों (ज्ञानके विषय) विषे जो अधिलोक [लोकको आश्रय करके जो ध्यान करने की योग्यता तिसको अधिलोक कहते हैं । अरु विद्या शब्दकरके विद्या से सम्बन्धको पाया आचार्य्यादिक कहनेको इच्छित है । तैसेही प्रजा शब्दकरके प्रजासे सम्बन्धको पाये पिता आदिक कहनेको इच्छित जानो । अरु अध्यात्म शब्दसे भोक्ता आत्माको आश्रय करके वर्त्तते हैं ऐसे जे जिह्वा आदिक सो कहनेको योग्य जानो ।

वायुःसन्धानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्योतिषम्। अग्निःपूर्व्वरूपम्। आदित्यउत्तररूपम्। आपःसन्धिः वैद्युतःसन्धानम्। इत्यधिज्योतिषम्। अथाधिविद्यम्। आचार्य्यःपूर्वरूपम् ४॥

परन्तु सर्व ठिकाने तिनतिनके अभिमानी देवताही ग्रहण करने को योग्य है, क्योंकि देवताओं से अन्यवस्तु को उपास्य होना असंभव वा अयोग्यहैताते], अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज, अरु अध्यात्म, यह पांचरूप उपासना है, इन पांच विषयवाली उपासनाको लोकादिक महावस्तुओं को विषय करनेवाली होने से, अरु संहिताको विषय करनेवाली होनेसे वेदके वेत्ता ब्राह्मण उसको महासंहिता ऐसा कहते हैं। "अथ अधिलोकम्, पृथिवी पूर्वरूपं, द्यौरुत्तररूपं, आकाशः सन्धिः॥३॥" (अब अधिलोक (तहां) पृथिवी पूर्वरूपहै, द्यौ उत्तररूपहै, आकाश संधिहै,) अर्थात् अब जिसप्रकार कहनेको आरम्भ किया है तिसप्रकार उन पांच प्रकारकी उपासना के मध्य प्रथम अधिलोक रूप उपासना को कहते हैं। यहां सर्व ठिकाने ,अथ, (अब) शब्द जो है सो उपासना के क्रम देखावनेके अर्थ है। पृथिवी जो है सो पूर्व रूप (पूर्व वर्ण) है। अर्थात् संहिताके पूर्व वर्णविषे पृथिवीकी दृष्टि कर्त्तव्यहै, ऐसा कहा होताहै। तैसेही स्वर्गलोक उत्तररूपहै,अरु आकाश (अन्तरिक्षलोक) संधिहै, अर्थात् संधि कहिये जिस विषे पूर्वरूप पृथ्वी अरु उत्तररूप स्वर्ग मिलापको पावते हैं तिस मध्य अन्तरिक्ष को संधि कहते हैं ३॥

हे सौम्य! "वायुःसन्धानम्" (वायु संधानहै) अर्थात् वायु जो है सो संधान है। जिसकरके मिलाप होय तिसको संधान कहते हैं, सो अन्तरिक्षरूप स्थलविषे पृथ्वी अरु स्वर्गका मिलाप वायु करताहै। "इत्यधिलोकम्" (इसप्रकार अधिलोक कहा) अर्थात् उक्तप्रकार अधिलोक रूप उपासना कही। "अथाधि

अन्तेवास्युत्तररूपम् । विद्यासन्धिःप्रवचनꣳसन्धानम् । इत्यधिविद्यम् । अथाधिप्रजम् । मातापूर्वरूपम् । पितोत्तररूपम् । प्रजासन्धिः । प्रजननꣳसन्धानम् । इत्यधिप्रजम् ५ ॥

ज्योतिषम्" (अब अधिज्योतिष) अर्थात् अब अधिज्योतिष रूप उपासना कहते हैं, तहां "अग्निः पूर्वरूपम्, आदित्य उत्तर रूपम्, आपः सन्धिः, वैद्युतः संधानम्" (अग्नि पूर्वरूप है, सूर्य्य उत्तररूपहै, जलसन्धि है, विद्युत संधान है "इत्यधि ज्योतिषम्" (यहअधिज्योतिषहै) अर्थात् इस प्रकार अधिज्योतिष रूप उपासनाकही ॥ "अथाधिविद्यम्" (अब अधिविद्यहै) अर्थात् अब अधिविद्यरूप उपासना कहते हैं । तहां "आचार्य्यः पूर्व रूपम्" (आचार्य्य पूर्वरूप है) ४ ॥

हे सौम्य! "अन्तेवास्युत्तररूपम्" (अन्तेवासी उत्तररूपहै) अर्थात् आचार्य्य के गृह निवास करनेवाला शिष्य उत्तर रूप है। अरु "विद्यासन्धिः प्रवचनꣳसन्धानम्" (विद्या सन्धि है प्रवचन संधान है) अर्थात् प्रश्नोत्तर रूपों का कथन संधान है ॥ "इत्यधिविद्यम्" (यह अधिविद्य है) अर्थात् इसप्रकार अधिविद्यरूप उपासना कही ॥ "अथाधिप्रजम्" (अब अधिप्रजहै) अर्थात् अब अधिप्रजरूप उपासनाकहते हैं। तहां"मातापूर्व्वरूपम्, पितोत्तररूपम्, प्रजासन्धिः, प्रजननꣳसन्धानम्" (मातापूर्वरूप है, पिता उत्तररूपहै, प्रजासंधिहै, प्रजनन संधानहै) अर्थात् माता जो है सो पूर्वरूप है, अरु पिता उत्तररूप है, पुत्रादि प्रजासंधि है, अरु ऋतुकालबिषे स्वभार्यासे संभोग संधान है । "इत्यधिप्रजम्" (यह अधिप्रज है) अर्थात् इस उक्तप्रकारकी अधिप्रज रूप उपासना कही है ५ ॥

हे सौम्य! "अथाध्यात्मम्" (अब अध्यात्म, श्रवणकरो) "अधराहनुः पूर्वरूपम्, उत्तराहनुरुत्तररूपम्, वाक् सन्धिः,जिह्वा

अथाध्यात्मम् ॥ अधराहनुः पूर्वरूपम् । उत्तराहनुरुत्तररूपम्। वाक्सन्धिः ॥ जिह्वासंधानम्। इत्याध्यात्मम्। इतीमामहासꣳहिताः। यएवमेतामहासꣳहिता व्याख्याता वेद सन्धीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येनसुवर्गेण लोकेन ॥ सन्धिराचार्य्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजंलोकेन ६ ॥ इति तृतीयोनुवाकः ॥

सन्धानम् " { नीचे का हनु पूर्वरूप है, ऊपरका हनु उत्तररूपहै, वाक् संधिहै, जिह्वा संधान है, } अर्थात् नीचे का होठ पूर्वरूप है अरु ऊपर का होठ उत्तररूप है अरु वाणी संधि है अरु जिह्वा संधान है "इत्याध्यात्मम्" { यह अध्यात्म है } अर्थात् इसप्रकार अध्यात्मरूप उपासना कही है ॥ इन सर्व उपासनाओंको जिसप्रकार प्रथम लोकोपासना कहीहै तिसप्रकार जानना ॥ "इतीमा महासꣳहिताः" { ऐसे यह महासंहिता, ग्रहण किया है } अर्थात् इसप्रकार यह कहीहुई महासंहिता, अधिकारियोंको विधि के देखावने के अर्थ ग्रहण करते हैं [जैसे दर्शआदिक षट्याग संमुच्चयहुये फलके साधक हैं अधिकारी के अंशसे अभेदता करके। तैसेही यह उक्त पांच उपासना भी समुच्चयवालीही हुई प्रजा आदिक फलकी कामनावाले पुरुषों को अनुष्ठान करने के योग्य हैं, इसप्रकार कहते हैं। यहां यह भाव है कि फलकी कामनावाले पुरुषों करके अनुष्ठान कीगई संहिता की उपासना बांछित फलकी प्राप्तिके अर्थ होती है। अरु फलकी इच्छासे रहित निष्काम पुरुषों करके अनुष्ठान कीहुई उक्त उपासना ब्रह्मविद्या की जिज्ञासा उपजावनेवाली होतीहै। अरु बुद्धिरहित पुरुषोंकरके ब्रह्मका जानना अशक्य होनेसे बुद्धिकी कामनावाले पुरुषों करके किया जपभी ब्रह्मविद्या के जाननेके अर्थ बुद्धिका प्रापक होता है। अरु धनसे रहित पुरुषों करके चित्तकी शुद्धिके अर्थ यज्ञादिकों का होना अशक्य है क्योंकि धन बिना यज्ञ होवेनहीं,

अतएव धनकी कामनावाले पुरुषों करके किया इसका हवनभी धनकी प्राप्ति वा चित्तशुद्धि वा ब्रह्म विद्याविषे उपयोगी होताहै। इसप्रकार ब्रह्मविद्या की सन्निधिविषे उपदेश कियेहुये साधनोंका महत् तात्पर्य है, सो सर्वत्र देखलेना] "। य एवमेता महासꣳहिता व्याख्याता वेद संधीयते प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ।" (जो पुरुष उक्तप्रकार कथन कीहुई इन महा संहिता को जानताहै, सो प्रजाकरके पशुओं करके ब्रह्मतेज करके अन्नादि करके अरु स्वर्गलोक करके जुड़ताहै) अर्थात् प्रजा पशु तेज अन्न धन स्वर्गादि फलको पावता है। अरु "। संधिराचार्यः पूर्वरूप मित्यधिप्रजं लोकेन ॥ ६ ॥ ।" (संधि आचार्य पूर्वरूप अधिप्रज लोक से) अर्थात् संधि आचार्य पूर्वरूप है इस प्रकार अधिप्रज, लोकसे जुड़ता है। यहां जो कहाहै कि, जानता है, इस पदका अर्थ उपासना करता है यहही होताहै, क्योंकि "। प्राचीन योग्योपास्वेति।" हे प्राचीनयोग्य ! उपासना कर। इस चतुर्दशवें वाक्य करके उपासना के अधिकार परत्वहै ताते। अरु उपासना जो है सो शास्त्रके अनुसार तुल्य वृत्तियों के प्रवाहरूप मिश्रित अर्थात् अन्य विषयाकार वृत्तिसे रहित है, एतदर्थ तदाकार वृत्तियों करके शास्त्रोक्त आश्रय को विषय करनेवाली उपासना कहते हैं। लोकविषे गुरुको उपासताहै, राजाको उपासता है, इसप्रकार उपासना शब्दका अर्थ प्रसिद्ध है। जो गुरु आदिकों को निरंतर समीप बसता है सो उपासना करता है, अर्थात् उप कहते हैं समीप को अरु आसन कहते हैं स्थित होनेको ताते जो आचार्य के समीप स्थित होयके उनकी सेवा शुश्रूषा करनी है तिसका नाम उपासना है। इसप्रकार कहते हैं। अरु सोई उपासनाके फलको पावताहै। अतएव यहांभी सो उपासना शब्द का अर्थ अरु तिसकरके उक्तफलकी प्राप्तिवने है ॥ ६ ॥

इति तृतीयोनुवाकः ३ ॥

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव। समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरंमेविचर्षणम् । जिह्वामेमधुमत्तमा । कर्णाभ्यां भूरिविश्रुवम् । ब्राह्मणःकोशोऽसिमेधया पिहितः । श्रुतं मेगोपाय । आहवन्ति वितन्वाना ७ ॥

अथ चतुर्थोनुवाकः ॥

हे सौम्य! ।" स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु "। अरु ।" ततो मे श्रियमावहेति "। सो इन्द्र मुझको बुद्धिसे प्रसन्न वा समर्थ करो। अरु तिसके अनन्तर मेरअर्थ लक्ष्मी को प्राप्तकरो । इस मन्त्रविषे अरु अगिले मन्त्रविषे कथनकिये लिंग (चिह्न) के देखनेसे। यहां बुद्धिकी कामनावाले अरु लक्ष्मी की कामनावाले पुरुषोंको तिसकी प्राप्तिके साधन जप अरु हवन कहते हैं । ।" यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्सम्बभूव "। (जो ॐकार वदके मध्य श्रेष्ठहै वेदरूप अमृतसे प्रतीतहोताहुआ) अर्थात् जो ॐकार वेदके मध्य प्रधान होनेसे श्रेष्ठवत् श्रेष्ठ है, अरु ।" शंकुनेत्यादि ।" सो जैसे शंकु (कीले) करिके इत्यादि अन्यश्रुतियों करके, सर्व प्राणियोंविषे व्याप्त होनेसे विश्वरूपहै, अरु इसहीसे ॐकार का श्रेष्ठपनाहै । इसकरके ॐकार यहां उपासना करनेको योग्य है । एतदर्थही ऋषभआदिक शब्दों से ॐकार स्तुति करने के योग्यही है । अरु जो वेदरूप अमृत से प्रतीत होताहुआ, अर्थात् लोक अरु वेदरूप व्याहृतियों से सारिष्ट 'उत्तम भाग्य, को इच्छा करनेवाले अरु इसहीसे तपकरनेवाले प्रजापतिसे सारिष्ट' 'उत्तम भाग्य' रूप होनेकरके ॐकार प्रतीतहोताहुआ । अरु जिस करके नित्यरूप ॐकारकी उत्पत्ति अनायास से नहीं कल्पना करते हैं, याते सो प्रतीत होताहुआ, यह अर्थ बनता है ।" समेन्द्रो मेधया स्पृणोतु"। (सो इन्द्र मुझको बुद्धिसे समर्थकरो) अर्थात् सो उक्त प्रकारका ॐकार रूप इन्द्र सर्व कामका स्वामी परमे-

श्वर मुझको बुद्धिसे प्रसन्न वा समर्थकरो ॥ अब बुद्धिके बल की प्रार्थना करतेहैं ।" अमृतस्य देवधारणो भूयासम्"। (हे देव! अमृतका धारण करनेवाला होहु) अर्थात् हे देव! तिस बुद्धिके अधिकार से अमर भावके हेतरूप ब्रह्मज्ञान का धारण करने वालाहोवो ।" अरु शरीरंमे विचर्षणम्, जिह्वामे मधुमत्तमाकर्णाभ्यां भूरिविश्रुवम् "। (मेरा शरीर विचक्षणहोहु, मेरी जिह्वा विशेष करके मधुर भाषिणीहोहु, कर्णकरके श्रोत्राहोहु) अर्थात् मेरा शरीरयोग्यहोहु, अरु मेरीवाणी अतिशय करके मधुर भाषण करनेवालीहोहु । अरु मैं दोनोंकानोंकरके वेदका बहुत श्रोताहोहु) किंवा मेराकार्य अरु करणरूप संघात जो है सो आत्मज्ञानकेयोग्य होहु, यहवाक्यका अर्थ है । अरु।" ब्रह्मणः कोशोसि मेधया ऽपिहितः"।(ब्रह्मकाकोशहै बुद्धिकरकेआच्छादितहै)अर्थात् हे ॐकार! तू ब्रह्म(परमात्मा)का कोश कहिये म्यानहै, क्योंकि खड्गके कोश (म्यान) वत्ब्रह्मके प्राप्ति वा दर्शनका स्थानरूपहै ताते । अरु जिस करके तू ब्रह्मका प्रतीक(प्रतिमा)है याते तेरे बिषे ब्रह्मप्राप्तहोताहै । सो तू ब्रह्मकाकोशहुआ लौकिक बुद्धिकरके आच्छादितहै, अर्थात् मंदबुद्धिवालेपुरुषोंकरकेतेरासद्भाव अज्ञातहै।अरु।"श्रुतंमेगोपाय"। (मेरेश्रुतकोरक्षाकर) अर्थात् तूमेरे श्रवणपूर्वक आत्मज्ञान आदिकों की रक्षाकर, तिसकी प्राप्तिके अविस्मरणादिकों को कर ॥ यह मन्त्र बुद्धिकी कामनावाले पुरुषको जप करनेके अर्थ कहा । अब लक्ष्मीकी कामनावाले पुरुषको तिसकी प्राप्त्यर्थहोमार्थ जो मन्त्र है सो कहते हैं ।" आहवन्ती वितन्वाना"। (ल्यावनेवाली औ विस्तारने वाली ॥ ७ ॥

हे सौम्य!।"कुर्वाणा चीरमात्मनः,वासांऽसिममगावश्च, अन्न पानेचसर्वदा, ततो मे श्रियमावह, लोमशांपशुभिः सह स्वाहा"। (आत्माके वस्त्रोंको, गौओं को अन्नपानको सर्वदा निर्वाह करने वाली, अजा,भेड़ आदिकरके युक्त,पशुकरके सहित तिस लक्ष्मी को मेरे अर्थ ल्याव, स्वाहा) अर्थात् मेरे वस्त्रोंको अरु गौओंको

कुर्वाणाचीरमात्मनः । वासाꣳसिममगावश्च । अन्नपानेच सर्वदा । ततोमेश्रियमावह । लोमशांपशुभिः सहस्वाहा । आमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा । विमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा। प्रमायन्तु ब्रह्मचारिणःस्वाहा। दमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा । शमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा ८ ॥

अरु अन्नपानों को निर्वाह करनेवाली जो लक्ष्मी है, अरु तिस अजा अरु भेड़ आदिकों करके युक्त अरु अन्य (अश्वादि , पशुओं करकेयुक्त लक्ष्मीको बुद्धिके वर्धमान होनेके पश्चात् मेरे अर्थ प्राप्त कर,स्वाहा। अरु जिसकरके बुद्धिरहितपुरुषोंकोलक्ष्मीकी जो प्राप्ति है सो अनर्थके अर्थही होती है, अतएव यहां बुद्धिकी वृद्धि होनेके पश्चात् लक्ष्मीको प्राप्तकर इसप्रकार कहाहै ॥ अरु यहां । ल्याव। इस क्रियापदकरके ॐकारही सर्वओरसे सम्बन्धको पावताहै। अरु यहां जो स्वाहा शब्दहै सो हवनके अन्तके मन्त्र रूप अर्थके जनावने के अर्थहै । "आमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा, विमायन्तु ब्रह्म चारिणःस्वाहा, प्रमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा, दमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा, शमायन्तुब्रह्मचारिणः स्वाहा । (ब्रह्मचारी मेरे अर्थ ल्याव स्वाहा, ब्रह्मचारी निष्कपटभावकोकरो स्वाहा, ब्रह्मचारी प्रमाको करो स्वाहा, ब्रह्मचारी दमकोकरो स्वाहा, ब्रह्मचारी शमकोकरो स्वाहा) अर्थात् ब्रह्मचारी जो है सो मेरे अर्थ प्राप्तकरो स्वाहा,ब्रह्मचारी जो है सो निष्कपट भावको प्राप्तकरो स्वाहा, अरु ब्रह्मचारी जो है सो यथार्थ ज्ञानको करो स्वाहा, अरु ब्रह्मचारी जो है सो इन्द्रियोंके दमनको करो स्वाहा, अरु ब्रह्मचारी जो है सो मनके निग्रहरूप शमको करो स्वाहा ॥ ८ ॥ श्रीरामायनमः ॥

हे सौम्य ! "यशोजनेऽसानि स्वाहा,श्रेयान्वस्यसोऽसानि स्वाहा, तंत्वा भग प्रविशानि स्वाहा, समाभगप्रविश स्वाहा, तस्मिंस्तु सहस्र शाखे निभगाऽहंत्वयि मृजे स्वाहा " (जनविषे यशहोवों स्वाहा, अतिशय श्रेष्ठ अत्यन्त धनवानसे धनवान् होवों स्वाहा,

यशोजनेऽसानिस्वाहा।श्रेयान्वस्यसोऽसानिस्वाहा। तं त्वाभग प्रविशानिस्वाहा। समाभग प्रविशस्वाहा। तस्मिंस्तुसहस्रशाखे निभगाहंत्वयिमृजेस्वाहा। यथा ऽऽपःप्रवतायन्ति। यथामासाअहर्जरम्। एवंमांब्रह्मचारिणःधातरायन्तुसर्वतः स्वाहा। प्रतिवेशोऽसिप्रमाभाहिप्रमापद्यस्व॥ वितन्वानाशमायन्तुब्रह्मचारिणःस्वाहा। धातरायन्तुसर्वतः स्वाहेकंच ९॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

भगवन् तिस तेरे ताईं प्रवेशकरु स्वाहा, भगवन् सो मेरे ताईं प्रवेशकर स्वाहा, भगवन् तिस सहस्र शाखावाले तुझ बिषे मैं शोधन करूंहूं) अर्थात् मैं जनके समूहबिषे यशस्वीहोवों स्वाहा, मैं अतिशय अरु श्रेष्ठ अत्यन्त धनवानों से भी धनवान्होवों स्वाहा, किंवा हे भगवन्! हे पूजने योग्य! तिस ब्रह्मके कोशरूप तेरे बिषे प्रवेशकरूं, अर्थात् तुझबिषे प्रवेशकरके अनन्य तेरा स्वरूपहीहोवों स्वाहा, हे भगवन्! सो तूभी मेरेबिषे प्रवेशकर, अर्थात् मेरी अरु तेरी दोनोंकी अभेद एकताहोवो स्वाहा, हे भगवन्! तिस सहस्र शाखावाले तुझबिषे मैं अपने पापरूप कर्म्मों को शोधनकरों स्वाहा, " यथाऽऽपः प्रवतायन्ति, यथा मासा अहर्जरम्, एवंमां ब्रह्मचारिणः धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा " (जैसे जल नम्र देश में जाता है अरु जैसे मास सम्बत्सरको, ऐसे धातः ब्रह्मचारी मेरे ताईं सर्व ओरसे आवो स्वाहा) अर्थात् जैसे लोकों बिषे जल जो है सो नीचेही स्थलको जाता है, अरु जैसे मास जो हैं सो संवत्सरको जाते हैं [संवत्सर जो है सो दिवसों करके लोकों को जरावान् करता है, एतदर्थ संवत्सर को ,अहर्जर, इस नाम से कहते हैं अथवा दिवस जो हैं सो इस संवत्सर बिषे अन्तरभाव को पावते हैं एतदर्थ सो दिवस वा मास ,अहर्जर, नामसे कहे जाते हैं] इस प्रकार हे सर्वके विधाता ब्रह्मचारी! जो है सो मेरे

अर्थ पूर्वादि सर्व दिशाओं से प्राप्तहोवो, स्वाहा। अरु "प्रतिवेशोऽसि प्रमा भाहि प्रमा पद्यस्व" (समीप का ग्रह है मुझको प्रकाशकर आपके अर्थ प्राप्तकर) अर्थात् हे भगवन्! जैसे श्रमके निवारण का स्थान समीपका ग्रह होताहै तैसे तू समीपके ग्रहवत् समीप का ग्रहहै, अर्थात् तेरे भक्तों को सर्वपाप अरु तिसके फल सर्व दुःख तिनके निवारणका स्थान तू है। एतदर्थ मेरेको प्रकाशकर अरु अपने अर्थ प्राप्तकर, अर्थात् "शरवत्तन्मयोभवेत्" इसप्रमाण से लोहके शरकरके बेधेहुये लोहमें बाणतारूप होता है तैसे तू मुझको अपना स्वरूपकर "वितन्वाना शमायन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा, धातरायन्तु सर्वतः स्वाहेकञ्च ६ ॥ ४ ॥" (विस्तार करतीहुई ब्रह्मचारीशमको करहु स्वाहा, सर्वओर से आवहु स्वाहा एक) अर्थात् हे धातः! (विधाता) विस्तार को करतीहुई, ब्रह्मचारी जोहै सोशमको करो स्वाहा, अरु सर्वओर से प्राप्तहोवो स्वाहा, यह एक है॥ इस विद्या के प्रकरण बिषे जो लक्ष्मीकी कामना कथनकियाहै सोधनके अर्थ है, अरुधनयज्ञादि कर्म्मों के अर्थ है अरु यज्ञादि कर्म सञ्चित पापों के विनाशार्थ है अरु पापों के विनाशहुये ब्रह्मविद्या प्रकाशती है। तथास्मृतिः "ज्ञानमुत्पद्यते पुंसांक्षयात्पापस्यकर्म्मणः। यथाऽऽ दर्शतलेप्रख्ये पश्यन्त्यात्मानमात्मनीति" पुरुषों को पापकर्मके क्षयहुये ज्ञान उपजता है। जैसे स्वच्छ दर्पण बिषे, मुख देखते हैं तैसे, आत्मा (बुद्धि) बिषे (आत्मासाक्षी) को देखते हैं। इसस्मृति वाक्य प्रमाणसे ९॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

अथ पञ्चमोऽनुवाकः॥

हे सौम्य! [पूर्वकहे अर्थके अनुवाद पूर्वक अग्रिम कहनेके अनुवादके सम्बन्धसे कहते हैं यहां यह अर्थ है कि व्याहृतियों को श्रद्धासे ग्रहण किया होनेसे, तिनको परित्याग करके उपदेशकिया जो ब्रह्म सो बुद्धिबिषे स्थिरताको पावतानहीं, एतदर्थ व्याहृतिरूप

भूर्भुवः स्वरिति वा एतास्तिस्रोव्याहृतयः । तासामु-हस्मैतां चतुर्थीं । महाचमस्य प्रवेदयते । मह इति त-द्ब्रह्म । स आत्मा। अङ्गान्यन्यादेवताः । भूरिति वा अयं लोकः । भुव इत्यन्तरिक्षम् । स्व इत्यसौ लोकः १० ॥

शरीरवाला हिरण्यगर्भनामक ब्रह्महृदयकेमध्य ध्येयहोने से उप-देशकरतेहैं] इसप्रकार बाणकेसम्बन्धरूपसंहिताको विषय करने वाली उपासनाकहा । तिसके पश्चात् बुद्धिकी कामना अरु लक्ष्मी की कामना के मन्त्रकहे । सो मन्त्र परम्पराकरके ब्रह्मविद्या के उपयोगार्थही है। यह सूचनकिया । अब तिसके अनन्तर व्याहृति रूप ब्रह्मकीहृदयके मध्य स्वाराज्य फलवाली उपासना कहते हैं । "भूर्भुवः स्वरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः तासामुहस्मैतांच-तुर्थीं । महाचमस्य प्रवेदयते" (भूः भुवः स्वः,यह प्रसिद्धजो तीन व्याहृतियां स्मरण करते हैं तिनके मध्य इस चतुर्थ को महाच-मस जानताहुआ] अर्थात् 'भूः,भुवः, स्वः, यह प्रसिद्ध जो तीन व्याहृतियां [कि जिनको गायत्री आदिक मन्त्रों के साथ स्मरण करते हैं] तिनके मध्य यह चतुर्थ व्याहृति महर्लोक है तिस च-तुर्थ व्याहृतिको महाचमसका पुत्र महाचमस्य नामवाला ऋषि है सो जानता (देखता) हुआ "मह इति ब्रह्म, स आत्मा, अङ्गा-न्यन्या देवताः, भूरिति वा अयंलोकः, भुव इत्यन्तारिक्षम्, स्व इत्यसौलोकः" (मह ऐसी सो ब्रह्महै, सो आत्मा है, अन्य दे-वता अंगहैं, भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोकहै भुवर् यह अन्तरिक्षहै, स्वर् ऐसा वह (स्वर्ग) लोक है) अर्थात् यहां उपदेशसे जो यह महाचमस्य ऋषिने देखीहुई महर् ऐसी व्याहृति है [महर् इस व्याहृतिबिषे अंगी ब्रह्मकी दृष्टि करनेको योग्य है । तिस व्याहृति औ ब्रह्म वा अंग अंगीबिषे क्या तुल्यता है । तहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि ' जैसे देवदत्तके पादादिक अंगहैं अरु देहका म-ध्यभाग अंगी है, तिसको अन्य अंगोंका आत्मा कहते हैं क्योंकि

महइत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोकामहीयन्ते॥ भूरिति वा अग्निः। भुवइति वायुः। स्वरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषिमहीयन्ते॥ भूरिति वा ऋचः। भुव इतिसामानि। स्वरिति यजूꣳषि ११॥

वो सर्व अंगोंविषे व्याप्त है ताते। तैसेही महर्लोकरूप जो व्याहृति है सो हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मका मध्यभाग है अतएव उसको आत्मा ऐसी कल्पना करते हैं। अरु अन्य व्याहृतियां जो हैं सो पादादिक अवयवोंके भावसे कल्पना करते हैं तहां प्रथम व्याहृति दोनों पाद स्थानी है, अरु द्वितीय व्याहृति दोनों बाहु स्थानी है, अरु तृतीया व्याहृति शिरस्थानी है] सो ब्रह्म है। किस तुल्यता से। तहां कहते हैं। जिस करके ब्रह्म महत् है अरु व्याहृति महर् हैं, तिसकरके उनकी एकता बने है। पुनः सो महर् क्याहै। सो आत्माहै। अरु जिसकरके वो महर् व्याप्तिरूप कर्मवान् है तिसही से सो आत्माहै। अरु अन्य जो व्याहृतिरूप, लोक, देव, वेद, औ प्राणहैं, सो जिस करके "मह इतिब्रह्म" महर् ब्रह्महै,। इसअग्रिम कहने के वाक्य के कथनकिये व्याहृतिरूप ब्रह्म के, देव, लोक, आदिक सर्व अवयव रूप हैं। अरु जिस करके सो, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्म अरु अन्नरूप करके व्याप्त होते हैं, एतदर्थ अन्य देवता जोहैं सो ब्रह्मके पादादिक अवयव हैं। यहां जो देवता का ग्रहण है सो उक्त लोकादिकों के ग्रहणार्थ है। अरु जिस करके "मह इति ब्रह्म" महर् ब्रह्म है,। इस अग्रिम कहनेके वाक्य करके कथन किये व्याहृतिरूप ब्रह्मके, देव, लोक, आदिक सर्व अवयव रूप हैं, याते सूर्यादिकों करके लोकादिक वृद्धि को पावते हैं। इस प्रकार आगे श्रुति कहती है भूः ऐसा प्रसिद्ध यह लोक है। भुवर् यह अन्तरिक्ष है। स्वर् ऐसा यह स्वर्गलोक है १०॥

हे सौम्य! "मह इत्यादित्यः, आदित्येनवाव सर्वे लोकामही-

मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदामहीयन्ते ॥ भूरिति वै प्राणः । भुव इत्यपानः । स्वरितिव्यानः । मह इत्यन्नम् । अन्नेन वावसर्वेप्राणामहीयन्ते ॥ तावा एताश्चतस्रश्चतुर्द्धा चतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः ॥ तायो वेद सवेद ब्रह्म । सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति ॥ असौ लोको यजूꣳषिवेदहेच ॥ १२ ॥ इतिपञ्चमोऽनुवाकः ॥

यन्ते " (महर् यह सूर्य है, सूर्य से प्रसिद्ध सर्वलोक वृद्धि को पावते हैं) " भूरितिवा अग्निः । भुव इति वायुः । स्वरित्यादित्यः । मह इति चन्द्रमाः । चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतीꣳषि महीयन्ते " (भूः यह प्रसिद्ध अग्निहै, भुवर् यह वायु है, स्वर् यह सूर्य्य है, महर् यह चन्द्रमा है, चन्द्रमासे प्रसिद्ध सर्वज्योति (तारा) वृद्धिको पावते हैं) अरु " भूरिति वा ऋचः, भुव इति सामानि, स्वरिति यजूꣳषि " (भूः यह प्रसिद्ध ऋचा (ऋग्वेद) है, भुवर् यह (सामवेद) है, स्वर् यह यजुर्वेद है ११) ॥

हे सौम्य ! " मह इतिब्रह्म, ब्रह्मणा वाव सर्वेवेदामहीयन्ते " (महर् यह ब्रह्म (ॐकार) है, ब्रह्मसे प्रसिद्ध सर्व वेद वृद्धिको पावते हैं) अरु " भूरिति वै प्राणः भुवरित्यपानः, स्वरिति व्यानः, महइत्यन्नम, अन्नेनवाव सर्वेप्राणामहीयन्ते " (भूः यह प्रसिद्ध प्राणहै,भुवर् यह अपानहै, स्वर् यह व्यानहै,महर् यह अन्नहै,अन्न से प्रसिद्ध सर्वप्राण वृद्धिको पावते हैं) अरु " ता वाएताश्चतस्रश्चतुर्द्धाचतस्रश्चतस्रोव्याहृतयः, तायोवेदसवेदब्रह्म " (सो प्रसिद्ध ऐसीचार व्याहृतियां चारचार हुई चारप्रकार की होती हैं तिनको जो जानताहै सो ब्रह्मको जानताहै) अर्थात् [एक एक व्याहृतियां जब चारचार प्रकारकी चिन्तन करते हैं तब षोड़श कलात्मक पुरुष उपासना किया होताहै इस अभिप्राय करके संक्षेपसे कहते हैं] सो प्रसिद्ध जे भूः भुवर् स्वर् अरु महर् इस प्रकारकी जो चार व्याहृतियां हैं, सो व्याहृतियां जैसे कल्पना

करी है, तैसेही तिनका उपदेश जो है सो उपासनाके नियमार्थ है, सो व्याहृतियां जैसे कथन करी है, तिसप्रकार तिनको जो जानता है सो ब्रह्मको जानता है। ब्रह्मभावरूप स्वाराज्य की प्राप्तिके हुये "सर्वेऽस्मैदेवा बलिमावहन्ति, असौलोको यजूंषि वेदद्वेच"। { सर्व देवता इसके अर्थ बलिदानको ल्यावते हैं, यह लोक अरु यजुर्वेद दोनोंको जानता है } अर्थात् सर्व देवता अंग भूतहुये उस विद्वान्के अर्थ बलिदान ल्यावते हैं अरु इसलोक अरु अजुर्वेद इन दोनोंको जानताहै॥ ननु "। तद्ब्रह्मस आत्मेति"। सो ब्रह्म है सो आत्माहै, इसप्रकार ब्रह्मको जानेहुये अज्ञातवत् "। सवेदब्रह्मेति"। सो ब्रह्मको जानता है इस प्रकार कहना योग्य नहीं [अधिकारकी अविधिरूप वाक्य बिषे ब्रह्मका ज्ञान फलपने करके कहते नहीं, किन्तु अग्रिम कहने के अनुवाक से इसही ब्रह्मकी उपासना बिषे गुण का विधान होगा, इसप्रकार सूचना करने को यह कहते हैं] सो कहना बने नहीं, क्योंकि शास्त्र उसको बिशेष कहनेकी इच्छावाला है ताते, यह दोषनहीं है, अरु यद्यपि चतुर्थ व्याहृति रूप ब्रह्म है, इसप्रकार जाना है, यह कहना सत्य है, तथापि उसका हृदय के मध्य प्राप्त होने के योग्यपने अरु मनोमय पनेसे आदि लेके "। शान्ति समृद्धमिति"। रूप शान्ति से समृद्धिको पाया, इस विशेषण पर्यन्त जो विशेष्य है, सो नहीं जाना है। एतदर्थ विशेषण अरु विशेष्य रूप धर्मका समूह जनावते हैं। इसप्रकार तिसके कहने की इच्छावाला जो शास्त्र सो अज्ञातवत् ब्रह्मको मानके "। सवेद ब्रह्मेति"। सो ब्रह्म को जानता है। इसप्रकार कहता है। एतदर्थ यह दोष नहीं है अरु जिस करके जो अग्रिम कहने के धर्म्म के समूह करके युक्त ब्रह्म को जानता है सोई ब्रह्मको जानताहै, यह अभिप्राय है। एतदर्थ अग्रिम कहने के षष्ठ अनुवाकसे इस पंचम अनुवाक की एक वाक्यताहै। अरु इन पंचम अरु षष्ठ दोनों अनुवाकों विषे उपासनाभी एकही है, क्योंकि [जब व्याहृतिरूप अवयव वालाही

स य एषोंतर्हृदय आकाशः । तस्मिन्नयंपुरुषो मनोमयः । अमृतो हिरण्मयः । अन्तरेणतालुकेयएषस्तन इवावलम्बते । सेन्द्रयोनिः यत्रासौ केशान्तो विवर्तते व्यपोह्य शीर्षकपाले ॥ भूरित्यग्नौप्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ १३ ॥

ब्रह्म आगे उपास्य कहते हैं, तबहीं उपासक को प्रथम व्याहृति रूप अग्निविषे स्थिति का कथन घटितहै । एतदर्थ व्याहृतिरूप देवताकी प्राप्ति के कथनरूप उपासना की एकता विषे लिंगको कहतेहैं] " भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठतीति " भू यह अग्निविषे स्थित होता है, इत्यादिरूप वाक्यमें उपासनाकी एकता विषे जो लिंग आगे कहाहै, तिसलिंगसे और भिन्न [एकठिकाने प्रधान विद्या की विधिहै, अरु दूसरे ठिकाने गुणविधि है इसप्रकार अनुवाक भेदके कृत अर्थहुये अन्यप्रकार से असिद्ध भेदक प्रमाण प्रतीत होनेयोग्य नहीं है, ऐसा कहते हैं] उपासना के बोधक शब्द के अभावसे यह उपासना की एकता विषे कहा जो लिंगसो युक्तहै। अरु जिसकरके यहां " वेदोपासितव्य " जानताहै सो उपासना करने योग्यहै, । इसप्रकार भिन्न उपासनाका बोधक कोईभी शब्द नहींहै, क्योंकि व्याहृतिके बोधक पञ्चम अनुवाकविषे " तायोवेदेति " तिसको जो जानताहै, । ऐसा आगे कहनेका अर्थ है ताते । एतदर्थ उपासनाका भेदक शब्द नहीं है । अरु तिन व्याहृतिके बोधक पंचम अनुवाक का अग्रिम कहने के अर्थ करके युक्तपना जो है सो " तद्विशेषविवक्षुत्वादिति " शास्त्र को, तिसके विशेष के कहनेकी इच्छावाला होने से, इत्यादि वाक्यों करके हमने पूर्वही कहा है १२ ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! " सय एषोंऽतर्हृदय आकाशः, तस्मिन्नयं पुरुषोमनोमयः " (सो जो यह हृदय के भीतर आकाशहै, तिसविषे यह

पुरुष है, मनोमय है ? अर्थात्, भूः भुवर् स्वर्, इन तीन व्याहृतिरूप जो अन्यदेवता है, सो "। मह इति ब्रह्म ।" महर् ब्रह्म है, इस वाक्यसे हिरण्यगर्भ व्याहृतिरूप ब्रह्म के अंग हैं, इसप्रकार कहा। अरु अब जिसके वो देवता अंगभूत हैं, तिस इस ब्रह्म के साक्षात् ज्ञानार्थ अरु उपासनार्थ विष्णुके स्थानापन्न शालिग्रामवत् हृदयादि आकाशरूप स्थान कहते हैं। अरु जिसकरके तिस स्थानविषे उपासना किया हुआ मनोमयपने आदिक धर्म्मकरके युक्त सो ब्रह्म, हाथविषे आमलक नामवाला फल वा निर्मलजलवत् साक्षात् जाना जाता है। एतदर्थ सो स्थान अरु सर्वात्मभावकी प्राप्तिके अर्थ मार्ग कहने को योग्य है, इस अभिप्राय से यह षष्ठ अनुवाक का आरम्भ करतेहैं। सो प्रसिद्ध जो यह हृदय के भीतर । हाथ के कमण्डलु के अन्तर के आकाशवत। वा वेणु (बांस) के परव (पोइ) के मध्य आकशवत्। आकाश है तिस विषे सो यह पुरुष है, अर्थात् शरीर रूप पुरों विषे पूर्णता से व्याप्त होवे। वा पुरीतती नाड़ीविषे सोवता होवे। वा पृथिवी आदि लोक जिसकरके पूर्णहैं, एतदर्थ यहपुरुष है ऐसा कहतेहैं। सो पुरुष मनोमय है, अर्थात् ज्ञानरूप क्रियावाला होनेसे मन जो विज्ञानबुद्धि, तिस रूप है, क्योंकि तिस विषे प्रतीयमान होता है ताते। वा जिसकरके मनुष्य मनन करते हैं ताते उसको मन कहते हैं। ताते ऐसा जो अन्तःकरण आकाशहै सो मनहै। अरु जिस करके पुरुष तिस मनका अभिमानी वा मनरूप लिंग। (चिह्न वा उपलक्षण)। वाला है, तिस करके। पुरुष को। तिस मनोमय रूप कहते हैं। अरु सो पुरुष अमृतरूप होने से मरण धर्म रहित अमर है, अरु हिरण्य (प्रकाश) मय है। अब तिस उक्तप्रकार के लक्षणवाले हृदयाकाश विषे साक्षात्कार किये से विद्वान् के आत्मरूप पुरुष के, ऐसे स्वरूप के ज्ञानार्थ मार्ग कहते हैं। हृदयसे ऊपर प्रवृत्त हुई अरु योगशास्त्रविषे प्रसिद्ध जो सुषुम्णा नाम्नी नाड़ी है सो मुखसे प्रसिद्ध"। अन्तरेण तालुके

स्वरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्तदोभवति । आकाशशरीरंब्रह्म । सत्यात्मप्राणारामंमनआनन्दम् । शान्तिसमृद्धमम्रत इतिप्राचीनयोग्योपास्व । वायावम्रतमेकचंच १४॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ६ ॥

य एषस्तन इवावलम्ब ते "(तालुदेशके मध्य जो यह दोनों स्तनवत् स्थित है) तालुदेशके मध्य प्राप्तहुई है, अरु जो दोनों तालू के मध्य स्तनवत् मांस का पिण्ड स्थित है तिसके मध्य प्राप्त है । अरु " सेन्द्रयोनिः, यत्रासौ केशान्तो विवर्त्तते व्यपोह्य शीर्ष कपाले " (जहां यह केशोंका अन्त विभाग करके वर्त्तताहै मस्तक के कपाल को भेदनकरके सो इन्द्रयोनि है) अर्थात् जहां यह केश का अन्त कहिये मूल विभाग करके वर्त्तता है ऐसा जो मस्तक देश तिस देशको प्राप्त होके मस्तक के कपालको भेदन करके जो निकली है,सो सुषुम्णा नाम्नी नाड़ी इन्द्रयोनि है,अर्थात् इन्द्र जो ब्रह्म तिसकी नामक मार्ग कहिये स्वरूप प्राप्तिका द्वार है । अरु तिसही नाड़ीसे मनोमय रूप आत्माका देखनेवाला विद्वान् मस्तक से निकलके "भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति, भुवइतिवायौ" (भूःइस अग्निविषे स्थितहोता है, भुवर् इस वायुबिषे) अर्थात् इस लोकका अधिष्ठाता जो भूः इस व्याहृतिरूप महत् ब्रह्माण्ड का अंग रूप अग्नि है तिस अग्निबिषे स्थितहोताहै, अर्थात् अग्निरूपसे इसलोकको पावता है । अरु तैसेही भुवर् इस द्वितीय व्याहृतिरूप वायु बिषे स्थित होता है १३ ॥

हे सौम्य, ! "स्वरित्यादित्ये, महइति ब्रह्मणि, आप्नोतिस्वाराज्यम, आप्नोतिमनसस्पतिम् " (स्वर् इस सूर्य्यविषे, महर् इस ब्रह्मविषे, स्वाराज्यको पावताहै, मनके पति को पावताहै) अर्थात् स्वर् इस तृतीय व्याहृतिरूप सूर्य्यबिषे स्थितहोताहै। अरु महर्

इस अंगी (ब्रह्मस्वरूप) भूत चतुर्थ व्याहृतिरूप ब्रह्मविषे स्थित होताहै। तिन विषे आत्मभावसे स्थितहोयके ब्रह्मभूत हुआ स्वाराज्यको पावताहै, अर्थात् [स्वाराज्य जो है सो जगत्के स्रष्टापने आदिकरूप निरंकुश ऐश्वर्यरूप नहीं होताहै, इसप्रकारकहतेहैं] जैसे ब्रह्महै तैसे अंगभूत देवताओंका अधिपति होता है, अरु सर्व देव अंगभूत हुये जैसे ब्रह्मको बलिदेते हैं, तैसे इसके अर्थ बलिदान (भेट) देतेहैं। अरु इसप्रकार जाननेवाला जो विद्वान्है सो मनके पतिको पावताहै। अरु जिसकरके ब्रह्म सर्वात्मा है अरु जिसकरके सो सर्व मनकरके मननकरतेहैं, इसहीसे वो ब्रह्म सर्व मनोंका पतिहै तिसको विद्वान् पावताहै। अरु "। वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः, एतत्तदो भवति "। (वाणियोंकापति, चक्षुओंका पति, श्रोत्रोंका पति अरु विज्ञानों (बुद्धियों)का पति होताहै) अर्थात् यह सर्वात्मा होनेसे सर्व प्राणियोंके करणों (इन्द्रियों) करके । सम्पन्न होनेसे, तिस इन्द्रियोंवाला होता है किंवा (ताते भी यह अत्यन्त अधिक होताहै) अर्थात्। ताते भी यहअग्रिम कहनेका ब्रह्मका विशेषण अत्यन्त अधिक होताहै।प्र० सो क्याहै। तहां कहतेहैं "।आकाशशरीरंब्रह्म,सत्यात्म प्राणारामं, मनआनन्दम्, शान्तिसमृद्धममृत "। (आकाश शरीरवाला ब्रह्म, सत्यस्वरूपहै, प्राणारामहै, मन आनन्दहै,शान्ति समृद्धिहै, अमृत है,) अर्थात् आकाशहै शरीर जिसका वा आकाशवत् सूक्ष्म है शरीर जिसका ऐसा जो यह आकाश शरीरवाला इस प्रसंगविषे प्राप्तहुआ ब्रह्म सो सत्यस्वरूप है। मूर्त्त अरु अमूर्त्तमय सत्य है स्वरूप कहिये स्वभाव जिसका ऐसा जो यह ब्रह्म सो सत्यरूप कहतेहैं। अरु सो प्राणाराम ऐसाकहते हैं। वा प्राणोंकाहै आराम (रमण) जिस विषे ऐसा जो ब्रह्म तिसको प्राणाराम कहते हैं। अरु सो मन आनन्दहै। अर्थात् मनहै आनन्दरूप सुखकारी जिसको ऐसा जो ब्रह्म तिसको मन आनन्दकहतेहैं। अरु सो शांति समृद्धिहै। जिस करके शांति अरु समृद्धिको पायाहुआ सो ब्रह्म

पृथिव्यन्तरिक्षं द्योर्दिशोऽवान्तरदिशः । अग्नि-र्वायुरादित्यश्चन्द्रमानक्षत्राणि । आपओषधयोवनस्पतयः। आकाशआत्माइत्यधिभूतम् । अथाध्यात्मम् । प्राणोऽपानोव्यान उदानःसमानः। चक्षुःश्रोत्रंमनोवाक्त्वक् । चर्म्ममांछं सछं स्नावास्थिमज्जा । एतदधिविधायऋषिरवोचत् । पाङ्क्तं वा इदछंसर्व्वम् । पाङ्क्तेनैवपाङ्क्तछंस्पृणोतीतिसर्वमेकञ्च १५॥ इतिसप्तमोऽनुवाकः ७ ॥

प्राप्तहोता है एतदर्थ उसको शांति समृद्धि कहते हैं, वा शांति से समृद्धि कहिये विभूतिको पायाहुआ प्राप्तहोवे है अतएव उसको शान्ति समृद्धि कहतेहैं ।अरु सो अमृतहै । अर्थात् जिसकरके सो ब्रह्म मरण धर्मसे रहितहै तिसही करके अमरहै। यहां जो अत्यंत अधिक यह विशेषणहै तहांही पूर्व वाक्याविषे उक्त मनोमय आदिक पुरुषके विशेषण देखलेने "इति प्राचीनयोग्योपास्व, वायावमृतमेकंच " ऐसे प्राचीनयोग्यउपासनाकर वायुबिषे अरु अमृत रूप एकहै ; अर्थात् इसप्रकार मनोमयपने आदि धर्मोंकरके विशिष्ट उक्त प्रकारका जो ब्रह्म है तिसको हे प्राचीनयोग्याशिष्य ! तू उपासनाकर। यह जो आचार्य के वचनोंका कथनहै सो आदरार्थ है। वायु विषे अरु अमृतरूप एक है॥ १४॥ इतिषष्ठोनुवाकः ६ ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! आगे का अनुवाक भी अन्य प्रकार से हिरण्यगर्भ कीही उपासना को विषय करनेवाला है इसप्रकार कहते हैं जो यह उपासना करने योग्य व्याहृति रूप ब्रह्म कहा, तिसही का पृथिवी आदिक पांक्त कहिये पांच के समुदाय रूप से उपासना कहते हैं। अरु जिसकरके पृथिवी आदिकही पांचसंख्याके योग से पंक्ति नामक छन्दका सम्पादनहोवेहै, अतएव पृथिवी आदिक सर्वको पांक्तपना है। अरु यज्ञजो हैं सो पांक्तहैं "पांक्तोयज्ञ इति

श्रुतेः "। इस श्रुति प्रमाणसे। पांच पादजो है सो पंक्तिरूप है, तिस वाला जो वेदका कोई छन्दहै, तिसको भी पंक्ति कहते हैं। अरु जिस करके यज्ञजो है सो (पत्नी, यजमान, दैव, मानुष, अरु वित्त, इन पांच करके सम्पादन करते हैं। एतदर्थ पंक्तिछन्दके सादृश्य के सम्पादन से यह पांक्त कहते हैं तिस हेतुकरके जो यह लोक से आदिलेके आत्मा पर्य्यन्त जगत् है तिसको यज्ञ भावरूप पांक्त कल्पना करते हैं। तिस कल्पित यज्ञ करके पांक्तरूप प्रजापति को पावता है ॥ सो यह पृथिवी आदिक पांक्तकैसेहैं। तहां कहते हैं "। पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशो ऽवान्तरदिशः, अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमा नक्षत्राणि, आपओषधयो वनस्पतयः, आकाश आत्मा इत्यधिभूतम् "। (पृथिवी अन्तरिक्ष स्वर्गलोकदिशा अरु आवान्तर दिश, अग्निवायु सूर्य चन्द्रमा अरु नक्षत्र, जल ओषधियां वनस्पतियां आकाश अरु आत्मा यह अधिभूतहै) अर्थात्, पृथिवी अन्तरिक्ष, स्वर्गलोक, दिशा, आवान्तरदिशा, इस प्रकारका यह लोकरूप पांक्तहै ॥ अरु 'अग्नि' वायु, सूर्य, चन्द्रमा, अरु नक्षत्र, यह देवतारूप पांक्त है ॥ अरु (जल, ओषधियां, वनस्पतियां, आकाश, अरु आत्मा, यह भूतरूप पांक्तहै ! यहां आत्मा जो कहा, सो विराट्रूप हुये आत्मा के अधिकार कहिये मुख्यता से है। इसप्रकार अधिभूतरूप पांक्तकहा। यहां अधिभूत जोहै सो अधिलोक अरु अधिदैवतरूप, दोनों पांक्तों के उपलक्षणार्थ है, क्योंकि यहां लोक पांक्त अरु देवपांक्त को कथन कियाहै ताते "।अथाध्यात्मम्, प्राणोऽपानो व्यान उदानः समानः, चक्षुः श्रोत्रंमनोवाक्त्वक्, चर्म्म माꣳसꣳ स्नावास्थिमज्जा, एतदधि विधायऋषिरवोचत् "। (अब अध्यात्म कहतेहैं, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, चक्षुः, श्रोत्र, मन, वाक्, त्वचा,। चर्म्म, मांस, नाड़ी, अस्थि, मज्जा। इस प्रकार कल्पना करके ऋषि कहताहुआ) अर्थात् अब इसके अनन्तर अध्यात्मरूप तीन पांक्तको कहतेहैं। प्राण अपान व्यान उदान अरु समान, यह वायुरूप पांक्त है।

ॐमितिब्रह्म । ॐमितीदꣳ सर्व्वम् । ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्म वाऽप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति । ॐमिति सामानिगायन्ति । ॐꣳशोमितिशस्त्राणिशꣳसन्ति । ॐमित्यध्वर्य्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति । ॐमितिब्रह्मा प्रसौति । ॐमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ॐमितिब्राह्मणःप्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवानीति ब्रह्मैवोपाप्नोति ॐ दश १६ ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

अरु चक्षु श्रोत्र मन वाक् अरु त्वचा, यह इन्द्रियरूप पांक्तहै । अरु चर्म मांस नाड़ी अस्थि अरु मज्जा, यह धातुरूप पांक्त है ॥ एतनाही यह सर्व अध्यात्मअन्तर अरुबाह्यरूप जगत् पांक्तरूपही है, इसप्रकार कल्पनाकरके वेद वा तिसके ज्ञानकरके सम्पन्न कोई एक ऋषिजोहै सो कहताहुआ । क्या कहताहुआ । तहां कहते है । "पाङ्क्तं वा इदꣳसर्वम्, पाङ्क्तेनैव पाङ्क्तꣳस्पृणोतीति, सर्वमेकञ्च" (प्रसिद्ध यह सर्व पांक्तहै पांक्तसेही पांक्तको पूर्ण करेहै, सर्वएकहै) अर्थात् प्रसिद्ध यह सर्व पांक्तहै, अध्यात्मरूपपांक्त से ही संख्याकी तुल्यतासे बाह्य पांक्तको पूर्णकरे हैं [निकृष्ट विषे उत्कृष्ट की दृष्टि फलवाली है, इस न्यायसे बाह्य पांक्तरूप से आध्यात्मिक तीनपांक्त जानने को योग्य हैं, इस अभिप्रायसे कहते हैं] अर्थात् एकरूप करके जानता है । अर्थ यह जो यह सर्व पांक्त है, इस प्रकार जो जानता है । सो प्रजापति रूपही होता है ॥ सर्व एकहै १५ इति सप्तमोऽनुवाकः ७ ॥

अथ अष्टमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक अग्रिम अष्टम अनुवाकको प्रकट करते हैं] उक्तप्रकार प्रथम व्याहृतिरूप ब्रह्मोपासना कही । तदनन्तर पांक्तरूपसे ब्रह्मोपासना कही । [यहां यह अर्थ है कि जिसकरके वेदवेत्ता पुरुषोंकी सर्व क्रिया ॐकारके उच्चारण पू-

र्वक प्रवर्त्त होतीहै, क्योंकि तिस ॐकारको श्रद्धा से ग्रहण किया होनेसे, अरु तिसको त्यागके उपदेश किया ब्रह्मबुद्धि विषे आरूढ़ होता नहीं, एतदर्थ तिस ॐकारको लेके उपासना का निर्धार करते हैं] अब सर्व उपासना के अंगभूत ॐकारकी उपासना कहते हैं। जिसकरके पर अरु अपरब्रह्मकी दृष्टिसे उपासनाकरते हैं, ऐसा जो ॐकार सो शब्दमात्र है, तथापि सो पर अरु अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै। अरु विष्णुकी प्रतिमावत् सो ॐकार परब्रह्म अरु अपरब्रह्मका आश्रय (आलम्बन) है "एतेनैवायतनेनैकतरमन्वेतीति श्रुतेः" इसही आश्रय करके दोनों मेंसे एकको पावताहै, इस श्रुति प्रमाणसे,। अतएव यह ॐकार पर अरु अपर ब्रह्म की प्राप्तिका साधन संभवे है "ॐमितिब्रह्म, ॐमितीदꣳ सर्व्वम्" (ॐ इसप्रकार का ब्रह्महै, ॐ इसप्रकार का यह सर्व्व है) अर्थात् ॐइसप्रकारकाशब्दरूपब्रह्महै,इसप्रकारमनकरके उपासनाकरे। अरु ॐइसप्रकारका शब्द यह सर्व है, अर्थात् शब्दरूप यह सर्व प्रपंच ॐकारसे व्याप्तहै "तद्यथा शंकुना इति श्रुत्यन्तरात्" सो जैसे शंकु करके,। इसअन्य श्रुतिके प्रमाणसे। अरु जो वाच्य है सो वाचकके आधीनहै, एतदर्थ यह सर्व ॐकारहै ऐसा कहतेहैं अब अग्रिम कहनेका जो ग्रंथहै सो ॐकारकी स्तुत्यर्थ है, क्योंकि तिस ॐकारको उपास्यपना है ताते "ॐमित्येतदनुकृतिर्हस्मवा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयंति" (ॐ इसप्रकारका अनुकरण है प्रसिद्धहै, ॐ इसप्रकार श्रवणकराओ, श्रवण करावते हैं) अर्थात्ॐ इसप्रकारका यह अनुकरण है। अरु जाते अन्यकरके "करोमि या स्यामि वेति" कर्त्ताहौं पावताहौं इस प्रकार किये कथनको श्रवण करके अन्यपुरुष को ॐऐसा अनुकरण करता है। अतएव ॐकार अनुकरण है, यह ॐकारका अनुकरणपना प्रसिद्धहै। अरु ॐइस प्रकार श्रवण कराओ, इस कथनको पायके पुरुष तिस ॐकारके उच्चारणपूर्वक श्रवणकरावते हैं "ॐमिति सामानिगायन्ति,ॐꣳ शोमिति शस्त्राणि शꣳसन्ति, ॐमित्यध्वर्युःप्रतिगरंप्रतिगृणाति"

(ॐइसप्रकार सामकोगायनकरते हैं,ॐशोंऐसे शास्त्रकथनकरे हैं, ॐइस प्रकार अध्वर्यु प्रतिगर प्रतिउच्चारताहै)अर्थात् तैसेही साम-वेदके गानकरनेवाले ॐइसप्रकार सामको गायनकरते हैं, अरुजो ऋचाके कहनेवाले हैं सो, ॐ शो, इसप्रकार गानरहित ऋचाको कहते हैं, तैसेही अध्वर्यु, यज्ञबिषे यजुर्वेदी ब्राह्मण ऋत्विज्, सोॐ ऐसे प्रतिगर, वेदके वाक्य विशेषको, होमकरनेवालेके कथनकथन के प्रति उच्चार करताहै, "ॐ मिति ब्रह्माप्रसौति, ॐ मित्यग्नि-होत्रमनुजानाति, ॐ मिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नुवा-नीति ब्रह्मैवोपाप्नुवन्ति ॥ ॐदश"।ब्रह्मा ॐ ऐसा अनुमोदन करता है, ॐ ऐसा अग्निहोत्र को अनुमोदन करताहै, ब्राह्मण ॐ ऐसेही कहनेको इच्छताहुआ ॐकहता है ब्रह्मको पावोंगा, ऐसे ब्रह्मको ही पावताहै वा ब्रह्मको प्राप्तहोवोंगा, ॐ दश) अर्थात् ब्रह्मा यज्ञ कर्म का कर्त्ता वा यज्ञके दक्षिण भागमें तूष्णीं बैठनेवाला ऋत्विज् विशेष, सो ॐ इसप्रकार अनुमोदन करताहै, अरु ॐ इसप्रकार अग्निहोत्र को अनुमोदन करे है, अर्थात् होताकरके "जुहोमी-त्युक्तः" हवन करता हौं इसप्रकार कथन कियेहुये, ॐ ऐसाही अनुमोदन करता है, अरु जो ब्राह्मणहै सो ॐ ऐसेही कहने को इच्छताहुआ अध्ययन करताहुआ ॐ ऐसेही कहताहै, अर्थात् अध्ययन करनेको ॐ ऐसा ग्रहण करताहै । अरु ब्रह्मनामकवेद को पावोंगा, इसप्रकार इच्छताहुआ ब्रह्मको प्राप्त होताहै । अथ-वा ब्रह्मनामक परमात्मा को प्राप्तहोवोंगा, इसप्रकार आत्माको प्राप्तहोनेको इच्छताहुआ ॐ इसप्रकारही कहताहै । सो चैतन्य रूप ॐकारसे ब्रह्मको पावताही है ॥ इस प्रकार ॐकार पूर्वक प्रवृत्तहुई क्रियाको फलवान् पना (साफल्यता) है, अतएव ॐकाररूप ब्रह्मकी उपासनाकरे, यह समस्त वाक्यों का तात्प-र्य्यार्थ है ॥ ॐ दश १६ इत्यष्टमोऽनुवाकः ८ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच । सत्यञ्चस्वाध्यायप्रवचनेच । तपश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । दमश्चस्वाध्याय प्रवचनेच । शमश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचनेच । अग्निहोत्रञ्चस्वाध्यायप्रवचनेच । अतिथयश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । मानुषश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । प्रजाचस्वाध्यायप्रवचनेच । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचनेच । प्रजातिश्चस्वाध्यायप्रवचनेच । सत्यमितिसत्यवचाराथीतरः । तपइति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धितप स्तद्धितपः । प्रजाचस्वाध्यायप्रवचनेच षट्च १७॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अथ नवमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, "विज्ञानादेवाप्नोति स्वाराज्यमिति" विज्ञानसेही स्वाराज्य को प्राप्त होता है, इसप्रकार कथन कियाहै ताते श्रौत (वेदोक्त) अरु स्मार्त (स्मृतिउक्त) रूप कर्म्मोंका व्यर्थपना प्राप्त हुआ, एतदर्थ उनको व्यर्थपना मत प्राप्तहो, इसप्रकार कर्म्मोंके पुरुषार्थ प्रति साधन भावके देखावने के अर्थ यह अग्रिम अनुवाकरूप ग्रन्थका प्रारम्भ है । "ऋतश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, सत्यश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, तपश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, दमश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, शमश्च स्वाध्यायप्रवचनेच" (ऋत पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, सत्य पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, तप पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, दम पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन, शम पुनः स्वाध्याय अरु प्रवचन) अर्थात् ,ऋत, कहिये शास्त्रादिकों करके बुद्धिविषे निश्चित सूक्ष्म अर्थका होना, अरु ,स्वाध्याय, कहिये वेदादि अध्ययनकरना, अरु ,प्रवचन, कहिये अध्ययन करावना वा वेदाध्ययन ब्रह्मयज्ञ का करना, यह सर्वप्रकार

अनुष्ठान करने योग्यहै, क्योंकि "।स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्"। ऐसा आगेकहेंगे ताते। अरु, सत्य, कहिये सत्यबोलना वा यथार्थ कथनकिया अर्थ इसको सत्य कहते हैं, अरु स्वाध्याय अरु प्रवचन यह अनुष्ठान करनेको योग्यहै। अरु, तप, कहिये कृच्छ्र चान्द्रायण प्राजापत्यादि व्रत अरु स्वाध्यायप्रवचन, यह करने योग्य हैं । अरु, दम, बाह्य चक्षुरादि इन्द्रियोंका विषयों से निग्रह, अरु स्वाध्याय प्रवचन यह करने योग्यहैं । अरु, शम, कहिये मनका निग्रह, अरु स्वाध्याय औ प्रवचन यह करने योग्य है। अर्थात् स्वाध्याय अरु प्रवचनका जो करना है सो उक्त प्रकारके, ऋत, सत्य, तप, दम, शम, इन करके युक्तही कर्त्तव्य है, नतु मिथ्याचार है "। अग्नयश्च स्वाध्याय प्रवचनेच, अग्निहोत्रञ्च स्वाध्याय प्रवचनेच, अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचनेच, प्रजाच स्वाध्यायप्रवचनेच, प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचनेच, प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचनेच,"। (अग्नि अरुस्वाध्याय प्रवचन, अग्निहोत्र अरुस्वाध्याय प्रवचन, अतिथि अरुस्वाध्यायप्रवचन, अरुमानुष अरुस्वाध्यायप्रवचन, प्रजाअरुस्वाध्याय प्रवचन, अरु प्रजन अरु स्वाध्यायप्रवचन, प्रजाति अरु स्वाध्याय प्रवचन) अर्थात् अग्निजोहै सो धारणकरनेयोग्यहै अरु तिसकेसाथ हीस्वाध्याय अरुप्रवचन यहभी धारण करनेयोग्यहै।अरु अग्निहोत्र हवनकरनेयोग्यहै तैसे ।तिसके साथही स्वाध्याय अरुप्रवचन यह भी करने योग्यहैं । अरु अतिथि जोहै सो पूजन करने योग्यहै अरु तिसके साथही स्वाध्याय अरु प्रवचन यह भी करने योग्यहै। अरु मानुष कहिये विवाहादिक जे लौकिक व्यवहार सो जैसे जैसे प्राप्त होवें तैसे तैसे तिनका करना योग्य है, अरु तिसके साथही स्वाध्याय औ प्रवचन यह भी करनेको योग्य है। अरु प्रजा जो है सो उत्पन्न करने योग्य है । अरु तिसके साथही स्वाध्याय अरु प्रवचन यह भी करनेको योग्य है अरु प्रजन, कहिये ऋतुकाल बिषे यथा शास्त्र प्रमाण भार्यागमन कर्त्तव्ययोग्य है, अरु

स्वाध्याय प्रवचन यह करनेयोग्यहै। अरु प्रजाति, कहिये पौत्र की उत्पत्ति अर्थात् पौत्रोत्पत्ति होनेसे पुत्रको अपने स्थानापन्न स्थापित करना योग्य है, अरु स्वाध्याय प्रवचन भी साथही करनेयोग्य है, ॥ (अर्थात् जैसे स्वाध्याय प्रवचन उक्त प्रकारके ऋतसत्य तपदम शमादि करके सहितही करनेको योग्यहै तैसेही अग्नि सेवन से प्रजाति पर्यन्त जो जो कार्य करने को योग्य हैं सो सो उक्त प्रकारके स्वाध्याय प्रवचन करके युक्तही करनेको योग्यहैं) ॥ यहां इन सर्व कर्म्म करके युक्त पुरुषको भी स्वाध्याय अरु प्रवचन यत्नसे अनुष्ठान करनेयोग्य है, अर्थात् गृहस्थ पुरुष को भी स्वाध्याय प्रवचन के करने विषे प्रमाद कदापि कर्त्तव्य नहीं (इसप्रयोजनको लेके सर्व कर्म्मोंके साथ स्वाध्याय अरु प्रवचनका ग्रहणहै। अरु स्वाध्यायके आधीन अर्थका ज्ञानहै, अरु अर्थ ज्ञानके आधीन परमश्रेयहै। अरु प्रवचन जो है सो तिसके विस्मरण न होनेके अर्थ है, वा धर्म्मकी वृद्धिके अर्थ है। एतदर्थ स्वाध्याय अरु प्रवचनविषे आदर करना योग्यही है " सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः, तप इति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः, स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः, तद्धितपस्तद्धितपः। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च षट् च " (सत्यही ऐसे सत्य वचन नाम वाला राथीतर, अरु तपही ऐसे तपोनित्य नामवाला, पौरुशिष्ट, अरु स्वाध्याय अरु प्रवचनही नाक नामवाला मौद्गल्य (मानते हैं) सोई तपहै, प्रजा अरु स्वाध्याय अरु प्रवचन अरु षट्) अर्थात् सत्यही अनुष्ठान करने को योग्य है, इसप्रकार सत्यवचन नामवाला रथीतर नामक कुलका गोत्र कहिये मूलपुरुष ऐसा जो राथीतर आचार्य मानताहै। अरु तपही कर्त्तव्यहै, इसप्रकार तपोनित्य इस नामवाला पुरुशिष्टका पुत्र पौरुशिष्ट आचार्य मानता है। अरु स्वाध्याय अरु प्रवचनही अनुष्ठान करनेको योग्यहै, इसप्रकार नाक नामवाला मुद्गल ऋषिका पुत्र मौद्गल्य आचार्य मानता है। जाते सोई स्वाध्याय अरु प्रवचन तपहै, सोई तप

अहं वृक्षस्य रेरिवा कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्व प-वित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणꣳ सुवर्चसम् । सुमेधा अमृतोऽक्षितः इति । त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् । अहꣳषट् १८ ॥ इति दशमोऽनुवाकः १० ॥

है,ताते सो अनुष्ठान करनेको योग्यहै ॥ पूर्व कथन किये भी ,सत्य, तप, स्वाध्याय अरु प्रवचनका जो पुनःग्रहणहै सो आदरार्थ है ॥ प्रजा अरु स्वाध्याय औ प्रवचन अरु षट् यह अनुष्ठानकरने को योग्यही है ॥ १७ ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य, ["अहं वृक्षस्यरेरिवा" मैं वृक्षका प्रेरकहूं, इसमंत्र का त्रिशंकुऋषिहै, पंक्तिछंद है, परमात्मा देवताहै, ब्रह्मविद्याकी प्राप्त्यर्थ इसकेजपका विनियोगहै] मैं वृक्षका प्रेरक हौं, इस मंत्र का जो उपदेशहै सो स्वाध्याय कहिये जपके अर्थ है,अरु स्वाध्याय जो है सो प्रकरणसे विद्याकी उत्पत्तिके अर्थ है । अरु यह प्रकरण विद्याके अर्थ है अन्यके अर्थ नहीं,अतएव स्वाध्याय करके शुद्धहुये अन्तःकरण वाले पुरुषको विद्याकी उत्पत्ति कल्पना करते हैं अर्थात् कहते हैं "अहंवृक्षस्य रेरिवा कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव, ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि" (मैं वृक्षका प्रेरकहौं मेरी पर्वतके पृष्ठवत् कीर्तिहै, ऊर्ध्वपवित्रहौं, सूर्यवत्शुद्ध अमृतहौं) अर्थात् मैं उच्छेदरूप संसार वृक्षका अन्तर्यामीरूपसे प्रेरकहौं, अरु मेरी पर्वत के पृष्ठ (शिखर) वत् कीर्ति उठी है, अरु मैं ऊर्ध्व पवित्रहौं अर्थात् जिस मुझ सर्वात्मा का ऊर्ध्व कहिये कारण पवित्र ज्ञानस्वरूप परमात्माहै । "नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिहविद्यते" इस स्मृति प्रमाणसे । अतएव मैं ऊर्ध्व पवित्र हौं अरु मैं सूर्यवत् शुद्ध अमृतरूपहौं, अर्थात् जैसे अनेक श्रुति स्मृतियोंके प्रमाण से सूर्य्य विषे शुद्ध अमृतरूप आत्मतत्त्व है तैसे मैं शुद्ध अमृतमय आत्मतत्त्वहौं । अरु "द्रविण ꣳ सुवर्चसम्, सुमेधा अमृतोऽक्षितः इति "

(प्रकाशवान् धनहौं वा प्रकाशवाला धन मुझको प्राप्त हुआ है, सुमेधा हौं अमृतहौं अक्षीण हौं) अर्थात् मैं सर्वलक्षणवाली शोभन है मेधा (बुद्धि) जिसकी ऐसा सुमेधाहौं, संसारकी उत्पत्ति स्थिति अरु संहार करनेरूप कुशलताके योगसे मुझको सुमेधापना है, इसही करके मरणधर्म वर्जित अमृतरूप हौं, अरु अक्षीण कहिये अव्यय क्षरभाव रहित वा अमरता युक्त मैं हौं। इत्यादि ब्राह्मण भाग है "त्रिशंकोर्वेदानुवचनम्, अहं षट्" (ऐसा त्रिशंकु का वेदानुवचन है, मैं षट् रूप हौं) अर्थात् इसप्रकार ब्रह्मभूत ब्रह्मवेत्ता त्रिशंकु नाम ऋषिका वेदानुवचन है। वेद जो आत्माकी एकता का विज्ञान तिसकी प्राप्त्यर्थ जो वचन तिसको वेदानुवचन कहते हैं। अरु अपने को कृतकृत्यताकी प्रसिद्धि के अर्थ वामदेव ऋषिवत् त्रिशंकुऋषि ने ऋषि उक्त ज्ञानसे मन्त्र का आम्नाय कहिये आत्म विद्याकोश देखा है, यह अर्थ है॥ अरु इस मन्त्रका जो जप (बारम्बार मनन) करना है सो आत्मविद्या की उत्पत्ति के अर्थ जाना जाता है। अरु [केवल इसमन्त्रका जपही विद्याके अर्थ है ऐसा नहीं किन्तु पूर्वोक्त कर्म्मभी विद्याके अर्थ है, ऐसा कहते हैं] 'ऋत, इत्यादि नवम अनुवाक विषे कर्म के कहने के आरम्भसे लेके वेदानुवचन पर्यन्त पठन करने से यह जानाजाताहै कि ऐसे श्रौत स्मार्तरूप नित्यकर्मों विषे युक्तहुये निष्काम अरु परब्रह्मके जाननेकी इच्छा वाले पुरुषोंको आत्माआदिकोंको विषय करनेवाले ऋषिउक्तज्ञान प्रकट होता है॥ मैं षट्रूप हौं १८॥ इति दशमोनुवाकः १०॥

अथ एकादशोऽनुवाकः॥

हेसौम्य "वेदमनूच्येति" वेदको पढ़ायके, इत्यादिरूपकर्त्तव्यता के उपदेशका आरंभ जोहै सो ब्रह्मज्ञानहोनेसे पूर्व श्रौत अरुस्मार्त्त रूप कर्म्म नियम से करने योग्य हैं, इस नियमके (लखावने) अर्थहै, क्योंकि अनुशासन(शिक्षा)करनेकी श्रुतिकोपुरुषकेसंस्कार

वेदमनूच्याचार्य्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यंवद । धर्म्मञ्चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्यायप्रियंधनमाहृत्य प्रजातन्तुं माऽव्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यैन प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् १६ ॥

रूप अर्थवाली होने से । अरु संस्कार करके युक्त शुद्ध चित्तवाले पुरुषको अनायाससेही आत्मज्ञान उत्पन्न होता है । तहां "तपसा कल्मषंहन्ति विद्ययामृतमश्नुतइतिस्मृतिः" तपकरकेपापकोनाश करे हैं, विद्या करके अमृत को पावता है, इस स्मृति प्रमाणसे । अरु यहां भी आगे भृगुवल्ली विषे कहेंगे कि "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति" तप करके ब्रह्मको जान, इस वाक्य करके । तातै विद्याकी उत्पत्ति के अर्थ कर्मानुष्ठान करने योग्य है । अरु " अनुशास्तीति " शिक्षा करता है, इसप्रकार अनुशासन, इस श्रुति वाक्यके हुये अनुशासन (शिक्षा)के उल्लंघन किये दोषोत्पत्ति होतीहै, क्योंकि केवल ब्रह्मविद्या के आरम्भसे पूर्व कर्मों के आरम्भसे अरु विद्या के उत्पन्न होनेसे " अभयं प्रतिष्ठां विन्दते " " नाबिभेति कुतश्चनेति " " किमहं साधुना करवमिति "अभय स्थिति को पावताहै, किसी से भी भयको पावता नहीं, क्या मैं शुभ कर्म्मको न करताहुआ,इत्यादि श्रुति वाक्यों करके जाते कर्म्म की निर्पेक्षता आगे देखावेंगे, अतएव जानाजाता है कि केवल ब्रह्मविद्याकी उत्पत्तिसे पूर्व आरम्भ किये जो कर्म्महैं सो पूर्व संचय हुये पापके नाशद्वारा विद्याकी उत्पत्त्यर्थ है । क्योंकि "अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुत इति" अविद्या (कर्म) से मृत्युको तरके विद्या (आत्मज्ञान) से अमृत को पावताहै । यह ऋग्वेद का वा यजुर्वेद का मन्त्र भी विद्योत्पत्ति से पूर्वही कर्मानुष्ठान को सूचन करे है । पूर्व ऋत आदिकके उपदेश

कर्मकी व्यर्थताके निवारणार्थ कर्मानुष्ठान कहा, अरु यहां तो ज्ञानकी उत्पत्ति रूप अर्थवाला होनेसे करनेकी योग्यता के नियमार्थ कर्मका अनुष्ठान कहतेहैं। [अध्ययन किये वेदके अर्थका विचार किये बिना गुरुके गृह से (निवृत्त होय) लौटना नहीं, किन्तु अध्ययनकी विधिको अर्थज्ञानद्वारा पुरुषार्थकेअवधिपनेकी सिद्ध्यर्थ अक्षर ग्रहणके अनन्तर अर्थ के ज्ञानविषे प्रयत्न करना योग्य है इसप्रकार कहते हैं । "(वेदमनूच्याचार्योऽन्ते वासिन मनुशास्ति "(वेद को पढ़ायके आचार्य्य शिष्यके अर्थ शिक्षा करे हैं) अर्थात् वेदको पढ़ाय के आचार्य्य जो है सो अपने शिष्योंके अर्थ ग्रन्थके धारणाकिये पश्चात् शिक्षा करे है,अर्थात् तिस (पढ़ाये हुये वेद) के अर्थ को ग्रहण करावे है। एतदर्थ जाना जाता है कि वेदाध्ययनवाले पुरुषको धर्म्म की जिज्ञासा न करके गुरुके गृहसे लौटना नहीं, क्योंकि "(बुद्ध्वा कर्म्माणि चारभेदिति स्मृतेश्च ") जानके कर्म्मों को आरम्भ करे, इस स्मृतिके प्रमाणसे ॥ प्र० आचार्य कैसे शिक्षा करे है । उ० तहां कहते हैं, आचार्य कहता है कि हे शिष्यो "(सत्यं वद, धर्म्मंचर ") (सत्य बोल अरु धर्माचरण कर) अर्थात् सत्य , प्रमाणके अनुसार जानेहुये अर्थका कथनकर, तैसेही धर्म को आचरण कर। यहां जो धर्म शब्द है सो अनुष्ठान करने योग्य साधनों का तुल्यवाचकहै, क्योंकि सत्यादिकोंकी विलक्षणताका कथनहै ताते, अरु स्वाध्यायान्मा प्रमदः, आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः "(स्वाध्यायसे प्रमाद मतकर, आचार्य के अर्थ प्रिय धन देके प्रजाका उच्छेदमत करे) अर्थात् स्वाध्याय कहिये अपने वेदके अध्ययन से प्रमाद मत करे, अरु आचार्य के अर्थ उनको प्रियधन देके (अर्थात् आचार्य को जो वाञ्छित धनहै सो अपने पास न होय तो वो धन अन्यसे ल्यायके आचार्यको देवे) तदनन्तर आचार्य की आज्ञा पायके (ब्रह्मचर्यसे समावर्त्तन पूर्वक) अपने (जाति कुलके)समानस्त्रीसे बिवाहकरके (प्रजोत्पादन

करे।प्रजाकाउच्छेद मतकरे।यहांअभिप्राययहहै कि पुत्रकेअनुत्पन्न हुयेभी। पुत्रोत्पत्तिके अर्थ।दशरथादिवत् पुत्रेष्टिआदिक।कामुकादि कर्मोंसे तिसकी उत्पत्तिके अर्थ प्रयत्न कर्तव्य है। क्योंकि प्रजा प्रजनन ,ऋतुकालबिषे भार्यागमन, अरु प्रजाति ,पौत्रोत्पत्ति, इनतीनके उपदेश का साम्यर्थ है ताते। अरु अन्यथा होता तो "प्रजनन" इस एकही को श्रुति कहती। अरु जिसकरके उक्त तीनों का श्रुति बिषे कथन कियाहै एतदर्थ इस कथनका उक्त अभिप्राय घटितही है॥ अरु "। सत्यान्न प्रमदितव्यम्, धर्म्मान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम्, भूत्यै न प्रमदितव्यम्, स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्।" (सत्यसे प्रमाद करना योग्य नहीं, धर्म्मसे प्रमाद करना योग्य नहीं, कुशलसे प्रमाद करना योग्य नहीं, विभूतिके अर्थ प्रमाद करना योग्य नहीं स्वाध्याय अरु प्रवचनसे प्रमाद करना योग्य नहीं (अर्थात् सत्यसे प्रमाद करनेको योग्य नहीं है, सत्यसे जो प्रमाद है सो झूठका प्रसंगहै क्योंकि प्रमाद शब्दका सामर्थ्य। असत्यबिषे।है ताते एतदर्थ विस्मृति।भूल।से भी असत्य करना योग्यनहीं यह अर्थहै। अन्यथा सत्यकेकथनका।निषेधही होवेगा।अरु"। समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति" इस अन्यश्रुतिके प्रमाण से जो मिथ्याभाषणकरताहैसो समूलसूखजाताहै।अतएवसत्य से प्रमादकरना योग्य नहीं। अरु धर्म्मसे प्रमादकरनेको योग्य नहीं, क्योंकि धर्मशब्द अनुष्ठानकरनेयोग्य साधनोंकोविषयकरनेवाला है। ताते अरु साधनों के अनुष्ठानकाअभाव प्रमादहै सो करनेयो नहीं किंतु।साधनोंका।अनुष्ठान करनाही योग्यहै। अरु कुशल कहिये अपने रक्षणरूप अर्थवाले कर्मोंसे प्रमादकरना योग्यनहीं। अरु विभूति कहिये ऐश्वर्य तिसके अर्थ अर्थात विभूतिरूप अर्थ वाले मङ्गलयुक्त कर्मोंसे प्रमादकर्त्तव्य योग्यनहीं। अरुस्वाध्याय अरु प्रवचन इनसे भी प्रमाद कर्त्तव्य योग्यनहीं, किन्तु यहदोनों नियमसे कर्तव्य योग्यही है १६॥

देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवोभव। पितृदेवोभव। आचार्य्य देवोभव। अतिथिदेवोभव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानिसेवितव्यानि। नोइतराणि। यान्यस्माकछंसुचरितानि। तानि त्वयो पास्यानि। नोइतराणि २०॥

हे सौम्य, "देव पितृ कार्य्याभ्यां नप्रमदितव्यम्" (देवपितृयोंके कार्य्योंसे प्रमाद करना योग्य नहीं) अर्थात् देव अरु पितृके सम्बन्धी (यज्ञ श्राद्धादि) कर्म कर्त्तव्यही हैं, उनसे प्रमादकरना योग्य नहीं। (हे प्रियदर्शन) "मातृ देवोभव, पितृ देवो भव, आचार्य देवोभव, अतिथि देवोभव" (मातृदेवहो, पितृदेवहो, आचार्य देवहो, अतिथि देवहो) अर्थात् हेशिष्य तू माताहै देव जिसका ऐसा मातृदेव हो, अरु पिता है देव जिसका ऐसा पितृदेव हो, अरु आचार्य है देव जिसका ऐसा आचार्यदेवहो, अरु अतिथि है देव जिसका ऐसा अतिथिदेवहो,। अर्थ यह जो माता से अतिथि पर्यन्त कहे जे चार सो (शिवादि) देवतावत् उपासनीय है (अतएव तू उक्त चारोंको देवतावत् मानके उनकी उपासना कर) अरु "यान्यनवद्यानि कर्म्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि, यान्य स्माकछंसुचरितानि, तानि त्वयोपास्यानि, नो इतराणि" (जो अनिन्दित कर्म्म हैं सो सेवन करने योग्य हैं, इतर नहीं, अरु जो हमारे श्रेष्ठ आचरण हैं सोई तुझकरके उपासना करने योग्य हैं, इतर नहीं) अर्थात् जो अन्य शिष्टाचाररूप अनिंदित कर्म हैं सो तुझ करके सेवन करनेको योग्य हैं, अरु अन्य जे निंदित कर्म हैं सो यदि श्रेष्ठ पुरुषों करके किये हुये भी हैं, तथापि सो सेवन करनेको योग्य नहीं। अरु जो हम आचार्य्योंके वेदसे अविरुद्ध श्रेष्ठ आचरणहैं सोई तुझ करके उपासना करनेको योग्य हैं, अर्थात जो वेदसे अविरुद्ध श्रेष्ठ आचरण हैं सो पुण्यकी उत्पत्ति के अर्थ नियमसे सेवने योग्य हैं। अरु श्रेष्ठ

एकेचास्मच्छ्रेयाᳬसोब्राह्मणाः । तेषांत्वयासनेनप्र-
श्वसितव्यम् । श्रद्धयादेयम् । अश्रद्धयाऽदेयम् । श्रिया
देयम्।ह्रियादेयम्।भियादेयम्। संविदादेयम् ॥ अथयदि
ते कर्म्मविचिकित्सावाद्वृत्तविचिकित्सावास्यात् २१ ॥

से अन्य अश्रेष्ठ यदि आचार्य करके भी सेवन किये हैं तथापि सो विपरीताचरण तुझ करके सेवन करने योग्य नहीं २० ॥

हे सौम्य, "एके चास्मच्छ्रेयाᳬ सो ब्राह्मणाः, तेषांत्वयाऽऽसनेनप्रश्वसितव्यम्" (कईएक हम सो अत्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं तिनका आसनके देनेसे तुझ करके श्रमका निवारण करने को योग्य है) अर्थात् जो कईएक आचार्य्यपने आदिक धर्म्मों करके विलक्षणता को प्राप्तहुये हम सो अत्यन्त श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय आदिक नहीं।अर्थात् हेसौम्य आचार्यपने आदिक उत्तम धर्म्मों करके विलक्षणता को प्राप्तहुये क्षत्रियों को श्रेष्ठपना है, परन्तु अत्यन्त श्रेष्ठपना तो उक्तप्रकार धर्म्माविष्ट ब्राह्मणको ही है सो क्षत्रिय को नहीं।तिनका आसन देने आदिक सेवासेतुझ करके श्रमका निवारण करना योग्यही है। अर्थात् हे सौम्य जो कदापि आचार्य कृपाकरके शिष्यके गृह पगधारे तो तिनके मार्ग-जन्य श्रमके निवारणार्थ शिष्यकरके अर्घ पाद्य प्रक्षालन आसन देने आदि सेवा का करना सर्वदा उचितही है। अथवा तिनकी वार्त्ताके निमित्तरूप आसनके सिद्धहुये श्रमका निवारण भी करने योग नहीं, किन्तु केवल उनके वाक्यके अर्थके सार कहिये लक्ष्य के ग्राही होनाचाहिये,किम्वा जोकुछ देनाहोवे सो"श्रद्धयादेयम्, अश्रद्धयाऽदेयम्, श्रिया देयम्, ह्रियादेयम्, भियादेयम्, संविदादेयम्" (श्रद्धा से देना, अश्रद्धासे न देना, लक्ष्मी से देना, लज्जा से देना, भयसे देना, संविदासे देना) अर्थात् आचार्य को वा अन्य ब्राह्मणादिकों को जो कुछ देना सो श्रद्धासेही देना योग्य है। क्योंकि श्रद्धासे किया दान फलके अर्थ होताहै ताते।

ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्त्तेरन् । तथा तत्र वर्त्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ताः । अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्त्तेरन् । तथातेषुवर्त्तेथाः । एषआदेशः । एषउपदेशः । एषा वेदोपनिषद् एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमुचैतदुपास्यम् ॥ स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । तानि त्वयोपास्यानि । विचिकित्सा वास्यात्तेषुवर्त्तेरन्सप्तच २२॥इत्येकादशोऽनुवाकः ११ ॥

अरु अश्रद्धासे देनायोग्य नहीं । क्योंकि अश्रद्धासे दियादानफल के अर्थ होवे नहीं ताते । अरु लक्ष्मीसे देना योग्य ।अर्थात् अपने पास जो धनहै तो धन गऊभूमि अन्नआदिक ब्राह्मणादिकोंको दान देनायोग्यहै। अरुलज्जासेदेनायोग्यहै।अर्थात् जो दानकरे तिसविषे अपने दातापनेरूप अभिमानसे लज्जाकरकेही करे क्योंकि अभिमान आसुरीसम्पदा अश्रेष्ठहै ताते।अरुभयसे देनायोग्यहै।अर्थात् दानके न देनेसे संसारमें कृपणतारूप अपकीर्त्तिका अरु पुनर्जन्ममें दरिद्रीहोनेके भयकरकेभी दानदेनायोग्यहै क्योंकि मुख्यकरके दानरूप धर्म्मही मनुष्यका कल्याणकारी है ताते।अरुसंविदाकहिये मित्रादिक तिनके कार्यमें देना योग्यहै ।अर्थात् मित्र उपलक्षण करकेमित्र वा सम्बंधीजे निर्धनहैंतिनकेशुभाशुभकार्य्योंमें, धनकी पुनरावृत्तिकरने की इच्छात्याग के धनकादेना योग्य है । अरु "। अथ यदि ते कर्म्म विचिकित्सा वा वृत्त विचिकित्सा वा स्यात् "। (अथवा जब तुझको कर्म्मविषे संशयहोय वा आचरणविषे संशय होय) अर्थात् तुझको इसप्रकार वर्त्तमानहोते जब कदाचित् श्रौत वा स्मार्त्त कर्म्मविषे वा आचरणविषे संशयहोवै २१ ॥

हे सौम्य, "। येतत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः,युक्ता अयुक्ताः, अलूक्षा

धर्म्मकामाः स्युः यथा ते तत्रवर्त्तेरन् तथातत्र वर्त्तेथाः"।(जो तिस बिषे बिचारमें समर्थ, अन्यकार्यबिषेलगे,अक्रूरबुद्धिवाले धर्म्म के अर्थी ब्राह्मण होवें वो जैसे तिस बिषे वर्त्तमानहोवें तैसे तू भी तहां वर्त्तमान हो) अर्थात् तब जो तिस देशविषे वा कालविषे विचारमें समर्थ अरु कर्म बिषे वा आचरणबिषे जुड़े अरु अन्य कार्यविषे लगे स्वतन्त्र अरु (बुद्धिकी क्रूरता से रहित)अक्रूर बुद्धि वाले धर्म्म वा पुण्यके अर्थी अरु भोगोंकी कामनासे रहित जो ब्राह्मण होवें वो जिस प्रकार तिन कर्म्मोंविषे वा आचरणों विषे वर्त्तमानहोवें, तैसे तू भी तहां वर्त्तमानहो । अरु "(अथाभ्याख्या- तेषु, ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्म्म कामाः स्युः, यथा तेतेषुवर्त्तेरन्, तथातेषु वर्त्तेथाः "।(संशयरहित दोषकरके युक्त तिनबिषे जो तहां बिचारमें समर्थ अन्य कार्य्यों में लगे अक्रूर बुद्धिवाले धर्म्मके अर्थी ब्राह्मणहोवें सो जैसे तिन बिषे वर्त्तमान होवें तैसे तिनविषे वर्त्तमानहो) अर्थात् किसी भी संशय रहित, अरु आरोपित दोषकरके युक्त जो पुरुष हैं तिनों बिषे जो तहां बिचारमें समर्थ, अरु कर्म्म वा आचरण बिषेलगे अरु (बुद्धिके क्रूरतादि दोषरहित) अक्रूर बुद्धिवाले, अरु धर्म्म वा पुण्यकेअर्थी जो ब्राह्मण होवें वो जिसप्रकार तिनकर्म्मोंविषे वा अन्य आचरणों (बिषे बर्त्तमान होवें, तैसे तू भी (तिनाविषे) वर्त्तमान हो (अर्थात् पूर्वके मन्त्रके अन्तविषे कहा है कि जो कदाचित्तुझको श्रौत वा स्मार्त्त कर्म्मोंबिषेवाआचरणोंबिषे संशय होवे, तिस कथन से यहां इस मन्त्रके यहां पर्य्यन्त संबंध है कि जो तुझको श्रौत वा स्मार्त्त कर्मोंविषे वा अन्य आचरणों विषे संशय होय तो उक्त प्रकारके ब्राह्मण उनकर्म्म वा आचरणोंबिषे वर्त्ते होवें तैसे तू भी तिनबिषे वर्त्तमानहो) ॥ अरु "(एष आ- देशः एष उपदेशः, एषावेदोपनिषद्, एतदनुशासनम, एवमु पासितव्यम, एवमुचैतदुपास्यम् "।(यह आदेश है यह उपदेश है, यह वेदका रहस्य है, यही अनुशासनहै, ऐसे करनेको योग्य

शन्नो मित्रः शं वरुणः। शन्नोभवत्वर्य्यमा। शन्नइन्द्रो बृहस्पतिः। शन्नोविष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम्। ऋतमवादिषम्। सत्यमवादिषम्। तन्मामावीत्। तद्वक्तारमावीत्। आवीन्माम्। आवीद्वक्तारम्। सत्यमवादिषंपञ्चच। ॐशान्तिः शान्तिः शान्तिः २३॥ इति द्वादशोऽनुवाकः॥

है, ऐसे प्रसिद्ध करनेको योग्य है, अर्थात् यह आदेश कहिये विधि है, अरु यही पुत्रादिकों को उपदेशहै, अरु यही वेद का सूक्ष्मरहस्य वेदार्थ है, अरु यहही ईश्वरकीआज्ञारूप अनुशासन(शिक्षा) है, वा आदेश वाक्य रूपाविधि को कथन किया होनेसे यह सर्व प्रमाणरूप वाक्यों का अनुशासन है, एतदर्थ उक्तप्रकार का यह सर्व करनेको योग्य है, ऐसे प्रसिद्ध सर्व करने योग्यहै। यहां पुनः जो कथन है सो यह सर्व करने को अयोग्य नहीं, इस आदरके अर्थ है॥ "स्वाधाय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्, तानित्वयो पास्यानि, विचिकित्सा वा स्यात्तेषु वर्त्तेरन् सप्तच" (स्वाध्याय, अरु प्रवचनसे प्रमाद करना योग्य नहीं, वे तुझकरके करनेयोग्य हैं वा संशय होय, तिनाविषे वर्त्तमानहोवे, सप्त) ॥ इति एकादशोऽनुवाकः ११॥

अथ द्वादशोऽनुवाकः॥

हे सौम्य, अब कथन की हुई विद्या की प्राप्तिविषे विघ्नों के निवारणार्थ शान्ति पाठ कहते हैं "शन्नो मित्रः, शं वरुणः, शन्नो भवत्वर्यमा, शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः, शन्नो विष्णुरुरुक्रमः" (मित्र हमको सुखकारीहो, वरुण हमको सुखकारी हो, अर्यमा हमको सुखकारी हो, इन्द्र हमको सुखकारी हो, बृहस्पति हमको सुखकारी हो, विष्णु हमको सुखकारी हो) अर्थात् प्राण का अरु

दिवस का अभिमानी जो मित्र नामक देवता सो हमको सुखकारीहो अरु वरुण जो है सो भी हमको सुखकारी हो। अरु तैसेही सूर्य्याभिमानी जो अर्यमा सो हमको सुखकारीहो । तैसेही इन्द्र अरु बृहस्पति हमको सुखकारीहो । अरु तैसेही उरुक्रम कहिये प्रथम वामन होयके पश्चात् विश्वरूप होनेवाला, ऐसा जो विष्णु सो हमको प्रसन्न हो । " नमो ब्रह्मणे, नमस्ते वायो, त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् " (ब्रह्मको नमस्कार करता हौं, वायु को नमस्कार करता हौं, तूही प्रत्यक्ष ब्रह्म है, तुझही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहौं, ऋत कहताहौं सत्य कहताहौं, अर्थात् ब्रह्मके अर्थ मैं नमस्कार करता हौं, हे वायो ! तेरे अर्थ मैं नमस्कार करताहौं, अरु जिसकरके तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है, एतदर्थही मैं तुझको प्रत्यक्ष ब्रह्म कहताहौं, ऋत कहताहौं, अरु सत्य कहताहौं, । "तन्मामावीत्, तद्वक्तारमावीत्, आवीन्माम्, आवीद्वक्तारम्, " (सो मुझको रक्षाकरो, सो वक्ताको रक्षाकरो, मुझको रक्षाकरो, वक्ताको रक्षाकरो,) अर्थात् सो प्रत्यक्ष अपरब्रह्म वायु मुझ अपराविद्या के अर्थी को रक्षाकरो, अरु तिस विद्या के वक्ता आचार्य को रक्षाकरो, मुझको रक्षाकरो, वक्ताको रक्षाकरो " सत्यमवादिषम्, पञ्च च । ॐशान्तिःशान्तिः शान्तिः " । २३ ॥ (सत्य कहताहौं अरु पांच, ॐशान्तिहो, शान्तिहो, शान्तिहो ॥

हे सौम्य, " शन्नः शिक्षाꣳ, सह नौ, यश्छन्दसां भूः सयः पृथिव्योमित्यृतश्चाहं वेदमनूच्य, शन्नो द्वादश " (हमको, सुख, शिक्षा को, हमको, साथही, जो वेदके मध्य पृथिवी, सो जो पृथिवी ॐ, ऐसे ऋत अरु मैं वेदको पढ़ायकै द्वादश अनुवाक हमको सुख) " शन्नो मह इत्यादित्यो, नो इतराणि, त्रयो विꣳशतिः हरिः ॐ, शन्नो वक्तारम् " (हमको सुख महर ऐसा सूर्य्य है, अन्य नहीं । तेईस मन्त्र हैं हरिः ॐ । हमको सुख, वक्ताको सुख ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः १२ ॥

शन्नः शीक्षा छं। सहनौ। यश्छन्दसां भूः। सयः
पृथिव्योमित्यृतञ्चाहं वेदमनूच्य। शन्नो द्वादश॥
शन्नोमह इत्यादित्यो। नो इतराणि। त्रयोविंछं शतिः॥
हरिः ॐ। शन्नो वक्तारम्॥ इतिद्वादशोऽनुवाकः २०॥
इति शिक्षाध्यायः प्रथमावल्ली १॥

हे सौम्य ! अब यहां विद्या अरु कर्मके भिन्न भिन्न फलके ल-
खावनेके अर्थ विचार कहते हैं, तहां प्रथम पांच विकल्प देखावते
हैं, सो यहहैं कि, क्या केवल कर्मसेही परमश्रेय होवेहै, वा विद्या
की अपेक्षावाले कर्मसे परमश्रेय होवे है, अथवा विद्या अरु कर्म
के समुच्चय सेवन करनेसे परमश्रेय होवे है, किंवा कर्मकी अपेक्षा
वाली विद्यासे परमश्रेय होवे है, वा केवल विद्यासेही परमश्रेय
होवे, यह ५ विकल्पहैं। तहां केवल कर्मसेही परमश्रेय होताहै,
ऐसा प्रथम पक्षवादी कहते हैं क्योंकि समस्त वेदार्थ के जानने
वाले पुरुषको ही कर्मका अधिकारहै ताते। अरु "स रहस्यो द्वि-
जन्मनेति स्मरणात्" तीनवर्णके पुरुषोंकरके रहस्य सहित स-
मस्तवेद अध्ययन करनेको योग्यहै, इस स्मृतिका प्रमाणकरके
सम्पूर्ण वेदका अध्ययन जो है, सो उपनिषद्के अर्थ अरु आत्मज्ञा-
न करके सहितही होताहै। अरु "विद्वान्यजते। विद्वान्याजयति"
विद्वान् यजन करता है, विद्वान् यजन करावताहै, इस प्रकार
श्रुति प्रमाण करके विद्वान्कोही कर्मोंविषे अधिकार देखाजाता
है। अरु सर्व ठिकाने जानके ही अनुष्ठान होता है। अतएव
समस्त वेद कर्मकेअर्थहीहै, इसप्रकार कोईएक 'प्रथमविकल्प
वादी, मानते हैं, अरु कहते हैं कि ' जो कदापि कर्म्मोंसे परम
श्रेय प्राप्त न होवे तो समस्तवेद व्यर्थ होवेगा ["भूतंभव्यायोप-
दिश्यत" उक्त अर्थ जो है सो अग्रिम कथन करनेके अर्थ उप-
देश करते हैं, इस न्यायसे, ज्ञानको भी कर्म कर्त्ताका संस्कार
होनेकरके कर्म विधिका साधन है ताते' अरु श्रवणकिये फल

को भी अर्थवाद मात्रपनाही है ताते, अतएव कर्मसेही परमश्रेय मोक्ष होवेहै, यह ,केवल कर्मसेहीमोक्षहोवे है, ऐसा पूर्वविकल्प वादियोंका पूर्व पक्ष है, तहां अब सिद्धान्ति कहते हैं] सो प्रथम पक्षवादी का कथन बनेनहीं, क्योंकि मोक्ष नित्य है ताते । अरु जिसकरके मोक्षको नित्यअंगीकार करते हैं, अरु लोकबिषे कर्मों के कार्योंको अनित्यपना प्रसिद्ध ही है, एतदर्थ जबकर्मोंकरकेही मोक्ष होताहोवे तो सोभी अनित्य होवेगा, सोइष्टनहीं ॥ अरु जो ऐसाकहै कि काम्य अरु निषिद्धइनउभयकर्मोंके अनारंभसे,अरुप्रारब्ध कर्म के भोगद्वारा क्षयहोनेसे, अरुनित्य विहित कर्म के अनुष्ठान करनेसे पाप कर्मोंके असंभव से, ज्ञानकी अपेक्षासे रहितही केवल कर्म करके मोक्ष है। [यद्यपि अध्ययनरूप विधिका विषय हुआ सर्व वेदोंका अर्थ एकही पुरुषकरके विचारकरनेयोग्यहै, तथापि अध्ययन विधिबिषे प्रतिवाक्य का पढ़ावना अरु प्रतिवाक्यके अर्थका जो विचार है, सो ब्यापार के भेदसे तिस २ कर्मके किये फलकी कामनावाले पुरुष को कर्म बिषे उपयोगी वाक्योंके अर्थ के ज्ञानवान् होने मात्रकरके कर्मबिषे अधिकारके असंभवसे, अरु ब्रह्मसाक्षात्कार जो है तिसका उन कर्म बिषे अनुपयोग है ताते, समस्त वेदार्थ के जाननेवाले पुरुषको कर्मके अधिकार बिषे प्रमाण नहीं (अर्थात् जिस पुरुषका स्वर्गादिकजिसवस्तु की कामना होती है सो तिसफलके साधक कर्म बिषे उपयोगी वेदमंत्रके अर्थकोजानताहै, अरु वेदाध्ययनकेसाथ वेदान्तरजेब्रह्मसाक्षात्कारबोधक वाक्य तिनोंकाभी अध्ययन होताहै, परन्तु उनवाक्यों का कर्म्मों में उपयोग नहीं ताते उन वाक्यार्थ ज्ञानको जानते नहीं, अरु जो समस्त वेद वेदार्थ के जाननेवाला पुरुष है तिस कोही कर्मबिषे अधिकार है ऐसा कोई प्रमाण नहीं) इस प्रकार कहते हैं] सो कथन बने नहीं । क्योंकि (सञ्चित कर्म्मों में से जो कर्म अपना फल देनेको प्रारब्धरूपसे प्रवृत्तहुये तिनसे) शेष (बाकी सञ्चित कर्म रहनेका संभवहै, अरु उन शेष कर्म्मों के

निमित्तवाली जो अन्य शरीरोंकी उत्पत्ति सो प्राप्तहोती है। अरु शेष (संचित) कर्मोंका नित्यकर्मों से अविरोध है। क्योंकि नित्य कर्म्मही करने के पश्चात् सञ्चितभाव को प्राप्त होता है। ताते नित्य कर्मके अनुष्ठान से शेष कर्मोंका नाश होना असंभवहै। इस प्रकार पूर्व कहा॥ अरु सर्व वेदार्थ के ज्ञानवाले पुरुष को कर्म के अधिकार से केवल कर्मसे ही मोक्षहोगा, इत्यादिक जो कहा सो [यद्यपि अध्ययन विधिकी प्रेरणासेहुआ जो वेदान्तका विचार सो भी गुरुके गृहविषे ही किया है, तथापि समस्त वेदार्थके जानने वाले पुरुष को तिसका अधिकार नहीं, क्योंकि उपासना करके साध्य जो ब्रह्म साक्षात्कार सो भिन्न है ताते, इस प्रकार कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि गुरुके गृह विषे श्रवण किये अरु विचार किये वाक्यसे अनुष्ठान विषे उपयोगी जो ज्ञानहोता है तितनेही ज्ञानमात्र करके कर्म विषे अधिकार को पावता है, परन्तु सो ज्ञान ब्रह्म साक्षात्काररूप फलवाली उपासना की अपेक्षा करता नहीं क्योंकि उपासना से उसके भेदका अभाव है ताते] बनेनहीं, क्योंकि उपासनाको श्रवण जन्य ज्ञानसे भिन्नता है ताते। अरु श्रवण ज्ञानमात्र से कर्म्मविषे अधिकार को पावता है, उपासना की अपेक्षा करता नहीं। अरु उपासना जो है, जो श्रवण किये अर्थ के ज्ञानसे अन्य अर्थरूप विधान करते हैं। अरु मोक्ष रूप जो फल है सो अन्य अर्थ रूप प्रसिद्ध होता है। अरु "श्रोतव्यो" श्रवण करनेयोग्य है, इस कथनकरके, ताते भिन्न "मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो" मनन करने योग्यहै, निदिध्यासन करने योग्य है, इस प्रकार अन्य प्रयत्न के विधान से मनन अरु निदिध्यासन करनेको श्रवण ज्ञानसे अन्य अर्थपना प्रसिद्ध है॥ [केवल कर्म मोक्षका साधन है, इस प्रथम पक्षका निषेध करके अब 'विद्या सहित कर्म मोक्षका साधन है, इस द्वितीय विकल्प रूप पक्षका निषेध करते हैं] अरु जब इस प्रकारहै, तब विद्याकी अपेक्षावाले कर्मों से मोक्ष होवेगा, अरु विद्या सहित

कर्म्मोंको अन्य कार्य के आरंभ का सामर्थ्य होवेगा । जैसे स्वरूप सेही मरण अरु ज्वर आदिक कार्य के आरम्भ करने के सामर्थ्य वाले हुयेभी विष अरु दधि (अर्थात् संखियादि विषका मरणरूप कार्यको, अरु दधिको ज्वररूप कार्यको, आरंभ करनेकासा सामर्थ्य स्वरूपसे ही है। तिनको मन्त्र अरु शर्करा आदिकों करके सहितहुये अन्यकार्य के आरंभ का सामर्थ्य है। इसप्रकार विद्यासहित कर्मोंसे मोक्षरूप फल वा कार्य आरंभ करते हैं, इसप्रकार जो कहे, तो सो भी बनेनहीं । क्योंकि आरंभ करीहुई वस्तु को अनित्यता होती है ताते, अरु यह दोष पूर्व कह आये हैं ॥ अरु जो कहे वचनसे आरंभ करने योग्य भी नित्यहीं है ["न स पुनरावर्त्तते" सो पुनः आवृत्तिको पावतानहीं, इस वचनसे आरंभ किया भी मोक्ष नित्यहै, इसप्रकार कहने को शक्य नहीं है, क्योंकि प्रसिद्ध पदार्थकी योग्यताको लेके वचनको सम्बन्ध का ज्ञापकपनाहै ताते, अरु आरंभ करीहुई वस्तुको नित्य होने की योग्यता प्रसिद्ध नहीं है, अन्यथा वचनको कारकताका प्रसंग है ताते, अरु अंधपुरुष मणिको पावताहुआ, इत्यादिक वाक्योंविषे भी योग्यताकी कल्पना का प्रसंग है ताते, इसप्रकार कहते हैं] सो बनेनहीं, क्योंकि वचनको ज्ञापकताहै ताते, । अरु वचन जो है सो विद्यमान अर्थका ज्ञापकहै परन्तु विद्यमान अर्थ का कर्त्ता नहीं । अरु शतशः वचनों करके भी नित्य वस्तुका आरंभ नहीं करते वा आरंभ करी वस्तु अविनाशी नहीं होती है, इसहेतु से मिश्रितहुये विद्या अरु कर्मको मोक्षका आरंभकपना निषेधकिया जानना ॥ अरु जो कहे कि विद्या अरु कर्म जो हैं सो मोक्षविषे प्रतिबन्धके हेतु जे अविद्या अधर्म्मादिक तिनके निवर्त्तक हैं, सो भी बने नहीं क्योंकि कर्म के फल अन्य देखेजाते हैं ताते । अरु उत्पत्ति, संस्कार, विकार, अरु प्राप्तिरूप कर्म का फल देखते हैं (अर्थात् कर्मका जो फलहै सो उत्पत्ति संस्कार प्राप्ति, अरु विकारवालाही होताहै । अरु मोक्ष जो है सो उत्पत्ति आदिक रूप

कर्म्मके फलों से विलक्षणहै वा विपरीत है एतदर्थ सो कर्म्म का फलहै नहीं॥ अरु जो कहे कि "। सूर्य्यद्वारेणतयोर्द्ध्वमायान्निति "। सूर्य रूपद्वारकरके तिस सुषुम्णानाड़ी करके ऊपरको जाताहुआ, इत्यादिक गमन प्रतिपादक श्रुतियों के प्रमाणसे ब्रह्मांडके बाह्य प्राप्त होने योग्य मोक्ष है, सो भी बने नहीं क्योंकि ब्रह्म सर्वगत है ताते, अरु गमन करनेवाले पुरुषसे अभिन्नहै ताते। अरु जिस करके आकाशादिकोंका कारण होनेसे ब्रह्म सर्वगत है अरु ब्रह्म से अभिन्न सर्वजीवहै, अतएव ब्रह्मांडके बाहिर जायके प्राप्तहोने योग्य मोक्ष नहीं। अरु गमन करनेवाले को अपने आपसे इतर विशेष करके भिन्न देशही गमन करने योग्य होताहै।अर्थात् जो गमन करताहै सो अपने स्वरूपसे भिन्न देशकोही करताहै। अरु जो जिससे अभिन्नहै सो तिससेही प्राप्तहोवे नहीं।अर्थात्आत्मा से ब्रह्म अभिन्न है ताते आत्माकरके ब्रह्म प्राप्त होवे नहीं क्योंकि आत्माका तो स्वरूपही ब्रह्म है। यह अनन्यभाव की प्रसिद्धि है। अरु "ततसृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" तिसको सृजके तिसके अर्थही पीछे प्रवेश करताहुआ,। अरु "क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धि" क्षेत्रज्ञ भी मुझको जान,। इत्यादिसैकड़ोंश्रुतिस्मृतियों करके ब्रह्मांडसे बाह्य प्राप्त होने योग्य मोक्ष नहीं है॥ अरु जो कदापि ऐसा कहो कि उक्तप्रकारहोनेसे गति अरु ऐश्वर्य्यादिकोंकी प्रतिपादकश्रुतियोंसे विरोधहोवेहै, तो मोक्षब्रह्मांडसेबाहर प्राप्तहोनेको योग्यहै;यहगति प्रतिपादकश्रुतियोंका तात्पर्य होता है।अर्थात "। तयोर्द्ध्व मायन्न मृतत्वमेति "। इत्यादि जे मार्ग प्रतिपादक श्रुतियां हैं सो योगी जनोंको सुषुम्णा नाड़ी द्वारा कपाल भेदनकरके ब्रह्मलोक प्राप्ति की बोधकहैं। अरु जोकहे कि सो मोक्ष जब एकप्रकारका होय तब "।पितृलोक कामोभवति, स्त्रीभिर्वायानैर्वा " पितृलोककी कामना वाला होताहै, स्त्रियोंकरके वा वाहनोंकरके इत्यादि, श्रुतियोंका कोप होवेगा, सो बने नहीं क्योंकि उन श्रुतियों को कार्य ब्रह्म (हिरण्यगर्भ व।) को विषय करनेवालीपनाहै ताते अरु कार्य ब्रह्म

विषे स्त्री यानादिक होतेहैं कारण ब्रह्मविषे नहीं । अरु "एकमेवाद्वितीयं, यत् नान्यत्पश्यति, तत्केन कम्पश्येदित्यादि" एकही अद्वितीय है, । जहां अन्यको नहीं देखता है, । तहां किस करके किसको देखे, । इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे विरोध होता है । एतदर्थ विद्या अरु कर्म्मके समुच्चयका असम्भव है । अरु कर्त्ता आदिक कारकों के भेदसे रहित तत्त्वको विषय करनेवाली जो विद्या है सो तिससे (अपने विषयसे) विपरीत कारकों करके साध्य कर्म्मोंसे विरोधको पावती है । अरु एकही वस्तु परमार्थ से कर्त्ता आदिक भेदवाली है, अरु तिससे रहित है, ऐसे उभय प्रकार से देखने को शक्य नहीं है । उनदोनोंमें से एक अवश्य ही मिथ्या होवेगा, अरु दोनोंमें से एकके मिथ्यापनेके प्रसंग के हुये जो स्वाभाविक अज्ञानके आधीन द्वैतका मिथ्यापना है सो युक्तही होवेगा । क्योंकि " यत्र हि द्वैतमिव भवति, मृत्योः समृत्युमाप्नोति, अथ यत्रान्यत पश्यति तदल्पम्, अन्योऽसावन्यो हमस्मि उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयंभवति, इत्यादि " जहां ही द्वैतवत् होता है । सो मृत्युसे मृत्युको पावता है । अरु जहां अन्यको देखता है सो अल्प है । यह अन्य है मैं अन्यहूं । जो अल्पभी अन्तर (भेद) को करता है, पीछे तिसको भयहोता है, । इत्यादिक सैकड़ों श्रुतियों से । अरु एकता का सत्यपना है, क्योंकि " एकधैवानुद्रष्टव्यं, एकमेवाद्वितीयम्, ब्रह्मैवेद ꣳ सर्वमात्मैवेद ꣳ सर्वमित्यादि " एक प्रकार सेही देखनेको योग्य है, एकही अद्वितीय है, ब्रह्मही यह सर्व है, आत्माही यह सर्व है ,। इत्यादि श्रुतियों से । अरु संप्रदानादिक कारक भेदके अदर्शन होने से कर्म संभवेनहीं , अरु विद्याके विषयविषे अन्य भावकी दृष्टिकानिषेध सहस्रशः श्रवण करते हैं । एतदर्थ विद्या अरु कर्म का विरोध है, अरु इसही हेतु से उनके समुच्चयका असंभव है । अरु तहां जो कहा कि मिलेहुये कर्म अरु विद्यासे (अर्थात् कर्म अरु विद्याके समुच्चयसे) मोक्ष होवे है, सो अघटित है, क्योंकि

[जब कर्त्ता आदिककारकों के भेदके सत्यतापने रूप अंशका बाध ब्रह्मज्ञान उपदेश करे है ,तब उनको मिथ्याअर्थवाले होने से कर्म्मोंकी विधियोंकी अप्रमाणता होवेगी, इसप्रकार कहते हैं। इस शंकाके वर्णनका यहभाव है कि अध्ययन की विधि से ग्रहण करी श्रुतियों को पुरुषार्थ के उपदेशकी करनेवाली होने करके प्रमाणपना कहनेको योग्य है] कर्मों को विधान कियाहै ताते। अरु जो ऐसाकहे कि श्रुति का विरोध होवेगा , सो युक्त नहीं है, काहेते, जब सर्पादिकों की भ्रान्ति ज्ञानके नाशक रज्जु आदिकोंको विषयकरनेवालेज्ञानवत् कर्त्ताआदिक कारक भेदको नाशकरके आत्माकी एकताका ज्ञान विधानकिया है, तब कर्म विधि की श्रुतियों को निर्विषयहोने से विरोध प्राप्तहोय। जिस करके कर्म विधान किये हैं याहिते सो विरोध युक्त नहीं है । अरु जो ऐसा कहे कि श्रुतिको प्रमाणरूप होने से तिनका परस्पर विरोध है। अर्थात् एक श्रुति तो कहती है कि " कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि " विहित कर्म्मों को करे, । अरु एक श्रुति कहती है कि " न कर्मणा " कर्म से मोक्ष नहीं, । अरु श्रुति दोनोंही प्रमाण हैं ताते प्रमाण भूत श्रुतियों में परस्पर विरोध है। सो कथन बने नहीं, क्योंकि श्रुतियों को पुरुषार्थ के उपदेशकी परायणता है ताते । अरु जिसकरके " संसारात्पुरुषो मोक्षयितव्य इति " पुरुष संसार से मोक्ष करनेको योग्य है, । यह जो विद्या के उपदेश के परायण श्रुति है, सो प्रथम संसार की हेतु जो अविद्या तिसकी निवृत्ति करनेकोयोग्य है। इसप्रकार विद्याकी प्रकाशक होने करके प्रवृत्ति हुई है, एतदर्थ उन श्रुतियों का परस्पर विरोध नहीं है । अरु जो कहे कि उक्तप्रकार हुये भी कर्त्ता आदिक कारकों के सद्भाव प्रतिपादन के परायणजो शास्त्रहै, सो विरोधको पावताही है, सो यह कथनभी बने नहीं, क्योंकि शास्त्रजो है सो मुमुक्षुओं को पूर्व सिद्धही कारकोंके सद्भावकोलेके सञ्चितपापोंके क्षयार्थ कर्म्मों को विधान करता है, अरु फलकेअर्थी पुरुषों के अर्थ फल

के साधनोंको विधान करताहै,परन्तु कारक के सद्भाव कहने विषे प्रवृत्त होतानहीं, यातेसो विरोधको प्राप्त होतानहीं । अरुसञ्चित पापरूप प्रतिबन्ध के होतेहुये विद्या की उत्पत्ति होतीनहीं, जब सञ्चित पापरूप प्रतिबन्ध क्षयहोताहै तबविद्याकी उत्पत्ति होती है, अरु तिस विद्या की उत्पत्ति से अविद्याकी निवृत्तिहोती है, तब तिस करके संसार की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है। किंवा आत्मदर्शी पुरुष को अनात्म पदार्थों को विषय करने वाली कामना होती नहीं, अरु कामना वाला पुरुष जो है सो कर्म्मों को करता है, तिसको तिसके फल भोगार्थ शरीरादिकों का ग्रहणरूप संसार होताहै । अरु तिसकामनावाले पुरुष से भिन्न आत्माकी एकताके दर्शीको विषयके अभावसे कामनाकी अनुत्पत्ति होतीहै । अरुआत्मा बिषे अभिन्न होने से अरु कामनाके असंभव से स्वस्वरूपविषे स्थितिरूपमोक्ष होवेहै, एतदर्थ भी विद्या अरु कर्मों का विरोधहै । अरु विरोधसेहीविद्या जोहैसो मोक्षके प्रति कर्मोंकी अपेक्षाकरतीनहीं, परन्तु नित्यकर्म जोहै सो स्वस्वरूपके लाभहुये पूर्वसञ्चितपापरूप प्रतिबन्धके नाशद्वारा विद्याकी हेतुताको प्राप्तहोवेहैं ।अर्थात् प्रथम विहितकर्म करनेसे सञ्चितपापों के क्षयहुये विद्याकी उत्पत्तिहोतीहै अतएव विहितकर्म्मोंको विद्या की उत्पत्ति में हेतुता है । अरु इसहीसे इसप्रकरण बिषे कर्म्मोंके कहनेका आरम्भकियाहै,इसप्रकार हमकहतेहैं।ऐसेहुये कर्मविधि की श्रुतियों का पुरुषार्थके उपदेशके परायण श्रुतियोंसे अविरोध है, याते केवल विद्याही से परमश्रेयहोवेहै यह सिद्धहुआ। अरुजो कहै कि जबऐसेहीहैतब अन्यआश्रमोंका असम्भवहोवेगा,क्योंकि विद्याकीउत्पत्ति कर्म्मरूप निमित्तवालीहै ताते, अरु कर्म्मजोहैंसो गृहस्थाश्रम विषे विधान किये हैं। इसप्रकार एक गृहस्थाश्रमही अनुष्ठान करनेको योग्यहै। अरु 'यावत्जीवे तावत् कर्मको करे, इत्यादिक कर्म्म प्रतिपादक श्रुतियां अत्यन्त अनुकूल होवेगी,सो बनेनहीं क्योंकि कर्म्मोंको अनेक रूपताहै ताते, अरुअग्निहोत्रा-

दिकही कर्म्म हैं ऐसा नहीं किन्तु विद्याकी उत्पत्ति बिषे अत्यन्त साधक अरु अन्य आश्रमविषेप्रसिद्ध जे ब्रह्मचर्य तप सत्यभाषण शम दम अहिंसादिक हैं, अरु ध्यान धारणादिकहैं, सो भी कर्म है, क्योंकि सो हिंसा आदिक निषिद्ध कर्मोंसे अमिश्रित हैं ताते। इसप्रकार यहां भी आगे कहेंगे "तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्वेति" तपकरके ब्रह्मको जान, इस वाक्यकरके। अरु गृहस्थाश्रमसे पूर्व भी जन्मान्तरविषे किये कर्म्मोंसे विद्याकी उत्पत्तिका सम्भव है ताते, अरु गृहस्थाश्रमकीप्राप्तिको कर्मकेअर्थ होनेसे कर्मकरकेसाध्य विद्याके हुये गृहस्थाश्रमकी प्राप्ति व्यर्थहीहै। अरु पुत्रादिकों को लोकार्थहोनेसे पुत्रादिकोंकरकेसाध्य यहलोकअरु पितृलोकादिक लोकोंसे निवृत्तहुईहै कामनाजिसकी, अरु नित्यसिद्धआत्मा के ज्ञानकरकेयुक्त अरु कर्म्मोंविषे प्रयोजनके न देखनेवाले पुरुष की प्रवृत्तिकैसे सम्भवे किन्तु सर्वथा संभवेनहीं। किन्तुगृहस्थाश्रम को प्राप्तहुये अरु विद्याकी उत्पत्तिकेहुये अविद्याकी निवृत्तिसे विरक्तहुये अरु कर्म्मोंविषे प्रयोजनकोन देखनेवाले ऐसे पुरुषोंकी कर्म्मों से निवृत्तिहोवेहै क्योंकि "प्रवर्त्तयिष्यन् वाअरेऽहमस्मात् स्थानादस्मीति" अरे मैं निश्चय करके इस स्थान से प्रवृत्ति करावताहुआ हौं, इत्यादि श्रुतिउक्त लिंग के देखने से। अरु जोकहे कि कर्मकीप्रति श्रुति से अधिकयत्नरूप कर्मविषे बड़ाश्रम है क्योंकि अग्निहोत्रादिकों को अनेक साधनों करके साध्यताहै ताते, अरु तपब्रह्मचर्य्यादिक अन्य आश्रमके कर्म्मों को गृहस्थाश्रमविषे भी तुल्यता है ताते, अरु अन्य आश्रमको अल्पसाधनों की अपेक्षाहै ताते, तिस गृहस्थाश्रम का विकल्प अन्य आश्रमी पुरुषों से तुल्यवत् युक्त नहींहै, सो कथन बनेनहीं, क्योंकि जन्मान्तर विषे सम्पादन किये अनुग्रहसे "कर्म्मणिश्रुतेरधिकोयत्न" कर्मविषेश्रुतिका अधिकयत्नहै,। इत्यादिक जो कहा, यहदोषनहीं है अरु जन्मान्तर विषे किये भी अग्निहोत्रादि अरु ब्रह्मचर्य्यादि रूप कर्म्म विद्याकी उत्पत्ति के प्रति अनुग्रहका करनेवालाहोता

है । अरु कईक पुरुषों को जन्मसेही विरक्त देखतेहैं, अरु कईकों को कर्मोंबिषे प्रवृत्त अरु विरक्त न हुये विद्याके द्वेषी देखतेहैं, ताते जन्मान्तर के किये (शमदमादि कर्मोंके) संस्कारों से विरक्तहुये पुरुषों के अर्थ अन्य आश्रमकी प्राप्तिही अंगीकार करतेहैं । अरु कर्मों के फलकी बाहुल्यता से 'पुत्र , स्वर्ग, अरु ब्रह्मतेजादिरूप कर्म्मोंके फलको असंख्यात होने से, अरु सो पुरुष पुरुषके प्रति कामना की बाहुल्यतासे तिनके अर्थ श्रुतिका कर्मोंबिषे अधिक यत्न सम्भवे है । अरु मुझको यहहोवे मुझको यह, ऐसे कामना की बाहुल्यता के देखनेसे अरु तिनका उपायरूप होनेसे कर्मजो हैं, सो विद्याके प्रति उपायरूपहैं इसप्रकार हम कहतेहैं । एतदर्थ उपाय बिषे अधिक यत्न करने योग्य है, उपेय (उपाय करके प्राप्य) बिषेनहीं । अरुजो ऐसाकहै कि विद्याकोकर्मरूप निमित्तवाली होनेसे अन्य यत्नकी व्यर्थताहै, क्योंकि कर्म्मोंसेही सर्व सञ्चित पापरूप प्रतिबन्धके क्षयहोनेसे विद्या उत्पन्नहोतीहै,याते कर्म्मोंसे भिन्न उपनिषदोंका श्रवणादि यत्न व्यर्थहै, सो कहना बने नहीं क्योंकि इसप्रकारके नियम का अभावहै ताते । अरु प्रतिबंध के क्षय हुयेही विद्या उत्पन्न होवे नहीं, अरु ईश्वर की प्रसन्नता से अरु ध्यानादिकों के अनुष्ठान से विद्या उत्पन्नहोवेहै, ऐसा भी नियम नहींहै,क्योंकिअहिंसा अरु ब्रह्मचर्य्यादिकोंको विद्या के प्रति उपकारकपनाहै ताते, अरु श्रवण मनन निदिध्यासनको विद्याके साक्षात्‌हीकारण होनेसे। इसकरके अन्यआश्रम सिद्धहुये, अरु सर्वको विद्याबिषे अधिकार सिद्धहुआ,अरु परमश्रेय (मोक्ष) केवल विद्या सेही सिद्ध होवै है यह भी सिद्ध हुआ २४ ॥

इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

इतिश्रीतैत्तिरीयोपनिषद्गतशिक्षावल्लीनामकप्रथमाध्याय भाषाभाष्यसमाप्तम् १ ॥

अथ द्वितीयाध्यायब्रह्मानन्दवल्ली।

हरिः ॐ। सहनाववतु। सहनौभुनक्तु। सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। माविद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ १॥

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां। परमेव्यो-मन्। सोऽश्नुतेसर्व्वान् कामान्। सहब्राह्मणाविपश्चि-तेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्याओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्ना-द्रेतः। रेतसःपुरुषः। स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्ये-दमेवशिरः। अयंदक्षिणःपक्षः। अयमुत्तरःपक्षः। अय-मात्मा। इदंपुच्छंप्रतिष्ठा। तदप्येषश्लोकोभवति १। २५

इतिप्रथमोऽनुवाकः॥ १॥

अथतैत्तिरीयोपनिषद्गतब्रह्मानन्दवल्लीनामक द्वितीयाध्यायभाषाभाष्यंप्रारभ्यते॥

हेसौम्य! पूर्व उक्तविद्याकी उत्कर्षताके प्रतिबन्धकी निवृत्ति के अर्थ शान्ति पठनकिया, अब अग्रिम कहने की ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति बिषे विघ्नोंकी निवृत्ति के अर्थ प्रथम शान्तिपाठ करते हैं "(सहनाववतु,सहनौभुनक्तु, सहवीर्य्यंकरवावहै)" {सोई परमे-श्वर हमको रक्षणकरो, सोई हमको भोगावो, सोई सामर्थ्यको सम्पादन करो } अर्थात् (जो सर्वात्मरूपसे सर्वत्र सुशोभितहै) सोई परमेश्वर हम शिष्य अरु आचार्य की सम्यक् प्रकार रक्षा करो, अरु सोई परमात्मा हम शिष्य अरु आचार्य को (सत्या-दिकनसे) पालनकरो, अरु सोई (सर्व शक्तिमान्,हमको विद्या-रूप निमित्तवाले सामर्थ्य को सम्पादनकरो "(तेजस्विनामधीत

मस्तु, मा विद्विषावहै ” (तेजस्वी हुये हमारा अध्ययन तेजस्वी होवो, हम परस्पर द्वेषको मत प्राप्तहोवें) अर्थात् तेजस्वी हुये हमारा अध्ययन तेजस्वी (अर्थज्ञानके योग्य) होवे, अरु विद्या ग्रहण के निमित्त शिष्य वा आचार्य के किये प्रमाद के अन्यायसे प्राप्तहुआ जो द्वेष तिसकी निवृत्तिके अर्थ यह प्रार्थनाहै कि हम परस्पर द्वेषको न प्राप्त होवें “ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ” (शान्तिहो, शान्तिहो, शान्तिहो,) यहां तीनबार जो शान्तिका कथन है सो आदरार्थ है, (वा आध्यात्मिकादि तीनों प्रकारके विघ्नविक्षेपकी निवृत्तिके अर्थ है (वा अग्रिम कहनेकी विद्या के विघ्न की निवृत्तिके अर्थ है । यह शान्ति पाठहै सो अविघ्नतासे आत्मविद्याकी प्राप्तिकी प्रार्थना के अर्थहै, अरु तिस आत्मविद्या की प्राप्तिरूप मूलवालाही परमश्रेयहै । [इस उक्त अर्थके अनुवादपूर्वक दूसरी आनन्दवल्ली के तात्पर्य को (भाष्यकार स्वामी (कहते हैं] पूर्वाध्यायविषे प्रथम संहिताको विषय करनेवाले अरु कर्म्मों से अविरुद्ध उपासना कही । तिसके पश्चात् व्याहृतिरूप द्वार से अरु स्वाराज्यरूप फल से अन्तःकरण के भीतर सोपाधिक आत्माका ज्ञान कहा । अरु इतने करके सम्पूर्णसंसारके वीज की निवृत्तिका साधन कोई एकहै, यह जानागया । एतदर्थ सर्व अनर्थों के बीजरूप अज्ञानकी निवृत्तिकेअर्थ सर्व उपाधियोंके भेद से रहित आत्माको सम्यक् ज्ञानार्थ यहद्वितीय अध्यायका आरंभ करतेहैं । अरु इस ब्रह्मविद्या का प्रयोजन अविद्या की (अशेष) निवृत्तिहै, अरु तिसकरके आत्यन्तिक संसार का अभाव होवेहै । इसप्रकार अग्रिम “ (विद्वान्न बिभेतिकुतश्चनेति ” विद्वान् किसी सेभी भयको प्राप्तहोतानहीं । इस वाक्यकरके यहश्रुतिकहेगी । अरु जिसकरके संसार रूप निमित्तकेहोते सन्ते “ (अभयंप्रतिष्ठाञ्चविन्दते ” (कृताकृतेपुण्य पापे नतपतइति ” अभयस्थितिको पावताहै, अरु इसको किये अरु न किये पुण्य अरु पाप तपावते नहीं, । यह श्रुतिका कथन बनता नहीं, इसकरके जानाजाता है

कि इस सर्वके आत्मरूप ब्रह्मकोविषयकरनेवाले विज्ञानसेआत्यं-
तिक संसारकाअभावहोवे है। [अब प्रथमवाक्यके मध्यकेतात्पर्य
कोकहतेहैं। केवल विद्याकरकेहीमोक्षसाधनेकोशक्यहै। अरु, ब्रह्म-
वित्, इस विशेषणसे सम्बन्धकेज्ञानको पुरुषकीइच्छकाविषयहोने
करकेपरब्रह्मकी प्राप्ति विद्याकाप्रयोजनहै] इसप्रकार यह श्रुति
"ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्तापरब्रह्मको प्राप्तहोताहै, इत्यादिक
वाक्यों विषेही सम्बन्ध अरु प्रयोजनके जनावनेके अर्थ प्रयोजन
को कहते हैं। अरु संबन्ध अरु प्रयोजनके जानने से मुमुक्षु विद्या
के श्रवण ग्रहण अरु धारण करनेके अभ्यासार्थ प्रवर्त्त होता है।
अरु " श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो " आत्मा श्रवण करने
योग्यहै, मनन करनेयोग्यहै, निदिध्यासन करने योग्यहै, । इत्यादिक
अन्य श्रुतियोंके प्रमाणसे श्रवणादि साधन पूर्वक " ब्रह्मविद्-
ब्रह्मैव भवति " ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मही होताहै, । इत्यादिरूप अग्रिम कह-
नेका विद्याका फल होताहै। एतदर्थ यहां श्रुति प्रथम विद्याके
प्रयोजनको कहेहै। परमात्मा अत्यन्त बड़ा होनेसे ब्रह्म कहाजा-
ताहै। तिसको जो जानताहै सो ब्रह्मवेत्ताहै। अरु " ब्रह्मविदाप्नोति
परम् " (ब्रह्मवेत्ता परको पावताहै) अर्थात् यह ब्रह्मवेत्ता सर्वसे
अधिक तिसही परब्रह्मको पावताहै। अरु अन्यके विज्ञानसे अन्य
की प्राप्ति होती नहीं। अरु ऐसे " स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद
ब्रह्मैव भवतीति " जो प्रसिद्धही तिस परब्रह्मको जानता है सो
ब्रह्मही होताहै, इत्यादि रूप अन्यश्रुति स्पष्ट ब्रह्मवेत्ताको परब्रह्म
की प्राप्तिही देखावे है, ताते ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मको प्राप्तहोता है यह
कथनयोग्यहीहै॥ शंका॥ ननु सर्वगत (सर्वका आत्मरूप) ब्रह्महै
इसप्रकार यह श्रुति आगेकहेगी, ताते प्राप्तहोनेयोग्य ब्रह्मनहीं है।
अरु प्राप्तिजोहै सो अन्य परिच्छिन्नकीअन्य परिच्छिन्नसे देखीहै
अरु ब्रह्म जो है सो अपरिच्छिन्न अरुसर्वका आत्माहै, एतदर्थ परि-
च्छिन्नवत् अरु अनात्मवत् तिसकी प्राप्ति अघटित है। तब श्रुति
कैसेकहती है कि ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावताहै॥ समाधान॥ (यह

दोष । जो तुमनेकहा सो । बने नहीं, क्योंकिब्रह्मकी प्राप्ति अरु अप्राप्तिहै सोज्ञान अरु अज्ञानकी अपेक्षावाली है ताते । अरु परमार्थसे ब्रह्मरूपहुयेभी, अरु भूतोंके अंशकरके किये बाह्य परिच्छिन्न अन्नमयादि कोशोंविषे आत्मभावके देखनेवाले अरु तिन अन्नमयादिकोंविषे आसक्त चित्तवाले इसजीवको दशमकी संख्याको पूर्ण करनेवाले अन्तरायसे रहित हुयेभी, दशमके स्वरूपको बाहरके नवकी संख्यावाले पुरुषोंविषे आसक्त चित्तवालाहोने करके स्वरूपके अभावके ज्ञानवत् परमार्थ ब्रह्मस्वरूपके अभावके ज्ञानरूप अविद्यासेअन्नमयादिक बाहरके अनात्मपदार्थोंकोआत्मपनेकरके प्राप्तहुआ होनेसे, सो जैसे अन्नमयादिक अनात्माओं से मैं अन्य नहीं हौं, ऐसा मानताहै, इसप्रकार इस जीवको अविद्यासे, आत्मरूप हुआ भी ब्रह्म अप्राप्त होताहै । [दर्शन का न होनाही है निमित्त जिसका ऐसी जो अप्राप्ति तिसका विवेचन करके अब दर्शनका होनाहीहै निमित्त जिसका ऐसी जो प्राप्ति तिसका वर्णन करते हैं] अरु जैसे दशकी संख्याको पूर्ण करनेवाले दशमके स्वरूपको अविद्यासे अप्राप्त होतेसंते किसी भी आप्तपुरुषकरके स्मरण करायेहुये तिसहीकी विद्यासे प्राप्तहोवेहै, तैसेही अविद्यासे ब्रह्मस्वरूपकीअप्राप्तिवाले तिसीही जीवको श्रुतिकरके उपदेशकिये सर्वात्मा ब्रह्मके आत्मभावके ज्ञानरूप विद्यासे तिस की प्राप्ति संभवेही है ॥ " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म को प्राप्तहोताहै, । यह वाक्य समस्तवल्लीके अर्थका सूचक होनेसे सूत्ररूप है " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावता है, । इस वाक्यकरके जाननेयोग्य होनेसे सूचनाकिये, अरु विशेष स्वरूपके निर्द्धारसे रहित ब्रह्मके सर्वसे भिन्नकरके जनाये विशेष स्वरूपके समर्पणविषे समर्थ लक्षणकेकथनसे स्वरूपके निर्द्धारण करके, अरु [पूर्व ,ब्रह्मवित्, इस विशेषणसे जिस ब्रह्मका ज्ञान कहाहै तिस ब्रह्मका " यो वेद निहितंगुहायां" जो गुहाविषे स्थित को जानताहै, । इस वाक्य करके प्रत्यगात्मरूपसे ज्ञान कहनेको

योग्यहै, इस अर्थ से अब ऋचा कहते हैं] सम्पूर्ण होनेकरके कथनकिये ज्ञानवाले ब्रह्म के अग्रिम कहने के लक्षणके विशेषकर प्रत्यगात्मा होने करके अनन्यरूपसे जनावने की योग्यताके अर्थ ब्रह्मवेत्ताको जो परब्रह्मकी प्राप्तिरूप, ब्रह्मविद्याका फलकहा सोई है ॥ सो सर्व्वात्मभाव सर्व संसारके धर्म्म से रहित ब्रह्मस्वरूप भावहीहै, अन्यनहीं, इस अर्थ के लखावने के अर्थ यह ऋचा कहतेहैं "। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म "। (तिसही बिषे यह उपदेश करिये है। सत्यज्ञान अनन्तब्रह्महै), अर्थात् तिसही ब्राह्मणवाक्य करके उक्त अर्थ बिषे यह ऋचा उपदेश कियाहै। सत्यज्ञान अनन्त ब्रह्महै, यह वाक्य ब्रह्मके स्वरूपलक्षण अर्थ है अरु सत्यादिक जे तीन पद हैं सो विशेष्यरूप ब्रह्म के विशेषणार्थ हैं। अरु जानने योग्य होने करके कहने को इच्छित होने से, ब्रह्म विशेष्य है। अरु ब्रह्म जानने योग्य होने करके मुख्यता से कहने को इच्छित है, ताते विशेष्य रूप जानने के योग्यहै [विशेषण अरु विशेष्य भावकी प्रतीति काहेसे होतीहै, तहां कहते हैं। यहां यहअर्थहै कि नीलवर्ण अरु बड़ी सुगन्धिवाला कमल है, इत्यादिक वाक्योंबिषे विशेषण विशेष्य भावकेहोतेही समानाधिकरणपने करके एक विभक्तिरूप अन्तवाले प्रसिद्धहैं, अरु यह भी तिस प्रकार के नाना अर्थगत विशेषण अरु विशेष्य भाव के किये हैं, इस प्रकार जानते हैं] जिस करके अन्य विशेषण विशेष्य भावके होनेसेही सत्यादिक एक विभक्तिवाले पद, समान (एक) अधिकरण (अर्थ) वाले हैं, एतदर्थ सत्यादिकतीन विशेषणों करके विशेष्य हुआ जो ब्रह्म सो अन्य विशेष्यपनसे निर्द्धार करतेहैं। तैसेही [अब विशेषण विशेष्यभावके फलको कहतेहैं] जो अन्यों से निर्द्धार कियाहै, ऐसा तिसका ज्ञान होताहै। जैसे लोक बिषे नील अरु बड़ी सुगन्धिवाला कमल होता है। जब अनेक द्रव्य एक जातिवाले अरु अनेक विशेषणोंके सम्बन्धी होवें, तब विशेषणको अर्थवान्‌पना (सफलपना)होवे है, परन्तु एकही

वस्तु विषे अन्य विशेषणके असम्बन्धसे विशेषणको अर्थवान्पना नहींहै। जैसे यह एक सूर्यहै, अरु तैसे एकही ब्रह्महै, अन्य ब्रह्म नहीं है, जिनसे नीलकमलवत् यह ब्रह्म विशेष्य (भिन्न किया) होवे, [सो विशेषण विशेष्यभावको तात्पर्यसे प्रतिपादन करनेको योग्यहोने से, अरु अव्याकृतादिक शास्त्र उक्त ब्रह्मपद के अर्थ के अवच्छेदसे अनिर्वाच्य विशेषण विशेष्यभाव के सम्बन्धसे तिस द्वारा ब्रह्मका लक्षण कहनेको इच्छितहै, ऐसा कहते हैं] यह कथन बनेनहीं, क्योंकि विशेषण लक्षणके अर्थ है ताते। अरु विशेषण जो हैं सो लक्षणरूप अर्थकी मुख्यतावालेहैं, विशेषणकी मुख्यतावालेही नहीं, याते यह दोष नहीं है॥ शंका॥ ननु तब लक्षण अरु लक्ष्यका वा विशेषण अरु विशेष्यका कौनभेदहै॥ समाधान॥ तहां कहते हैं, विशेषण जो है सो विशेष्यके समानजातिवाले द्रव्यनसेही निवर्त्तकहै, अरुलक्षण जो हैंसो लक्ष्यका सर्वसेही निवर्तकहै, जैसे अवकाशका देनेवाला आकाशहै, यहआकाशका जो लक्षणहै सोआकाशरूपलक्ष्यका पृथिवी आदिक सर्वसे निवर्तक (भेदकरनेवाला)है, तैसे। अरुलक्षण अर्थ "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है, । यह वाक्य है, इसप्रकार हम कहते हैं ॥ सत्यादिक शब्द जो हैं सो परस्पर सम्बन्धको पावतेनहीं, अन्य अर्थवालेहैं ताते। अरुजिसकरके वे विशेष्यके अर्थ हैं, याते एक एक विशेषणरूप शब्द जो हैं, सो परस्परकी अपेक्षासे रहित हुआ "सत्यं ब्रह्म, ज्ञानं ब्रह्म , अनन्तं ब्रह्म" सत्य ब्रह्महै,ज्ञान ब्रह्महै, । अनन्त ब्रह्महै, ।इसप्रकार ब्रह्मशब्दसे सम्बन्धको पावताहै, अरु जिसरूपसे जो निश्चितहै,अरु जिसरूपकेअर्थ व्यभिचारको पावता नहीं, सो सत्यहै। अरुजिस रूपसे निश्चितहुआजो तिसरूपके अर्थ व्यभिचारको पावताहै,सो मिथ्या,इसप्रकार कहते हैं। अरुइसहीसे विकार कहियेकार्यमिथ्याहै "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यम्" वाणीसे आरंभकिया विकार नाममात्रहै, अरु मृत्तिकाही सत्यहै, । अरु ऐसेसत्‌ही सत्यहै, इस

निश्चयसे । इसकरके " सत्यंब्रह्मेति " सत्य ब्रह्महै, । इसप्रकार सत्य शब्दजो है, सो ब्रह्मको विकारसे निवृत्त (पृथक्) करे है ॥ इसकरके ब्रह्मको कारणता प्राप्तहुई, अरु कारणको कारकपना अरु वस्तुरूपता होने से मृत्तिकावत् जड़रूपता प्राप्तहुई, याते " ज्ञानंब्रह्मेति " ज्ञान ब्रह्महै, । ऐसा कहते हैं । यहां ज्ञान शब्दजो है सो निर्विशेष चैतन्यमात्ररूप अर्थवाला है, क्योंकि सत्य अरु अनन्त शब्दकरके सहित ब्रह्मका विशेषण है ताते । अरु सत्यता अरु अनन्तता जोहै सो ब्रह्मको ज्ञानके कर्त्तापनेके हुये सम्भवे नहीं, अरु ज्ञानका कर्त्ता होने करके विकारवान् हुआ जो ब्रह्म सो सत्य अरु अनन्त कैसे होय, जो वस्तु किसी से भी विभाग को प्राप्तहोती नहीं सो अनन्त है । अरु ब्रह्मको ज्ञानके कर्त्तापने के होने से, सो ब्रह्म ज्ञेय अरु ज्ञान दोनों करके विभाग को पावेगा, याते तिसको अनन्तता नहीं होवेगी। क्योंकि " यत्र नान्यद्विजानाति स भूमा, अथ यत्रान्यद्विजानाति तदल्पमिति " जहां अन्यको नहीं जानता है सो भूमा है, अरु जहां अन्यको जनताहै सो अल्प है, । इसअन्य श्रुतिते ॥ अरु जो कहे " नान्यद्विजानाति" अन्यको नहीं जानता है, । ऐसे प्रपंच के निषेध से आत्मा को जानता है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि उक्तवाक्य भूमा के लक्षण के प्रकार के परायण है ताते । अरु "यत्र नान्यत्पश्यति " जहां अन्यको नहीं देखता, । इत्यादि रूप जो वाक्यहैं सो भूमाकेलक्षण के प्रकार के परायण हैं । जैसे " यथा प्रसिद्धमेवान्यत्पश्यतीति " प्रसिद्धही अन्यको देखताहै, । उसको लेके " यत्रतन्नास्ति सभूमेति " जहां सोप्रासिद्ध अन्य वस्तु नहीं सो भूमा है, । इस प्रकार भूमा का स्वरूप तिस वाक्यविषे जनायाहै, अन्यके ग्रहण की प्राप्ति के निषेधरूप अर्थवाला होने से स्वस्वरूपविषे ज्ञानरूप (जाननेरूप) क्रिया नहीं है । याते यह उक्त श्रुति वाक्य इसही अर्थ के परायण होहु । अरु स्वस्वरूप विषे भेदके अभावसे ज्ञान का असंभव है अरु आत्माको ज्ञेयपने के हुये ज्ञातापने के प्रसंग

का अभाव होवेगा, क्योंकि तिसको ज्ञेयपनेकरकेही उपयोग को प्राप्तहुआ होनेसे ॥ अरु जो ऐसा कहे कि एकही आत्मा ज्ञेय अरु ज्ञाता होने करके उभय प्रकारका होवे है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि तिस आत्मा को एककालविषे निरवयवता है ताते। अरु निरवयव को एककालविषे ज्ञेयपने का अरु ज्ञातापने का संभव नहीं है। अरु आत्माको घटादिकोंवत् ज्ञेयपना होने से ज्ञानके उपदेश की व्यर्थता होवेगी। अरु जिसकरके घटादिकोंवत् प्रसिद्ध वस्तुके ज्ञानका उपदेश अर्थवान् नहीं है, तिसकरके ब्रह्मको ज्ञातापना होने करके सत्यता अनन्तताका असंभव होवेगा। अरु सन्मात्रपना भी अघटित होवेगा। अरु ज्ञानके कर्त्तापने आदिक विशेषण करके युक्तपने के हुये सन्मात्रपना संभवे नहीं, क्योंकि "तत्सत्यमिति" सो सत्य है, इस अन्य श्रुतिके प्रमाण से। अरु सत्य अरु अनन्त इन शब्द करके सहित ब्रह्मका विशेषण होने करके ज्ञान शब्दके उच्चार से यह ज्ञान शब्द चेतनमात्ररूप अर्थवाला है। एतदर्थ ज्ञानशब्द जो है सो "ज्ञानं ब्रह्मेति" ज्ञान ब्रह्म है,। इसप्रकार कर्त्तापने आदिक कारककी निवृत्ति के अर्थ अरु मृत्तिका आदिकोंवत् जड़पने की निवृत्तिके अर्थ बनता है ॥ अरु "ज्ञानं ब्रह्मेति" ज्ञानरूप ब्रह्म है,। इस वचन करके ब्रह्मको अन्तवान्पना प्राप्तहुआ, क्योंकि लौकिक ज्ञान को अन्तवान्पने करके युक्त देखते हैं ताते। एतदर्थ ज्ञान स्वरूप ब्रह्मविषे लौकिक ज्ञानवत् प्राप्तहुई अनन्तता तिसकी निवृत्तिके अर्थ ब्रह्म अनन्त है, इसप्रकार श्रुतिकहती है ॥ अरु जो ऐसा कहे कि सत्यादिक विशेषणों को मिथ्या आदिक धर्म्म की निवृत्ति के परायण होने से, अरु विशेष्य ब्रह्म को कमल आदिक विशेष्योंवत् अप्रसिद्ध होने से "मृगतृष्णाम्भसिस्नातः खपुष्पकृतशेखरः, एषवन्ध्यासुतो याति शशशृङ्गधनुर्धरः इति" मृगतृष्णा के जलविषे स्नानकिये, अरु आकाशके पुष्प का किरीट मस्तकपर धारणकिये अरु शशक (खरगोश) के

शृङ्गकाबना अतिदृढ़ धनुष धारणकिये यह प्रत्यक्ष बन्ध्याका पुत्र जाता है। इस वाक्यवत् सत्यादिरूप वाक्यों को शून्यरूप अर्थवान्पनाही प्राप्त होवेगा, सो बने नहीं [सिद्धतामात्र करके विशेष्यताके सम्भवहुये अन्य प्रमाण का विशेषण व्यर्थ होवेगा क्योंकि केवल व्यतिरेकके अभावसे अरु रज्जु सर्पादिरूप मिथ्या अर्थ के सत्यरूप अधिष्ठानवान् पनेके देखने से दृश्यता आदिक हेतुओंसे मिथ्यापने करके जानेहुये प्रपंचको भी सत्यरूप अधिष्ठानवान् पना संभवे है। अरु प्रपंचका अधिष्ठान होनेकरके निश्चय किये तिस ब्रह्मके स्वरूपके विशेष लक्षणार्थ यह वाक्य है, एतदर्थ इस वाक्य को असत् अर्थवान् पना नहीं है, इसप्रकार कहते हैं] क्योंकि सत्यादिरूप वाक्यों को लक्षणरूप अर्थवान् पना है ताते। अरु सत्यादि पदों को विशेषणपने के हुये भी लक्षणरूप अर्थ की मुख्यता है, इसप्रकार हम कहते हैं। अरु जिस करके लक्ष्य को शून्यरूप हुये लक्षणका वाक्य व्यर्थ होता है, याते सत्यादिरूप वाक्यों को लक्षणरूप अर्थवाला होनेसे शून्यरूप अर्थवानपना नहीं है, इस प्रकार हम मानते हैं। [सत्यादि शब्दोंकी विशेषणरूप अर्थवानृताको अंगीकार करके कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि नीलवर्ण महत्सुगंध, ऐसे विशेषण रूप जो पदहैं, सो अपने अर्थ के समर्पणसे तिससे विरुद्ध अर्थसे अपने आश्रय (विशेष्य) के व्यावर्त्तक (अन्यसे पृथक् करनेवाले) प्रसिद्ध है, तैसे सत्यशब्द भी अबाधित सत्ताविषे वर्तता है, अरु ज्ञान शब्द स्वप्रकाश संवेदन बिषे बर्तता है, अरु अनन्तशब्द व्यापकबिषे बर्तताहै "अनन्तोपमाकाशः" अनन्तकी उपमावाला आकाशहै, इत्यादिक स्थलमें अनन्तशब्द व्यापकबिषे बर्तताहै। ताते अपने अर्थ के समर्पणसे विरोधी अर्थ से अपने आश्रयके व्यावर्त्तक होनेसे सत्यादि शब्दोंका व्यावृत्तिमात्ररूप अर्थबिषे पर्यवसान(समाप्ति वा बर्तना)नहीं है] सत्यादि शब्दोंको विशेषण रूप अर्थकरके युक्तहुये भी अपने अर्थका परित्याग होतानहीं।अरु

जिस करके सत्यादि शब्दों को शून्यरूप अर्थ करके युक्तहुये विशेष्य के नियामकपनेका असम्भव होवेगा, अरु सत्यादिरूप अर्थ करके अर्थवान्पने के होनेसे तो तिससे विपरीत धर्मवाले विशेष्यों से ब्रह्मरूप स्वविशेषका नियामकपना सम्भवे है, याते ब्रह्मशब्द भी अपने अर्थकरके अर्थवान्ही है। तहां अनन्त शब्द जो है सो अन्तवान्पनेके निषेध द्वारा विशेषण है, अरु सत्यऔर ज्ञान यह शब्द तो अपने अर्थ को (ब्रह्मविषे) समर्पण करनेसे ही विशेषण होतेहैं। [" अनन्तं " अनन्त है, । इस पदकरके ब्रह्म की आत्मासे एकता कही है, इस अभिप्रायसे एक..ा विषे शास्त्र के तात्पर्य को देखावते हैं] "तस्माद्वाएतस्मादात्मन इति" तिस (ब्राह्मणभाग करके प्रतिपाद्य) से वा इस (मन्त्रभागकरके प्रतिपाद्य) आत्मासे, । इस वाक्यमें ब्रह्मविषेही आत्मशब्दके मिलावने से, ज्ञाताका आत्माही ब्रह्म है । अरु " एतमानन्दमयमात्मानमुपसङ्क्रामति " इस आनन्दमय आत्माको प्रवेश करावता है, । अरु " तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशदिति " तिसको सृजके तिसके प्रति पीछेप्रवेश करताहुआ, इस प्रकार तिसके प्रवेशसे । अरु जिसकरके तिसही परब्रह्म के जीवरूप से शरीर बिषे प्रवेशको श्रुति देखावे है, इसही करके ज्ञानवान्का स्वरूप ब्रह्म है ॥ [जब ब्रह्मकी आत्मासे एकता कहनी इच्छित है, तब ज्ञानशब्द की भावरूप साधनता की व्याख्या भङ्ग होवेगी, इस प्रकार पूर्वपक्षी कहता है] जब इस प्रकारहै तब आत्मा होनेसे ब्रह्मको ज्ञानका कर्त्तापना होवेगा ॥ अरु जिस करके आत्मा ज्ञाता है, यह प्रसिद्ध है, अरु " सोऽकामयत " सो कामना करता हुआ, । इस प्रकार कामनावाले परमेश्वर को ज्ञानका कर्त्तापना प्रसिद्ध है, याते ज्ञानका कर्त्ता होनेकरके चेतन मात्र रूप ब्रह्म है, यह कथन अयुक्त होवेगा अरु उक्त प्रकार माने हुये अनित्यता के प्रसङ्गसे जब ब्रह्मको चेतनमात्र ज्ञानस्वरूपता है, तब अनित्यता अरु परतन्त्रता प्राप्त होवे है, क्योंकि

धातुके अर्थको कारक की अपेक्षावान्‌पना है ताते। अरु ज्ञान, धातु का अर्थ है, एतदर्थ इस ज्ञानको अनित्यता अरु परतन्त्रता है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि स्वरूपसे भिन्न होने करके कार्य-पने के उपचार से। अरु चिन्मात्ररूप जो ज्ञानहै सो आत्माका स्वरूप है ताते भिन्न नहीं, याते नित्यही है, तथापि चक्षुरादि इ-न्द्रियों द्वारा विषयाकार परिणाम को पावनेवाली बुद्धिरूप उ-पाधिके जो शब्दादि विषयाकार प्रकाशहैं, सो आत्मस्वरूप ज्ञान के विषयरूप उत्पन्न हुयेही आत्मस्वरूप ज्ञानसे व्याप्त संभवे हैं, ताते आत्मस्वरूप विज्ञान के जो प्रकाश हैं सो विज्ञान शब्द के वाच्य अरु धातुके अर्थरूप हुये आत्मा केही विकाररूप धर्म हैं, इसप्रकार अविवेकी पुरुषों करके कल्पना करी है। परन्तु जो ब्रह्म का विज्ञान है सो सूर्य के प्रकाशवत् अरु अग्निकी उष्णतावत् ब्रह्मस्वरूपसे अभिन्न हुआ स्वरूपही है, अरु सो अन्य कारणकी अपेक्षावाला नहीं, क्योंकि नित्यस्वरूपहै ताते।[प्रश्न॥ ज्ञान जब नित्य है तब तिसविषे ब्रह्म के कर्त्तापने के अभाव हुये ब्रह्मको सर्वज्ञपना कैसे है॥ उत्तर॥ यहां यह अर्थ है कि ज्ञानके अन्तराय से विनाही बाह्यके विषयोंकी सिद्धि होतीहै, अरु सर्व वस्तु ज्ञान स्वभाववाले ब्रह्म से अंतरायरहित है, याते ब्रह्म सर्वज्ञ है, इस प्रकार आरोप करके कहते हैं] अरु सर्व पदार्थों को तिसकरके अभिन्न देश काल अरु आकाशादिक कारणवाले होने से अरु तिस ब्रह्म को निरतिशय सूक्ष्म होने से तिसको अन्य सूक्ष्म अ-न्तरायसहित दूरस्थित भूत भविष्यत् वा वर्त्तमान वस्तु जानने को योग्य नहीं है, ताते सो ब्रह्म सर्वज्ञ है। अरु "अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च त-स्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तमिति, मन्त्रवर्णात् "नहि विज्ञातुर्विज्ञतेर्विपरिलोपो विद्यतेऽविनाशित्वान्नतु तद्द्वितीयो ऽस्ति, इत्यादि श्रुतेश्च" हस्त पाद से रहित हुआ जानेवाला अरु ग्रहणकर्त्ता है, अरु सो चक्षुरहित हुआ देखताहै कर्णरहित

हुआ सुनता है, सो जानने योग्य वस्तु को जानताहै, अरु तिस का जाननेवाला कोई नहीं, तिसको मुख्य महत् पुरुष कहते हैं, इस मन्त्रके वर्णन से। अरु विज्ञाताकी विज्ञप्ति का लोप होता नहीं अविनाशी है ताते, अरु तिससे दूसरा नहीं है, इत्यादिक श्रुतियों से। [ब्रह्म नित्यहै, ज्ञानस्वरूप होने से, लौकिक ज्ञानवत्, इत्यादिरूप जो प्रश्न है, सो कथन करी युक्तियों से निषेध किया ऐसा कहते हैं। यहां यह भाव है कि लौकिक ज्ञान जो करणादिकों की अपेक्षा सहित होनेसे अनित्यपना है, अरु आत्मस्वरूप ज्ञान तो करणादिकोंकी अपेक्षा सहित नहीं, क्योंकिसमस्त करणोंके व्यापारके उपरामहुयेभी सुषुप्तिविषे तिसज्ञानका सद्भावहै ताते, अरु अन्यथा हुये सुषुप्तिकी सिद्धताका असंभवहै ताते, अरु सुषुप्तिसे जाग्रत्हुये पुरुषको सुषुप्तिके स्मरणके असंभवके प्रसंग से, याते श्रुतितात्पर्यके विषयरूप अर्थविषे सामान्यसे देखे हुये अर्थका प्रवेश नहींहै] अरु विज्ञाताके स्वरूपकरके अभेदसे करणादि निमित्तोंकी अपेक्षासे रहित होने से ब्रह्मको ज्ञानस्वरूपताके हुयेभी नित्यताकी सिद्धि है। एतदर्थ नित्य आत्मस्वरूपहोनेकरके ब्रह्मरूप ज्ञान धातुका अर्थ नहीं है, इसही से (अर्थात् नित्यहोने से) ज्ञानकाकर्त्ताब्रह्म नहीं है, अरु इसही हेतुसेज्ञानशब्द का वाच्यभी ब्रह्मनहीं है। [प्र०॥ तहांज्ञानस्वरूपब्रह्महै, यह प्रयोग कैसे सिद्धहोवे है॥उ०॥ तहां कहते हैं] तथापि तिसके (ज्ञानरूप ब्रह्मके) आभासके वाचक बुद्धिके जो धर्मविशेषहैं सो ज्ञानशब्दसे लखे जातेहैं परन्तु कहतेनहीं क्योंकि शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु जाति आदिक धर्मसे रहितहै ताते। तैसे सत्य शब्द से भी वाच्य ब्रह्म नहीं है। ब्रह्मको सर्व प्रपंचकी निवृत्तिकरके युक्त स्वरूपवाला होनेसे, बाह्यसत्ता के भेदको विषयकरनेवाले सत्य शब्दसे ब्रह्म सत्यहै, इसप्रकार लखते हैं, परन्तु सत्य शब्दका वाच्य ब्रह्म नहीं है (अर्थात् सत्यादि नामोंका नामीब्रह्म नहीं है किन्तु सत्यस्वरूप है) [उक्तप्रकार एक एक पदके अर्थको निरूपणकरके अब समस्त

वाक्यके अर्थको कहतेहैं,। यहां यह अर्थहै कि यद्यपि सत्यादि शब्दों का ब्रह्मसे मुख्य अन्वय है, तथापि वह सत्यादि शब्द परस्परकी सन्निधिके हुये परस्परकी व्यावृत्तिके नियामक होतेहैं। अरु ज्ञान रूप विशेषकरके युक्त होनेसे सत्यशब्द जड़ कारण बिषे बर्तता नहीं, अरु सत्यरूप विशेषण करके युक्त होनेसे ज्ञानशब्द जो है सो विषयकी अपेक्षासहित जो ज्ञानहै तिसबिषे बर्तता नहीं, क्योंकि विषयापेक्षिक ज्ञान असत्यहै ताते।। अरु ज्ञानस्वरूप विशेषणकरके युक्त होनेसे अनन्त शब्दज्ञातासे भिन्न अर्थबिषे बर्तता नहीं। एतदर्थ सत्यादिशब्दोंसे लौकिकवाच्य जोहै, तिससे विलक्षणअर्थ होनाचाहिये, इसप्रकार निश्चय करावतेहुये समस्तलौकिक अध्यासोंके अधिष्ठानको ब्रह्म होनेकरके लखावते हैं] याते "यतोवाचोनिवर्त्तन्तेह्यप्राप्यमनसासह" "अनिरुक्तेऽनिलयेनेति" जिससे अप्राप्तहोयके मनसहित वाणियां निवृत्तहोती हैं, अरु इस वाणीके अविषय अरु आधारसे रहित ब्रह्मबिषे अभय स्थितिको पावताहै,। इत्यादिक श्रुतियोंकरके प्रतिपादित ब्रह्मका अवाच्यपना अरु नीलकमलवत् वाक्यका अर्थपनासिद्धहुआ॥ उक्तप्रकार कथनकिया जो ब्रह्म सो कार्यमय बुद्धिरूप गुहाबिषे अनुस्यूत जो अव्याकृत (माया) नामवाला परमआकाश है तिसबिषे स्थित है॥ अरु जिसकरके इस बुद्धिबिषे ज्ञान, ज्ञेय, अरु ज्ञातारूपपदार्थ गूढ़हुये वर्तते हैं याते बुद्धिको गुहाकरके कहते हैं। वा इस बुद्धिबिषे भोग अरु मोक्ष यह उभय पुरुषार्थ गूढ़ कहिये छिपेहुये हैं एतदर्थ बुद्धिको गुहारूपसे वर्णन करतेहैं। वा "एतस्मिन्खल्वक्षरेगार्ग्याकाशः" हे गार्गि! इसअक्षरबिषे निश्चयकरके आकाशहै,। इसश्रुतिबिषे अव्याकृतको ब्रह्मकी सन्निधिसे परम आकाशरूपताहै [व्योमशब्दकी जो भूताकाशबिषे रूढ़िवृत्ति है तिसको परित्यागकरके अव्याकृतको विषय करनेपना क्या व्याख्यान किया, इस शंकापर कहतेहैं। यहांयह अर्थ है कि भूताकाशको कार्यहोने करके असृष्टपनाहैताते,अरु अव्याकृतरूप आकाशको कारणहोने

करके परमता (श्रेष्ठता) रूप विशेषणका संभवहै ताते, अरु अन्य शाखाके सत्पथनामक प्रकरणबिषे अक्षररूप ब्रह्मसे तिस अव्याकृत आकाशकी समीपताका निश्चयहै ताते, यहाँ व्योमशब्दकरके अव्याकृतको लखायाहै] सो अव्याकृतरूप आकाशही गुहा है। क्योंकि तिसको तीनकाल बिषे कारणताहै ताते, अरु तिस को सूक्ष्म होनेकरके तिसबिषेभी सर्वपदार्थ गूढ़हुये बर्ततेहैं, एतदर्थ उस अव्याकृतरूप आकाशको गुहाकरके वर्णन करतेहैं, तिस बिषे ब्रह्मस्थितहै। इसप्रकार अन्योंके अभिप्रायसे व्याख्यानकरके अब अपने अभिप्रायसे व्याख्यान करतेहैं। [हृदयनामकमांस पिंडीकरके अवच्छिन्नभूताकाशबिषे जोबुद्धिरूपागुहाहै तिसबिषे साक्षीहोनेकरके निहित कहिये प्रकट ब्रह्महै, इसप्रकार व्याख्यानकरना युक्तहै क्योंकि द्रष्टासे अभेदकरके ब्रह्मके अपरोक्षपनेका लाभहै ताते। अरु अन्यथा समष्टिरूप अव्याकृति नामक माया तत्वबिषे स्थितब्रह्महै, इसप्रकार कहेहुये ब्रह्मको परोक्षपना प्राप्त होवेगा। अरु ब्रह्मका जो परोक्षपनेसे ज्ञानहै सो अपरोक्ष संसार के अध्यासका निवर्त्तक होवे नहीं। ताते अपरोक्षद्रष्टा चैतन्यसे अभेदकरके ब्रह्मको अपने हृदयबिषे प्रत्यक्षपनेकरके कहनेको इच्छित है ताते, विज्ञानका साधनरूप हृदयाकाशही यहां व्योम शब्दकरके कहनेको इच्छितहै] अथवा हृदयावच्छिन्न जो भूताकाशहै सो परमव्योमहै, तिसबिषे जो बुद्धिरूपा गुहाहै तिसबिषे साक्षी होकरके ब्रह्मस्थित है, यह व्याख्यान युक्तहै, क्योंकि इस श्रुतिबिषे ज्ञानकासाधन होनेकरके आकाशको कहना इच्छितहै ताते। अरु "योवैसबहिर्हपुरुषाकाशो योवैसोऽन्तःपुरुषाकाशः सोऽयमन्तर्हृदयाकाश इति" जोप्रसिद्ध बाहर पुरुषाकाशहै, अरु जोप्रसिद्ध सो भीतर पुरुषाकाशहै, सो यह अन्तर हृदयाकाशहै,। इस अन्य श्रुतिसे भी हृदयाकाशका परम 'उत्कृष्ट स्वरूप प्रसिद्ध है। तिस हृदयाकाशबिषे जो बुद्धिनामक गुहा है तिसबिषेस्थित जो ब्रह्म है सो वृत्तिसे सूक्ष्महोने करके जानिये है। अरु अन्य-

था कहिये प्रतीतिविना ब्रह्म को विशिष्ट, देश, अरु कालका, संबंध नहीं है, क्योंकि ब्रह्म सर्वगत है, ताते अरु सर्व उपाधि से रहित है ताते। इस प्रकार कथन किये बुद्धिरूपा गुहाविषे अनुस्यूत अव्याकृत नामवाले परम आकाशविषे वा हृदय करके अवच्छिन्न "(यो वेदनिहितंगुहायां परमेव्योमन् । सोऽश्नुतेसर्वान्कामान् सहब्रह्मणाविपश्चितेति)" (परमआकाशविषे गुहा में स्थितको जो जानता है सो सर्वज्ञ ब्रह्मरूपसेही सर्वभोगों को एककाल विषे भोगता है) अर्थात् परमआकाश विषे वर्त्तमान बुद्धिरूपा गुहामें स्थित ब्रह्मको जो पुरुष जानताहै सो [यहां यह अर्थ है कि अविद्या अवस्थाविषे जो हिरण्यगर्भादिक उपाधियों विषे भोग्यहोने करके मानेहुये सुखके भेदहैं, तिन सर्वको ब्रह्मानन्दसे अभिन्न होनेसे ब्रह्मभूत जो विद्वान्है सो इन सर्व आनन्दों को भोगता है, इसप्रकार उपचारसे बहुवचन है] सब भोगों को भोगता है ॥ प्रश्न ॥ क्या अस्मदादिकोंवत् (इस लोकमें (पुत्र अरु । परलोक में (स्वर्गादि भोगोंको क्रमकरके भोगताहै ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, एक क्षण विषे आरूढ़ही भोगोंको सूर्य के प्रकाशवत् नित्य ब्रह्मस्वरूप अभिन्न, अरु जिसको सत्य अरु ज्ञानरूप कहते हैं, ऐसे एकही ज्ञानकरके ब्रह्मरूप से भोगताहै, अर्थात् ब्रह्मभूत जो विद्वान् सो ज्ञानरूप होनेसे सर्वज्ञ ब्रह्मरूप से ही सर्वभोगों को एक काल विषे भोगताहै। परन्तु जलगत सूर्य अरु आकाशादिकोंवत् उपाधिकृत प्रतिबिंबभूत संसारीस्वरूपसे पुण्यादिक निमित्तकी अपेक्षावाले अरु चक्षुरादि करणोंकी अपेक्षावाले लोकविषे प्रसिद्धभोगोंको क्रमकरके भोगतानहीं, किन्तु उक्तप्रकारसे सर्वज्ञ सर्वात्मा नित्य ब्रह्मात्मस्वरूपसे पुण्यादिक निमित्तोंकी अपेक्षासे रहित अरु चक्षुरादिक करणोंकी अपेक्षासे रहित सर्व भोगोंको साथही भोगताहै,अरु सर्वज्ञ ब्रह्मस्वरूपसे जो भोगताहै सो तिसका विपश्चित् कहिये पंडितपनाहै। अरु यहां मूलशब्द विषे "इति" शब्द जो है सो मन्त्रकी समाप्तिके अर्थ

है। अरु सर्वही वल्ली का अर्थ "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्म को पावता है,। इस ब्राह्मणवाक्य से सूचन किया, सो अर्थ संक्षेपसे मन्त्रकरके व्याख्यान किया, पुनः तिसही अर्थका विस्तारसे निर्णय कर्तव्य है, एतदर्थ उक्त मन्त्र की व्याख्यान स्थानी अग्रिम ग्रंथ प्रारम्भ करते हैं। तहां मन्त्रके आदि विषे "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्म है,। इसप्रकार कहा, सो कैसे सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप है, तहां पूर्वोक्त अर्थका अनुवादकरतेहुये कहते हैं, अनन्तपना जो है सो देशसे कालसे वस्तुसे, इन भेदकरके तीनप्रकारकाहै। जैसे देशसे अनन्त आकाशहै तिशका देशसे परिच्छेद नहीं है, परन्तु आकाशका काल से अरु वस्तुसे अनन्तपना नहीं है, क्योंकि आकाश कार्यरूप है ताते। इसप्रकार ब्रह्मको आकाशवत् कालसे भी अन्तवान्पना नहीं है, । अर्थात् आकाश उत्पत्तिमान् कार्यरूप अरु वस्तुरूपहोने से अपनी उत्पत्तिके पूर्वकाल विषे है नहीं ताते आकाशको काल से अन्तवान्पनाहै तैसे ब्रह्मको नहीं। क्योंकि अकार्यरूप है ताते, अरु कार्यरूप जो वस्तुहै सो कालसे परिच्छेदको पावती है, अरु ब्रह्म जो है सो अकार्यरूप है ताते कालसे भी अनन्त है। तैसेही ब्रह्मका वस्तुसे भी अनन्तपनाहै, क्योंकि सर्व वस्तुओंसे अभिन्न है ताते। अरु भिन्न जो वस्तु है सो अन्यवस्तु का अन्तहोवे है। जैसे देवदत्तके गृहसे भिन्न समीप विष्णुदत्तका गृहहै सो देवदत्तके गृहका अन्तहै क्योंकि विष्णुदत्तके गृहके स्थान में देवदत्त का गृह नहीं, अरु एकठेकाने दोवस्तुरहती नहीं,अरु जो भिन्नवस्तु हैं सो परस्पर में एक दूसरे का अन्त लखावे हैं। अरु जिसकरके जिसकी बुद्धिकी निवृत्ति होतीहै सो तिसका अन्तहै। जैसे गौपने की बुद्धि अश्वपनेकी बुद्धिसे निवृत्त होती है, याते गौपना जोहै सो अश्वपनेका। अरु अश्वपनाहै सो गौपनेका। अन्त है, इस प्रकार सो अन्तवान्ही होते हैं। अरु सो अन्त अपनेसे भिन्नवस्तु विषे देखते हैं। अरु ब्रह्मका किसीसे भी भेद है नहीं एतदर्थ ब्रह्म

का वस्तुसे भी अनन्तपनाहै ॥ प्र० ॥ पुनः॥ ब्रह्मको सर्ववस्तुओं से अभिन्नपना कैसे है, ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, ब्रह्म सर्ववस्तुओं का कारण है ताते ब्रह्मको सर्ववस्तुओं से अभिन्नपना है । अरु जिसकरके काल अरु आकाशादिक सर्ववस्तुओंका कारणब्रह्महै, याते सो घटादिकोंसे अभिन्न मृत्तिकावत्अरु सर्प दंड मालादिकों से अभिन्न रज्जुवत् सर्ववस्तुओं से अभिन्न है ॥ अरु जो ऐसा कहै कि कार्यकी अपेक्षा से ब्रह्मको वस्तुओंसे अन्तवान्पना होवेगा, सोकहना बने नहीं,क्योंकि कार्यरूप वस्तुको मिथ्यापना है ताते । अरु जिसकरके वास्तव से कारण से भिन्नकार्य है नहीं, अरु जिसकरके कारण के जानेहुये कार्यकी बुद्धि निवर्त्त होती है "वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवसत्यं" "सदेव सत्यमिति" वाणीसे आरम्भ किया विकार नाममात्र है, मृत्तिकाही सत्य है । ऐसे सत्रूपही सत्य है, । इन अन्य श्रुतियोंसे । ताते आकाशादिकोंका कारण होनेसे प्रथम देशसे अनन्तब्रह्महै। अरु आकाश देशसे अनन्तहै यह सर्वको प्रसिद्धहै, तिसआकाशकायह कारण है ताते आत्माको देशसे अनन्तपना सिद्धही है । अरु जिसकरके व्यापक से व्यापक उत्पन्नहुआ ऐसा कुछ नहीं देखते। इस करके आत्माका जो देशसे अरु अकार्यरूप होने से काल से अरु तिस आत्मा से भिन्नवस्तु के अभावसे जो अनन्तपना है सो निरतिशय (सर्वसे अधिक) है अरु जिसकरके आत्माका निरतिशय अनन्तपना है इसहीसे तिसका निरतिशय सत्यपना है [इसप्रकार सृष्टिवाक्य के तात्पर्य को कहके अब पदोंका विभाग करते हैं अन्तके कार्यपर्यन्त सर्वत्र परमात्माके ग्रहणहोनेसे आकाशभावको प्राप्तहुये परमात्मासेही वायु उत्पन्नहुआ, याही से तिसके गुण आगे अनुवृत्तिहै । इसप्रकार जानना] यहां इस कहनेके वाक्यबिषे जो " तिस " शब्दहै तिसकरके मूलके वाक्य से सूचनकिया ब्रह्म ग्रहण करतेहैं, अरु " इस " शब्दकरके जो ब्रह्महो ब्राह्मणभाग से सूचन किया अरु जो " सत्यंज्ञानमनन्तं

ब्रह्म" सत्यज्ञान अनन्त ब्रह्म है, इस वाक्य करके अनन्तरही लखाया है सो ग्रहण करते हैं "।तस्माद्वाएतस्मादात्मनआकाशः सम्भूतः।आकाशाद्वायुः।वायोरग्निः।अग्नेरापः।अद्भ्यःपृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।ओषधीभ्योऽन्नम्।अन्नाद्रेतः।रेतसःपुरुषः। सवाएषपुरुषोअन्नरसमयः।" ६ तिस इस आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथिवी, पृथिवीसे ओषधियां, ओषधियोंसे अन्न, अन्नसे रेत, रेतसेपुरुष उत्पन्न हुआ, सो प्रसिद्ध यह पुरुष अन्न रसमयहै,।अर्थात् तिस इस आत्मस्वरूप ब्रह्मसे आकाश उत्पन्नहुआ सो आकाश शब्द गुणवाला है सो मूर्त्तरूप द्रव्योंको अवकाशका देनेवालाहै। तिस आकाशसे अपने स्पर्श गुणकरके अरु पूर्वके आकाशके शब्दगुण करके इसप्रकार उभयगुणवाला वायु उत्पन्नहुआ। अरु तिसवायु से अपनेरूप गुणकरके अरु पूर्वके शब्द स्पर्श गुणकरकेयुक्त तीन गुणवाला अग्नि उत्पन्नहुआ।अरु अग्निसे अपने रस गुणकरके अरु पूर्व के ,शब्द, स्पर्श, रूप, इन तीन गुणकरके युक्त चारगुण वाले जल उत्पन्नहुये।अरु तिसजलसे अपने गन्धगुणकरके अरु पूर्व के ,शब्द, स्पर्श, रूप, रस, इन चारगुणकरके युक्त पांचगुण वाली पृथिवी उत्पन्न हुई । पृथिवी से ओषधियां, ओषधियों से अन्न, अन्नसे रेत कहिये वीर्य, अरु वीर्य से मस्तक अरु हस्त पादादिक अवयव आकृतिवाला पुरुष उत्पन्नहुआ [पञ्चकोश के आरम्भ का तात्पर्य कहते हैं] सो प्रसिद्धयह पुरुष अन्नरसमय है, अर्थात् अन्नके रसका विकार है॥ जिस करके सर्व अङ्गों से उत्पन्नहुआ अरु पुरुषके आकार से सम्भव को पाया जो तेज सो रेत अरु वीर्य कहते हैं । ताते जो जन्मता है सो भी तैसा पुरुषाकार वाला होता है,क्योंकि सर्वजातियों विषे उत्पन्न होने वाले शरीरको पिताके आकारसे।होनेके। नियमको देखते हैं ताते अरु सर्व शरीरोंकोअन्नके रसकी विकारताके अरु ब्रह्मके वंशविषे उत्पत्ति की तुल्यता के हुये, यहां पुरुष (मनुष्य शरीर) ही किस

कारणसे ग्रहण करते हो, तहां कहते हैं, प्रधान होनेसे । अर्थात् विधि निषेधके विवेकके सामर्थ्यकरके युक्तहै ताते। यहां पुरुषही ग्रहण करते हैं॥ प्र०॥पुनः पुरुषका प्रधानपना क्याहै॥ उ०॥तहां कहते हैं, कर्म अरु ज्ञानका अधिकार पुरुष शरीरविषेही है, क्योंकि तिसको समर्थता है ताते, अरु अर्थ।कामना। वालाहै ताते अरु जिसकरके अर्थीविद्वान् अरु समर्थहुआ पुरुषकर्मअरुज्ञानविषेअधिकारकोपावताहै,इसकरके तिसकी प्रधानताहै अरु पुरुषपनेविषे।अर्थात् ब्राह्मणादि जातिवाले मनुष्यादि शरीरविषे। आत्मज्ञान के अतिशयके देखावनेसे, अतिशयकरके प्रकटहै । अरु सो पुरुष विज्ञानकरके अत्यन्त सम्पन्न हुआ ज्ञात वस्तुको कहताहै, ज्ञात वस्तुको देखता है कल्ह होनेवाले कार्यको जानता है, अरु लोक अलोकको जानताहै, मरने योग्य।शरीर। से अमृत (अक्षयपद) प्राप्तहोनेकी इच्छा करताहै। इसप्रकार।प्रधानताकरके। सम्पन्न है अरु "पशूनामशनापिपासे एवाभिज्ञानमित्यादि" अन्य पशुओं के क्षुधा तृषाकाही ज्ञानहै,।इत्यादिरूप ऐतरेयकश्रुति वाक्यके देखनेसे॥ सोई पुरुष यहां विद्यासे अत्यंत आंतरब्रह्मको प्राप्त होनेकी इच्छा करताहै। अरु जिसकी अनात्मरूप बाह्य आकारों के भेदोंविषे किसीभी आश्रयके अर्थ आत्माकी भावनाको प्राप्त हुई जो बुद्धि सो तत्काल अत्यन्त आन्तर प्रत्यगात्माको विषय करनेवाली अरु निराश्रय करने को अशक्य है, याते देखे हुये शरीररूप आत्माकी तुल्यता की कल्पना से शाखा चन्द्र के दृष्टान्तवत् भीतर प्रवेश करावते हुये कहते हैं "।तस्येदमेव शिरः, अयंदक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति"। (तिसका यहही शिर है, यह दक्षिण पक्ष है, यह उत्तर पक्ष है, यह आत्माहै, यह पुच्छ प्रतिष्ठा है, तिसही बिषे यह श्लोक होताहै) अर्थात् तिस इस अन्न रसमय पुरुषका यहही प्रसिद्ध शिर है। शिरसे रहित प्राणमयादि।कोशों। बिषे शिरभाव के।श्रुति करके। देखने से यहां।अन्न

मयकोशविषे) भी तिसका प्रसंग मत हो, इस अभिप्रायसे यहां यहही शिर है, ऐसा कहा है। इसप्रकार इसके पक्षादिक अंगोंविषे भी योजना करनी। अरु यह पूर्व दिशा के सम्मुख हुये पुरुषका जो दक्षिण बाहु है सो दक्षिण दिशाकी ओर होताहै ताते सो यहदक्षिणपक्षहै। अरु यह वामबाहु (जोपूर्वाभिमुखहोनेसे उत्तर दिशा की ओरहोताहै) सो यह उत्तरपक्षहै अरु यह देहका मध्य-भाग अन्य अंगोंका (आश्रय होने से) आत्मा है " मध्यं ह्येषा-मङ्गानामात्मेतिश्रुतेः " यह अंगोंका मध्य आत्मा है, । इस श्रुति करके। अरु यह नाभि के नीचे जो अधो अंग है सो पुच्छ प्रतिष्ठा कहिये आधार है। जिसकरके शरीर स्थितहोता है ऐसे जे पाद तिसको प्रतिष्ठा कहते हैं। अरु जैसे गौका पुच्छहै तैसे यह नीचे के आश्रयकी तुल्यतासे पुच्छवत् पुच्छ कहते हैं। [पक्ष अरु पुच्छशब्दके उच्चारणसे पक्षिके आकारकी कल्पनाको देखावेहैं। आगे तिसकी कल्पनासे बाह्य विषयकी आसक्तिके निषेधकी हेतु बुद्धिके आत्मा विषे स्थिर करने के अर्थ है, उपासनाका विधान यहां कहनेको इच्छित नहीं] इस कथनकरके अग्रिम कहने के प्राणमयादि कोशोंके, सांचे विषे डालनेसे प्रगलितहुये ताम्रादि धातुओंकी प्रतिमावत्, रूपकपनेकी सिद्धिहोवे है (अर्थात् जिस आकारका सांचाहोताहै तिसमें पूर्णतासे तिसहीके आकार धातु की प्रतिमाहोती है परन्तु सो प्रतिमा सांचे के अन्तर तिसके पू-र्णाकार हुई भी सांचे अरु तिसके धर्मादिकोंसे पृथक्ही होतीहै, तैसे अन्नमयकेभीतर प्राणमय तिसकेभीतर मनोमय तिसके भी-तर विज्ञानमय तिसके भीतर आनन्दमय, इसप्रकार जानना) तिसही ब्राह्मणवाक्य करके उक्त अर्थविषे अन्नमयके स्वरूप का बोधक यह श्लोक कहिये मन्त्र होताहै ॥

इति द्वितीयाध्यायान्तरप्रथमोऽनुवाकः १ ॥

अन्नाद्वैप्रजाःप्रजायन्ते। याः काश्चपृथिवींश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नंहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वंवैतेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नंहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेनवर्द्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति॥ तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। सवाएष पुरुषविधएव। तस्य पुरुष विधताम् अन्वयंपुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति २६॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

अथ द्वितीयोऽनुवाकः॥

हे सौम्य! [यहां यह रहस्यहै कि उपक्रम अरु उपसंहारकी ब्रह्म अरु आत्माकी एकताके प्रतिपादनसेही, परिसमाप्तिसे ग्रंथके मध्यमें उपासनाकी विधिबिषे तात्पर्यके हुये वाक्य भेदके प्रसंगसे, अरु इसही से " एवाङ्गेस्तुतिपरार्थत्वादिति " अन्त बिषे स्तुतिपर अर्थके होने से, । इस न्यायकरके जैसे प्रयाजादि फलका श्रवण अर्थवादहै,तैसे अन्नमयादिकोंके ज्ञानके फलका श्रवण भी अर्थवादहीहै, क्योंकि तिस तिस कोशबिषे बुद्धिके स्थिर करनेको पूर्व पूर्व कोशगत बुद्धिके विजयसे आत्माके निश्चयका साधन होताहै ताते] । अर्थात् अन्नमयादि कोशोंके श्रवणका फल केवल अर्थवादमात्रही है तथापि कोशों का श्रवण कोशातीत आत्माके निश्चयमें साधन है क्योंकि प्रथम अन्नमयके श्रवणसे बुद्धि तिसबिषे स्थिरताकोपावती है, पुनः प्राणमय जो अन्नमय

का अन्तरात्माहै तिसके श्रवणसेअन्नमयसे हटके बुद्धि प्राणमय में स्थितिको पावती है, इसप्रकार उत्तरोत्तर कोशों के श्रवण से बुद्धि पूर्व पूर्व कोशों के विचार को त्यागती है, इसप्रकार जब बुद्धि अन्तके आनन्दमयकोशके श्रवणसे तिसविषे स्थिरता पाय पश्चात् उस आनन्दमयके आधार आश्रय ब्रह्मसे अभिन्न सर्वकोशातीत आत्मा को श्रवण करती है तब आनन्दमय कोश से हट अपने प्रत्यगात्मा को यथार्थ निश्चयकर तिसविषेअचल स्थिरताको पावती हैं, तातै पंचकोशोंका श्रवण मनन विचार अपनेआप पंचकोशातीत आत्माके यथार्थ निश्चयका साधनहै । रसादि सप्तधातु भावसे परिणामको प्राप्तहुये " । अन्नाद्वैप्रजाः प्रजायन्ते, याः काश्च पृथिवीᳩश्रिताः, अथो अन्नेनैवजीवन्ति, अथैनदपि यन्त्यन्ततः, अन्नᳩहिभूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषध-मुच्यते सर्वंवैतेऽन्नमाप्नुवन्ति, येऽन्नंब्रह्मोपासते " । (अन्नसे प्रसिद्ध जेकोईपृथिवीको आश्रय करनेवाली प्रजाउत्पन्नहोती है, अन्न सेही जीवे है, पश्चात् अन्नविषे अन्नमेंही लीन होवेहै, तातै अन्न भूतोंके मध्य ज्येष्ठ है, तातै सर्वका औषध कहते हैं, जो अन्नरूप ब्रह्मको उपासते हैं, सो निश्चय करके सर्व अन्न पावते हैं? अर्थात् अन्नसे प्रसिद्ध जे कोई विलक्षण पृथिवी को आश्रय करनेवाली स्थावर जंगमरूप प्रजा है सो सर्व उत्पन्न होती है, अरु उत्पन्नहुई प्रजा अन्नसेही जीवेहै, पीछे अन्तविषे । अर्थात् आयुकी समाप्ति बिषे इस अन्नरूपा पृथिवी मेंही लीन होवे है, क्योंकि जिसकरके अन्न जो है सो भूत कहिये प्राणधारियों के मध्य ज्येष्ठ है, अर्थात् प्रथम उत्पन्न हुआ है,अरु जिसकरके अन्न, अन्नमयादिक अन्यभूतों का कारणहै इसही करके सर्व प्रजा अन्नसे उत्पन्नहोती है, अरु अन्नसेहीजीवे है, औ अन्नविषे लय होवे है । जिसकरके ऐसे है तातै अन्न जो है सो सर्व प्राणियोंके देहके दाहकी निवृत्ति करनेवाला औषध कहते हैं ॥ अब अन्नरूप ब्रह्म के जाननेवाले पुरुषके अर्थ फल कहते हैं । जो पुरुष उक्त

प्रकारके अन्नरूप ब्रह्मको उपासते हैं सो निश्चय करके सर्व अन्नके समूह को पावते हैं। कैसे कि जिसकरके मैं ब्रह्मसे उपजा हौं अरु अन्नरूप हौं। अन्नसेही जीवताहौं। अरु अन्न बिषेही लय होऊँगा, ताते अन्न ब्रह्म है, इसप्रकार जानते हैं॥ पुनः अन्नरूप आत्माकी जो उपासनाहै सो सर्व अन्नकी प्राप्ति रूप फलवाली कहते हैं। तहां "। अन्नꣳहिभूतानां ज्येष्ठम्, तस्मात्सर्वौषधमुच्यते,अन्नाद्भूतानिजायन्ते,जातान्यन्नेनवर्द्धन्ते, अद्यतेऽत्ति च भूतानि, तस्मादन्नं तदुच्यत इति"। (जाते अन्न भूतोंके मध्यज्येष्ठहै, ताते सर्वका औषध कहते हैं, अन्नसे भूत उपजते हैं, उपजेहुये अन्नसे वृद्धिको प्राप्तहोते हैं, भक्षण करते हैं अरु भक्षण करे है, ताते सो अन्न कहते हैं? अर्थात् जिस करके अन्न जो है सो सर्व भूतोंके मध्य बड़ाहै, क्योंकि प्रथम उपजाहै, ताते उसको सर्वका औषध कहते हैं, अरु तिसही से सर्व अन्नरूप आत्माके उपासकोंको सर्व अन्नकी प्राप्तिबने है, अरु अन्नसे भूत प्राणी उपजते हैं, अरु उपजेहुये अन्नसेही वृद्धिको पावते हैं,। यह पुनः जो कथनहै सो प्रसंगकी समाप्तिके अर्थ है॥ अब अन्न शब्द का अर्थ कहते हैं, जिसकरके जो अन्नमय स्थूलशरीर भूतोंकरके भक्षण कियाजाताहै, अरु आप भूतोंको भक्षण करताहै, ताते सो अन्न है ऐसा कहते हैं। अरु यहां मूल बिषे जो "। इति" शब्द है सो प्रथम अन्नमय कोशके वर्णनकी परिसमाप्तिके अर्थ है॥। हे सौम्य! भोजन किये अन्नसे पुरुषके उदरबिषे शुक्र अरु स्त्री के उदरबिषे शोणित उत्पन्न होवे है, सो शुक्र शोणित जब स्त्रीके गर्भ स्थानबिषे जन्म लेनहार जीवों के प्रारब्ध संस्कार से भोगालय स्थूल शरीर की उत्पत्ति के निमित्त से एकत्र होते हैं तब उस गर्भस्थानबिषे एक बुदबुद निर्माणहोय पश्चात् शिर हस्तपादादि अवयवों सहित यह शरीर निर्माण होताहै पुनः सो माताके उदर में अन्न के रसकरके वृद्धि को पावता है अरु गर्भ से बाहर आये पश्चात्‌भी दुग्धादि अन्नके रस वा साक्षात्‌अन्नसे वृद्धिको पावता

सता जीवताहै अरु आयुके समाप्तहुये अन्तविषे अन्नरूपा पृथिवी में लयहोता है वा सिंहादि मांस आहारी जीवों का अन्न होता है, ताते इस अन्नमय स्थूलशरीर को अन्नमय कोश कहते हैं, अरु शिर हस्त पादादिक अवयवों सहित जो प्रत्यक्ष भासता है सोई इसका स्वरूप है, अरु जीवोंको अपने शुभाशुभ कर्मों के सुखदुःखरूपफलके भोगने का स्थान भोगालय है, अरु ,जायते, अस्ति, इत्यादि षट् भाव विकार इसके धर्म हैं, ऐसा जो अन्नमय कोश अन्नादि भूतों का कार्य अरु जड़ होने से यह आत्मानहीं, आत्मा जो है सो ,, घटद्रष्टा घटाद्भिन्न,, इस न्याय से इस अन्नमय कोशका द्रष्टा साक्षी अन्नमयसे पृथक्ही है, अरु इस अन्नमय का द्रष्टापना अपने विषे पायाजाता है ताते इस अन्नमयकेद्रष्टा चैतन्यसाक्षी आत्मा अपुन अन्नमयकोशनहोयके इससे पृथक्ही है, इसप्रकार विचारके अपने आपको अन्नमय से पृथक्ही निश्चय अनुभव करना। ॥ अब अन्नमयसे आदिलेके आनन्दमय कोश पर्यन्त जो आत्मा हैं तिनसे अत्यन्त आन्तर जो ब्रह्महै, तिसको अनेक तुषाके दूरकरने करके तंदुलवत्। वा अनेक मुंजको दूरकरके ईषिकावत्। विद्यासे अविद्याकृतपंचकोशोंके दूर करनेकरके प्रत्यगात्मा रूपसे देखावने को इच्छताहुआ शास्त्र कहने का आरंभ करता है ॥ "तस्माद्वाएतस्मादन्नरसमयात् अन्योऽन्तरात्मा प्राणमयः, तेनैषपूर्णः,सवाएषपुरुषविधएव"। तिस इस अन्नरसमय से अन्य अन्तरआत्मा प्राणमयहै, तिसकरके यह पूर्णहै, सो प्रसिद्ध पुरुषके आकार वालाही है; अर्थात् तिस इस कथन किये अन्नरसमय पिंडसे अन्य (भीतर) पिंडवत्ही आत्मापने करके मिथ्या कल्पित आत्मा प्राणमय है; अर्थात् प्राणजो वायु तिसरूप है। तिस प्राणमय करके , वायुसे पूर्ण लोहकारके गृहकी धमनी चर्मवत, यह अन्नरसमय आत्मापूर्ण है। सो प्रसिद्ध यह प्राणमयरूपआत्मा शिर अरु पक्ष आदिक अंगों से पुरुषके आकारवालाही है ॥ क्या सो आपही पुरुषाकारहै,

तहां नहीं, ऐसा कहते हैं, प्रथम अन्नमयरूप आत्मा को पुरुष के आकार करके युक्तपना प्रसिद्ध है "। तस्य पुरुष विधताम् अन्वयं पुरुषविधः, तस्य प्राण एवशिरः, व्यानो दक्षिणः पक्षः अपान उत्तरः पक्षः, आकाश आत्मा, पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति "। (तिसकी पुरुषाकारतासे पीछे यह पुरुष के आकारवाला है, तिसका प्राणही शिरहै, व्यान दक्षिण पक्ष है, अपान उत्तर पक्ष है, आकाश आत्मा है, पृथिवी पुच्छरूप प्रतिष्ठा है, तिसही विषे यह श्लोक होता है) अर्थात् तिस अन्न रसमयकी पुरुषाकारताकेपीछे सांचेविषे डालेहुये प्रगलिततात्रादि धातुके प्रतिमावत् यह प्राणमय (अन्नमय) पुरुषके आकार वालाहै, स्वरूपसे ही नहीं। इसप्रकार पूर्व पूर्वकोशकी पुरुषाकारताकेपीछे पिछलापिछलाकोश पुरुषके आकारवाला होवे है, अरु पूर्वपूर्वकोश उत्तरउत्तरकोश करके पूर्ण है॥ इसप्राणमयको पुरुषकी आकारता कैसे है तहां कहते हैं,॥ तिसप्राणमय कोशरूप पक्षीका स्वयं प्राणही शिरहै, अर्थात् ("मुख नाशिकाभ्यां स्वयं प्राणः प्रतिष्ठते" इत्यादि अन्यश्रुतियोंके प्रमाणसे) वायुके विकार प्राणमयकोशका मुख नाशिकाके मार्गसे बाह्य निकलाहुआ वृत्ति विशेषरूप जो प्राणहै सो शिरवत् कल्पना कियाहै, क्योंकि श्रुति विषे कथन कियाहै ताते। इसप्रकार सर्व ठिकाने श्रुतिके कहने प्रमाणही पक्षादिकोंकी कल्पनाहै॥ अरु तिस प्राणमयका व्यान नामक प्राण वृत्ति विशेषरूप दक्षिणपक्षहै। अरु अपान नामक प्राण वृत्ति विशेष उसका उत्तरपक्ष है। अरु आकाश आत्मा है, अर्थात् अन्तराकाशमें समान नामवाला वृत्ति विशेषरूप प्राण है सो उसका आत्मा (मध्य शरीर) वत् आत्मा है, क्योंकि तिस समान को प्राणकी अन्य वृत्तियोंविषे श्रेष्ठता है अरु नाभि के आकाश मध्यविषे स्थित है ताते, अरु अन्य अन्तविषे स्थित प्राणकी वृत्तियोंकी अपेक्षासे सो समान नामवाला वायु आत्मा है "मध्यंह्येषामंगानामात्मेति" इन अंगोंका मध्य आत्मा है,।

इस श्रुतिविषे मध्यभागमें स्थित वस्तुकाआत्मापनाप्रसिद्ध है ॥ अरु इस प्राणमयकी पृथिवी पुच्छरूप प्रतिष्ठा (आधार) है। अरु अध्यात्मरूप प्राणका पृथिवीरूप देवता धारण करनेवाला है, क्योंकि पृथिवी को स्थितिकी हेतुताहै ताते ॥ अरु "सैषापुरुषस्यापानमवष्टभ्येति" सो यह पृथिवी पुरुषके अपानको धारण करके स्थित है,। यह अन्य श्रुतिका भी प्रमाणहै ताते । अन्यथा शरीरका उदाननामक प्राणवृत्ति से [जो ऊर्ध्वउत्क्रामण में मुख्य है,] ऊर्ध्व गमन होवेगा वा भारी होने से पतन होवेगा, तस्मात् प्राणमय कोशरूप आत्माकी पृथिवी देवता पुच्छरूप प्रतिष्ठा है। अरु तिसही अर्थविषे अर्थात् प्राणमयआत्माके विषयमें यहश्लोक (मन्त्र) प्रमाणहै ॥ [हे सौम्य! अन्नमय कोशके अन्तर वायुरूप जो प्राणमयकोशहै सो घटान्तर वायुवत् अन्नमयमें तिसहीके आकार पूर्णतासे स्थित है, अरु प्राणादिपंच प्राण अरु वागादि पंचज्ञानेन्द्रियांमिलके प्राणमयकोश हुआहै अरुप्राणकोंक्रियाशक्ति प्रधान होनेसेवागादि कर्मेंद्रियोंविषे जो क्रियाशक्ति है सो प्राणकीहोनेसे कर्मेन्द्रियों की भी प्राणमय में योजनाहै, अरु प्राणमय कोश को अन्नमय से सूक्ष्म अरु तिसके अन्तर अरु तिसका धारकपनाहोने से अन्नमय का आत्मा कहते हैं, अरु मुखनासिका के द्वारसे बाहर जाना अन्तर आवना लेना देना कूदना उछलना पसरना संकोचना अन्नरस को रोम रोम प्रति सर्व नाड़ियों में प्राप्तकरना मलमूत्रका त्यागना, इत्यादि इसकी क्रियाहै, चंचलता स्वभावहै, क्षुधा पिपासा इसकीऊर्मी (धर्महै) जड़ता इसमेंदोषहैं । ऐसा जो प्राणमयकोशहै सो आत्मानहीं, इस प्राणमयका प्रकाशक ज्ञाता साक्षी आत्मा है,सो ,घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः, ज्ञेयसेज्ञाता पृथक् अरु चैतन्यहोताहै, इसन्यायसे प्राणमयकेज्ञाता चैतन्य आत्मा अपुन प्राणमय न होयके प्राणमयसे पृथक् तिसका साक्षी प्रत्यगात्मा है, अपुन प्राणमय नहीं ॥ इसप्रकार प्राणमय से पृथक् अपने आपको यथार्थअनुभवकरनिश्चयकरना ॥ इतिद्वितीयोऽनुवाकः ॥

प्राणं देवा अनुप्राणान्ति । मनुष्याःपशवश्चये । प्रा-
णो हि भूतानामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यते । सर्व्वमेव
त आयुर्यन्ति । ये प्राणं ब्रह्मोपासते । प्राणो हि भूता-
नामायुः । तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति । तस्यैष एव शा-
रीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्
अन्योऽन्तरात्मामनोमयः । ते नैष पूर्णः । स वा एष पु-
रुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषवि-
धः । तस्य यजुरेव शिरः । ऋग् दक्षिणः पक्षः । सामो-
त्तरः पक्षः । आदेश आत्मा । अथर्वाङ्गिरसः पुच्छंप्रतिष्ठा।
तदप्येष श्लोको भवति ॥ २७ ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ तृतीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! [आत्मशब्द के अमुख्य अर्थताके प्रसंग से, अरु प्रसंगविषे प्राप्त अर्थ के ग्राहक, एतत्, शब्दके विरोधसे । एतदर्थ सर्व कोशों के अध्यासका अधिष्ठानरूप चिदात्माही यहां आत्म-शब्दकरके कथनकरने को इच्छित है, इस तात्पर्य को कहते हैं । यहां अर्थ से "इति" इस, । इस शब्दका आत्मशब्दके सामर्थ्य से अरु कल्पित को अधिष्ठानपने के असंभव से यह अर्थ है] "प्राणं देवा अनुप्राणान्ति, मनुष्याःपशवश्चये, प्राणोहि भूतानामायुः, तस्मात्सर्वायुषमुच्यते, सर्वमेव त आयुर्यन्ति, ये प्राण ब्रह्मउपासते" (प्राण के पीछे देवा प्राणन को करते हैं, जे मनुष्य अरु पशुहैं, जाते प्राणभूतोंका आयुहै, ताते सर्वका आयु कहते हैं, प्राणब्रह्मको जो उपासते हैं सो सर्व ही आयुको पावते हैं) अर्थात् जिसकरके प्राणके पीछे देवता प्राणन, जीवन, को करते हैं, अर्थात् अग्न्यादिक जे देवता हैं सो प्राणन कहिये जीवन क्रिया की शक्ति वाले वायुरूप प्राणके पीछे तिसके स्वरूप भूतहुये प्राणनरूप कर्म को करते हैं, अर्थात् प्राणन रूप क्रियासे

क्रियावान् होते हैं, अथवा अध्यात्म रूप विकार के अधिकार से देव जे इन्द्रियां सो मुख्य प्राणके पीछे चेष्टा करते हैं । तैसे जो मनुष्य अरु पशु हैं सो प्राणन रूप क्रियासेही चेष्टावाले होतेहैं । याते परिच्छिन्न अन्नमयरूप आत्मासेही प्राणी आत्मावाले नहीं होते,किन्तु तिस अन्नमय के अन्तर्गत साधारणरूपही सर्व पिंड-बिषे व्यापी प्राणमय सेभी मनुष्यादिकप्राणी आत्मावाले होतेहैं । इसप्रकार पूर्व पूर्व विषे व्यापी उत्तर उत्तर सूक्ष्म रूप आकाशा-दिक भूतों से आरम्भ किये अविद्यारचित मनोमय से आदिलेके आनन्दमय पर्यन्त आत्मा से सर्व प्राणी आत्मा वाले होते हैं । तैसे आकाशादिकों के कारण नित्य अविकारी सर्वगत सत्यज्ञान अनन्त रूप पंचकोशातीत सर्व स्वरूप स्वाभाविक आत्मा से भी सर्व प्राणी आत्मा वाले होते हैं । अरु जिसकरके सो परमार्थ से सर्वका आत्मा है तिसकरकेही यह कथन बनता है । यह अर्थ से कथन किया होता है ॥ प्रश्न ॥ देव जो है सो प्राणके पीछे जीवन रूप क्रियाको कहते हैं,इसप्रकार कहा तिसकरके क्या सिद्धहुआ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, जिसकरके प्राण सर्व प्राणीमात्रका जीवनहै, "यावद्ध्यस्मिञ्छरीरे प्राणं वसति तावदायुरिति" यावत्इसशरीर बिषे प्राणवसता है तावत् आयु है, । इसअन्य श्रुतिके वाक्य से ताते प्राणको सर्वकाआयु कहते हैं।अरुजिसकरके लोकबिषेप्राणके गमनहुये मरणकी प्रसिद्धि प्रख्यातहै ताते प्राणको सर्वका आयु-पना प्रसिद्धही है,याते इस बाह्य असाधारण अन्नमयरूप आत्मा से निकलके तिसबिषे आत्मबुद्धिको त्यागके इसके भीतर साधा-रण प्राणमय आत्मरूप ब्रह्मको " योऽहमस्मिप्राणः सर्व भूता-नामात्मायुजीवनहेतुत्वादिति " मैं प्राण हौं अरु सर्व भूतों का आत्मा जीवनका हेतु होने से आयुहौं, । इसप्रकार जो उपासते हैं सो इस लोक बिषे सर्वही आयुको पावते हैं, अर्थात् आयुकेक्षय से पूर्व अपमृत्युसे मरतेनहीं " सर्वमायुरिति " सर्व आयुको पा-वते हैं, । इस श्रुतिवाक्यकी प्रसिद्धिसे वे सौ (१००) वर्ष पर्यन्त

तो जीवते हैं, यह युक्तहै। तहां क्या कारण है कि "। प्राणोहि भूतानामायुः, तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति,तस्यैष एव शारीर आत्मा, यः पूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्। अन्योऽन्तरात्मा मनोमयः, तेनैष पूर्णः, स वा एष पुरुषविधएव, तस्यपुरुष विधताम्, अन्वयं पुरुषविधः।" (प्राणही भूतोंका आयुहै ताते सर्वायुष कहते हैं, यह ही तिस पूर्वके शरीराविषे होनेवाला आत्माहै, तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयसे अन्य अन्तर आत्मा मनोमय है, तिसकरके यह पूर्ण है, सो प्रसिद्ध पुरुषके आकारवाला है, तिसकी पुरुषाकारता के पीछे पुरुषके आकारवालाहै) अर्थात् जिसकरके प्राण भूतोंका आयुहै, तिसकरके इसको सर्वका आयु कहते हैं, । जो जिसगुणवाले ब्रह्मको उपासता है सो तिस गुणवालाहोता है। यहां विद्या के फलकी प्राप्तिके हेतु अर्थ पुनः कथन है। जो यह प्राणमय है यह ही तिस पूर्वके अन्नमयका शरीरविषे होनेवाला आत्मा है॥ तिस प्रसिद्ध इस प्राणमयसे अन्य अन्तरात्मा मनोमयहै, अर्थात् संल्कप विकल्पमय वृत्तिरूप अन्तःकरण स्वरूप तो मनोमयहै सो यह (प्राणमयसे सूक्ष्महोने करके) प्राणमयके अन्तर आत्माहै। तिस मनोमय करके यह प्राणमय पूर्णहै। सो प्रसिद्ध यह मनोमय पुरुषके आकारवालाहै। सो तिस प्राणमयकी पुरुषाकारता के पीछे यह मनोमय पुरुषके आकारवालाहै (स्वरूपसेही नहीं) "तस्य यजुरेव शिरः, ऋग् दक्षिणः पक्षः, सामोत्तरःपक्षः, आदेश आत्मा, अथर्वांगिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येषश्लोकोभवति"। (तिसका यजुर्वेदही शिरहै, ऋग्वेद दक्षिण पक्षहै, सामवेद उत्तरपक्षहै, आदेश आत्माहै, अथर्वांगिरस पुच्छप्रतिष्ठा है, तिसही बिषे यह श्लोक होताहै) अर्थात् तिस मनोमयका यजुर्वेदही शिर है, अरु ऋग्वेद दक्षिणपक्षहै, सामवेद उत्तरपक्षहै, आदेश कहिये ब्राह्मणभाग आत्माहै, अरु अथर्वांगिरस कहिये अथर्व वेद पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै। अनियमित अक्षरोंकरके युक्त अन्तके पदवाला मन्त्र विशेष यजुर् कहते हैं, तिसके समान जातिवाले मन्त्रोंका वाची

यजुःशब्दहै, तिसको मनोमयका शिरपनाहै, प्रधान होनेसे । अरु जिसकरके स्वाहाकारादिक यजुर्वेदके मन्त्रोंसे हवी देते हैं, ताते यागादिकों बिषे उपकार करनेसे तिसका प्रधानपना है । अथवा सर्वठिकाने जो शिर आदिकों की कल्पना है सो कथनमात्र है । [यहां "। यजुः ।" शब्दसे बाह्यका यजुर्वेद कहते हैं । तिस यजुर्वेदको अन्तर के मनोमय के प्रति शिरपना कैसे होवेगा, यह आशंका करके कहते हैं । यहां यह अर्थहै कि यद्यपि यजुः शब्दबाह्य के शब्दोंके समूह बिषे वर्त्तता है, तथापि श्रुतिको अतिशय शंका करने के योग्य न होनेसे तिसके प्रमाण भावसे विशिष्ट मनकी वृत्ति यजुके संकेतकी विषय भूत, अरु "यजुर्वेदमधीमहे" यजुर्वेद को हम पढ़ते हैं, । अरु इस क्रमवाले अक्षर यजुर्वेदपने करके अध्ययन करने को योग्य है, इस संकल्परूप को । मनोमय का शिर। ग्रहण करने योग्य है] यहां मनकी ,स्थान, प्रयत्न,नाद, अरु स्वरकरके पूर्णपद अरु वाक्य को विषय करनेवाली तिन के संकल्परूप तिनकी भावनावाली जो वृत्तिहै, सो श्रोत्रादि करणद्वारा यजुर्वेद के संकेतसे विशिष्टहुई ,यजुर, इसप्रकार कहते हैं । ऐसे ऋग्है, अरु ऐसे सामहै । इसप्रकार मन्त्रोंको मनोवृत्तिरूप ताके होनेसे मनकी वृत्तिही आवर्त्तन करिये है, याते मानस जप संभवे है, अन्यथा विषयरूप होनेसे घटादिकोंवत् मन्त्र आवृत्ति (वारंवार जप) करने को शक्यनहीं है, याते मानसे जप संभवे नहीं, औ मन्त्रकी आवृत्ति संभवे है ॥ जो कहे कि बहुलताकरके कर्मोंबिषे अक्षरोंकी स्मृतिकी आवृत्ति से मन्त्रकी आवृत्ति होती है, सोकथनबनेनहीं क्योंकि मुख्य अर्थका असंभवहै ताते, "त्रिःप्रथमा मन्वाह त्रिरुत्तरामिति" तीनवार प्रथमकी ऋचाको पीछेकहै हैं, तीनवार पिछली ऋचाको पीछेकहैहै,। इसप्रकार ऋचाकीआवृत्ति सुनीजातीहै । तहांऋचाकी विषयताकेहुये तिसकी स्मृतिकी आवृत्तिसे मन्त्रकी आवृत्तिके कियेहुये "त्रिःप्रथमामन्वाहेति" तीनवार प्रथमकी ऋचाको पीछे कहे हैं, इसप्रकार विधान किया जो ऋचा

की आवृत्तिरूप मुख्यार्थ तिसका परित्याग होवेगा। [मन्त्रों की मनोवृत्तिरूप ताको कहके अब मनोवृत्तियों की सदा चेतन से व्याप्तहोने करकेही सिद्धिसे चेतनरूप ताको कहते हैं] ताते मनोवृत्तिरूप उपाधि करके परिच्छिन्न मनोवृत्ति विषे स्थित आदि अन्तसे रहित आत्म चैतन्य यजुःशब्दका वाच्य है,अरु आत्माके विज्ञान रूप मन्त्र हैं। ताते इसप्रकार होने से वेदोंको नित्यपने की प्राप्ति होती है, अन्यथा विषयरूप ताके हुये रूपादिकोंवत् अनित्यता होवेगी सो युक्तनहीं। अरु "सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति स मानसीन आत्मेति" जहां सर्ववेद एकत्र होते हैं सो मनविषे स्थित आत्मा है,। यह श्रुति नित्यरूप आत्मासे ऋगादि वेदोंकी एकताको कहतीहुई तिनकी नित्यताविषे अनुकूल होवेगी, अरु "ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वेनिषेदुरिति" विश्व के आधार अक्षररूप इस परमाकाश विषे विधि निषेधमय ऋचारूप वेद तादात्म्य करकेस्थितहै,यह मन्त्रका वर्णन नित्यरूप आत्मा से तिनकी एकताको दिखावे हैं। अरु यहां आदेशनाम ब्राह्मणभागका है, सो कर्त्तव्यके भेदका उपदेश करता है, ताते उसको आदेश कहते हैं। अरु अथर्वांगिरा ऋषिने देखे जो मन्त्र अरु ब्राह्मण तिनको आंगिरस कहते हैं। सो शान्तिक अरु पौष्टिक आदि प्रतिष्ठाके हेतु कर्मकी प्रधानतासे पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै। तिसही अर्थविषे अर्थात् मनोमय आत्माका प्रकाशक, यह श्लोक कहिये मन्त्र (प्रमाण) होता है॥ (हे सौम्य ! जैसे घटके भीतर तिसही के आकार पूर्णतासे व्याप्त अरु घट के धर्मादिकों से पृथक् वायु रहता है, अरु तिस वायु से सूक्ष्म होने से वायुके भीतर अरु घटान्तर वायुकेही आकार अरु वायुके धर्मादिकों से रहित पूर्णता से आकाश होता है, तैसेही इस अन्नमय कोश के भीतर तिससे सूक्ष्म अरु नख शिख पर्यन्त तिसही के आकार अरु तिसके धर्मादिकों से रहित वायुरूप प्राणमय कोश है, तिस प्राणमय से सूक्ष्म होनेसे प्राणमयके भीतर अरु नख शिख पर्यन्त

पूर्णता से व्याप्त आकाश भूतके वा पंचभूतों के समष्टि रजोगुणात्मक मनोमय कोश है "मनो वै अन्तराकाशः" तहां ,आकाशके रजोगुणके श्रोत्र,वायुके रजोगुणकीत्वक्,अग्निके रजोगुण की चक्षु, जल के रजोगुणकी रसना,पृथिवी के रजोगुणकी घ्राण, इन पांचों ज्ञानेन्द्रियों करके युक्त जो संकल्प विकल्पात्मक मन तिसको मनोमय कोश कहते हैं सो प्राणमयसे सूक्ष्म अरु भीतर होने से तिसके आकार हुआ प्राणमय का आत्मा है, अरु संकल्प विकल्पका करना इसका स्वभाव धर्म है,अरु नानाप्रकारके मनोराज्य इसकी क्रिया है, चंचलता जड़ता अरु विषयोंकी ओर गिरना यह इसमें स्वाभाविक दोष हैं। ऐसा जो मनोमय कोश है सो आत्मा नहीं क्योंकि काम क्रोधादि वृत्तियों से युक्त नियम रहित स्वभाववाला है ताते, अरु "घट द्रष्टा घटाद्भिन्नः" इस न्यायसे इस मनोमय का ज्ञाता साक्षी चैतन्य आत्मा पृथक् है सो मनोमय का साक्षित्व मेरे बिषे होने से मैं मनोमय कोश न होके इसके जाननेवाला चैतन्य आत्मा इससे भिन्न मैंहौं, यह जड़ विकारीमनोमय कोशमय, नहीं अरु यह मेरा नहीं। इस प्रकार मनोमय कोशके पृथक् साक्षीरूप अपुनको यथार्थ अनुभव करके निश्चय करना। इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

अथ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! [यहां यह अर्थहै कि ब्रह्मकोवाणी मन आदिकों का विषयपना संभवे नहीं, क्योंकि अपनेस्वरूपबिषे वर्त्तनेका बिरोधहै ताते, एतदर्थ वाणी अरु मन करके विशिष्ट मनोमय से मन सहित वाणियां निवृत्त होती हैं] "यतोवाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसासह, आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, नबिभेति कदाचनेति, तस्यैष एव शारीर आत्मा, यः पूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्मान्मनो मयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः" (जिससे मन सहित वाणियां अप्राप्य होके निवर्त्त होती हैं, ब्रह्मको जाननेवाला कदाचित् भयको प्राप्त होता

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य॥ तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात् अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैषपूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुष विधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मामहः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति २८॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

नहीं, जो यह मनोमय है यहही तिस पूर्वलेका शरीरबिषे स्थित आत्मा है। तिस प्रसिद्ध इस मनोमयसे अन्य अन्तरात्मा विज्ञानमय है ? अर्थात् जिससे मन सहित वाणीआदि इन्द्रियां प्राप्त न होके निवर्त्त होती हैं, अरु ब्रह्मको (सम्यक् प्रकार) जाननेवाला (विद्वान्) कदाचित् भी भयको प्राप्तहोता नहीं, अरु जो यह मनोमय है सोई तिस पूर्वले प्राणमय का शरीर विषे स्थित आत्मा है, तिस प्रसिद्ध इस मनोमयसे अन्य अन्तरात्मा विज्ञानमय है। अरु मनोमयजो है सो वेदरूप कहाहै, अरु वेदके अर्थको (यथार्थ) विषय करनेवाली जो निश्चयात्मिका बुद्धि तिसको विज्ञान कहतेहैं, सो निश्चयरूप विज्ञान अन्तःकरणका धर्महै। अरु तिसरूपहुआ प्रमाणस्वरूप निश्चय रूप ज्ञानोंसे निर्वाहकिया जो आत्मा सो विज्ञानमय है। अरु जिसकरके प्रमाणके ज्ञानपूर्वक यज्ञादिक करते हैं, अरु तिस विज्ञानको जो यज्ञादिकोंकी हेतुता है सोअग्रिम मन्त्रकरकेकहेंगे इस प्रकार कहा जो विज्ञानमयहै "(तेनैषपूर्णः, सवाएष पुरुष विध एव, तस्य पुरुषविधताम्, अन्वयं पुरुषविधः") (तिसकरके यहपूर्णहै, सो प्रसिद्धयह पुरुषकेआकारवालाही है, तिसकी पुरुषाकारताके पीछे यह पुरुषाकारवाला होता है) अर्थात् तिसकरके

यह मनोमयपूर्णहै । जैसे शब्दात्मक ऋगादिवेद अपने अर्थों करके पूर्णहै, तैसेवेदरूप मनोमयअपने अर्थरूप विज्ञानमयकरके पूर्णहै, अरुजैसे वेदका अर्थ ज्ञानवेदकेभीतर होता है, तैसेअर्थ ज्ञानरूप विज्ञानमय वेदरूपमनोमयकेभीतरहै । अरु सोप्रसिद्धयह विज्ञानमयपुरुषके आकारवालाही है । अरु तिसमनोमयकी पुरुषाकारता केपीछे यह विज्ञानमय पुरुषके आकारवाला होता है "तस्यश्रद्धैवशिरः, ऋतं दक्षिणः पक्षः, सत्यमुत्तरः पक्षः, योग आत्मा, महः पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति"। (तिसकाश्रद्धाही शिरहै, अरु तिसका ऋत दक्षिण पक्ष है, अरु सत्य उत्तरपक्ष है, योग आत्मा है, महत्पना पुच्छ प्रतिष्ठा है, तिसहीविषे यह श्लोक होताहै), अर्थात् तिस विज्ञानमय का श्रद्धाही शिरहै, क्योंकि जिसकरके निश्चयरूप विज्ञानवाले पुरुषको करनेयोग्य अर्थोंविषे पूर्वश्रद्धा संभवे है, इस करके सो सर्व कर्त्तव्योंकेमध्य प्रथम (मुख) होनेसे शिरवत्शिर है। अरु तिसका ऋतनाम दक्षिणपक्ष है, अरु सत्यनाम उत्तरपक्ष है, अरु योगजो चित्तकी वृत्तिका निरोधरूप एकाग्रता सो आत्मावत् (विज्ञानमय का) आत्मा है, अर्थात् जिस करके समाधानचित्तवाले युक्त पुरुष को श्रद्धादिक जो हैं सो अंगोंवत् यथार्थ निश्चयविषे समर्थहोते हैं, ताते चित्तका समाधानरूप योग विज्ञानमयका आत्मा है। अरु प्रथम उत्पन्नहुआ जो महत्पना सो पुच्छरूप प्रतिष्ठा है "महद्यक्षं प्रथमजमिति" महान् यक्ष प्रथम जन्यहै, । इस अन्य श्रुतिके प्रमाणसेसो महत्पना प्रथम उत्पन्नहुआ है यह कारण होनेसे महत्पना पुच्छ प्रतिष्ठा है। जिस करके कारण जो है सो कार्य्यों की प्रतिष्ठा है, जैसे वृक्ष अरु वल्लियों की प्रतिष्ठा कहिये आधार पृथ्वी है। तैसेही सर्व बुद्धिरूप विज्ञानी का महत्पना कारणहै। तिस हेतुकरके सो महत्तत्त्व तिसविज्ञानमयरूप आत्मा की प्रतिष्ठा है । तिसही अर्थविषे अर्थात् विज्ञानमयरूप आत्माका बोधक प्रकाशक यहश्लोक कहिये मन्त्र होताहै । जैसे

ब्राह्मणविषे उक्त अन्नमयादिकों के प्रकाशक श्लोक हैं तैसे। इसप्रकार सर्वमयको भी विज्ञानका कर्त्तापना है॥ (हे सौम्य!) 'जैसे मृन्मय घटके अन्तर तिसही के आकार अरु तिससे भिन्न पूर्णतासे वायुहोताहै, अरु तिसवायुके अन्तर तिसहीके आकार अरु तिससे पृथक् आकाश होता है, अरु तिस आकाशके अन्तर अरु तिसहीके आकार तिससे पृथक् तिसका प्रकाशक सूक्ष्मतेज होता है। तैसे अन्नमयकोशरूप घटकेअन्तर तिसहीके आकार तिसके धर्म्मादिकों से पृथक् पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा प्राणमय है, तिस प्राणमयके अन्तर प्राणमय से सूक्ष्म प्राणमय के आकार अरु तिसके धर्मादिकों से पृथक् पूर्णता से व्याप्त प्राणमयका आत्मा मनोमय कोश है। अरु तिस मनोमयके अन्तर तिससे सूक्ष्म तिसही के आकार तिसके धर्मादिकों से पृथक् पूर्णता से व्याप्त मनोमय का आत्मा विज्ञानमय है। तहां चक्षुरादि पांच ज्ञानेन्द्रियां अरु विज्ञानवती निश्चयात्मक बुद्धिमिलके विज्ञानमय कोश हुआ है सो मनोमय से सूक्ष्म अरु तिसके अन्तर होने से तिसका आत्मा है, परन्तु साक्षी आत्मा जो विज्ञानके भावाभाव का प्रकाशक है, तिसकी अपेक्षा विज्ञानमय बुद्धि जड़ है, अरु सुषुप्तिविषे चिदाभास सहित वा चिदाभाससे पृथक् हुई अपनेकारण अविद्या में लय होती है, अरु पुनः जाग्रत्को पाय चिदाभास करके युक्तहुई नखशिख पर्यन्त व्याप्त होतीहै अरु जिस अंगमें जहां कहीं दुःख वा सुख होताहै तहांहीं तिसको अनुभव करती है परन्तु साक्षी आत्माके आभास करके युक्तहुई करती है केवल स्वरूपसेही नहीं, ऐसा जो विज्ञानमय कोश है तिसके भावाभाव धर्म कर्मादिकों के प्रकाशक साक्षी आत्मा अपुन हैं सो अपुन विज्ञानमयकोश न होके तिसकेज्ञाता तिससे पृथक्ही है, तातें विज्ञानमय कोश अपुननहीं अरु सो अपनानहींइसप्रकार विज्ञानमयकोशसे पृथक्सर्वकेसाक्षी अपने आपकोयथार्थअनुभवकरकेनिश्चयकरना॥ इतिचतुर्थोऽनुवाकः ४॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते । कर्माणि तनुतेऽपिच । विज्ञानं देवाः सर्वे । ब्रह्मज्येष्ठमुपासते । विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद । तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति । शरीरे पाप्मनो हित्वा सर्व्वान् कामान् समश्नुत । इति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य ॥ तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तरआत्माऽऽनन्दमयः । तेनैष पूर्णः । सवा एष पुरुषविध एव । तस्य पुरुषविधताम् । अन्वयं पुरुषविधः । तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा । तदप्येष श्लोको भवति ॥ २९ ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! "विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपिच, विज्ञानं देवाःसर्वे, ब्रह्मज्येष्ठमुपासते, विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद, तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति, शरीरेपाप्मनो हित्वा सर्व्वान् कामान् समश्नुत इति "। "विज्ञान यज्ञको विस्तारताहै कर्मोंको विस्तारताहै, सर्व देवता विज्ञानरूप ज्येष्ठ ब्रह्मको उपासते हैं, विज्ञानरूप ब्रह्मको जब जानता है, तिस करके जब प्रमाद को पावता नहीं, शरीरविषे पापों को छोड़के सर्व भोगोंको भोगता है"; अर्थात् विज्ञानमय यज्ञोंको विस्तार करता है। अर्थात् जिसकरके विज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) वान् पुरुष श्रद्धा आदिक अंगोंपूर्वक यज्ञोंको करता है, तिसही करके विज्ञानको यज्ञोंका कर्त्तापना है । अरु कर्मों को भी विस्तार करता है । अर्थात् जिस करके सर्व विज्ञानकाकर्त्तापनाहै तिसही से विज्ञानमय रूप आत्मा ब्रह्म है, यह कथन युक्तही है । किंवा सर्व इन्द्रियादिकदेवता विज्ञानरूप ज्येष्ठ (प्रथम उत्पन्न) ब्रह्मको उपासते हैं अर्थात् ध्यावते हैं, क्योंकि सर्व से प्रथम उत्पन्नहुआ है ताते, अथवा सर्व वृत्तियों को तिस विज्ञान के पूर्वक होने से विज्ञानको प्रथम उत्पन्नहुआ कहते हैं । अरु जिस

करके उस विज्ञानमय ब्रह्मविषे अभिमान करके देवता उपासते हैं, तिस करके सो देवता महद्ब्रह्मकी उपासना से ज्ञान ऐश्वर्यवाले होते हैं । तिस विज्ञानरूप ब्रह्मको जब जानता है, अरु केवल जाननाही है ऐसा नहीं, किन्तु [बाहिरके अनात्माबिषेही आत्मभावना के होनेसे विज्ञानरूप ब्रह्म बिषे आत्माकी भावना से हुआ जो प्रमाद है, तिसकी निवृत्तिके अर्थ " तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति " तिससे जब प्रमादको प्राप्त होता नहीं, । अर्थात् जब अन्नमयादिकों बिषे आत्मभावको त्यागके केवल विज्ञानमयब्रह्म बिषे आत्मभाव की भावना करताहुआ स्थितहोवे, इस प्रकार कहते हैं] तिस विज्ञानमय ब्रह्मसे जब प्रमादको पावता नहीं तब शरीर बिषे पापों को त्यागके सर्व भोगों को भोगता है । अर्थात् सर्वपाप शरीरके अभिमानरूप निमित्तवाले हैं, अरु तिनका छत्रके नाशहुये छायाके नाशवत् विज्ञानमय ब्रह्मबिषे आत्माभिमान से शरीर के अभिमानरूप निमित्त के नाशहुये नाश सम्भवे है, ताते शरीर के अभिमानरूप निमित्तवाले अरु शरीर बिषे होनेवाले सर्वपापोंको शरीरबिषेही त्याग के विज्ञानमयब्रह्म स्वरूपकोप्राप्तहुआ तिसबिषेस्थित सर्वभोगोंको विज्ञानमयस्वरूप सेहीसम्यक्प्रकार भोगताहै । अरु"तस्यैषएवशारीरआत्मा,यःपूर्वस्य, तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयः, तेनैषपूर्णः, सवाएष पुरुषविध एव, तस्य पुरुष विधताम्, अन्वयं, पुरुषविधः" (यहही तिस पूर्वलेका शरीरबिषे होनेवाला आत्माहै,तिसप्रसिद्ध इस विज्ञानमयसे अन्य अन्तरात्माआनन्दमयहै, तिसकरके यह पूर्णहै, सो प्रसिद्ध यह (आनन्दमय)पुरुषके आकारवाला ही है, तिसकी पुरुषाकारताके पीछे यह पुरुष के आकारवाला है) अर्थात् जो यह विज्ञानमयहै यहही तिसपूर्वले मनोमयका शरीरी कहिये मनोमयबिषे होनेवाला आत्माहै तिस प्रसिद्ध इसविज्ञानमयसे अन्य अन्तरात्मा आनन्दमयहै।[आनन्दमयकोश परमात्मा है, ऐसा वृत्तिकारोंने कहाहै तिनके निषेधसे

व्याख्यान करतेहैं] मुख्यतासे अरु विकारकेवाची , मय, शब्द करके यह आनन्दमय कार्यरूपसे प्रतीतिवाला है । अरु जिस करके अन्नमयादिक कार्यरूप भौतिक मुख्यता को यहां पावते हैं, अरु तिस मुख्यताको प्राप्तहुआ आनन्दमयहै, अरु यहां जो,मय, शब्द है सो अन्नमयवत् विकाररूप अर्थविषे देखा है । ताते अरु संक्रमण से, अर्थात् इस आनन्दमय को लङ्घिके जानेसे, यह आनन्दमय कार्यरूपही प्रतीति करने योग्य है। अरु "आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य " आनन्दमयरूप आत्माको लङ्घिके जाता है, । इस प्रकार आगे षष्ठ अनुवाकविषे कहेंगे । अरु कार्यरूप अनात्माको लङ्घना देखाहै। जैसे"अन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति" अन्नमय आत्मा को लङ्घिके जाताहै, । इस वाक्य बिषे उल्लंघन करनेरूप क्रियाका विषय होनेकरके अन्नमयरूप आत्माकोश्रवण करतेहैं, तैसे "आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति" आनन्दमयरूप आत्माको लङ्घिके जाताहै, । इसवाक्यविषे उल्लंघनरूप क्रियाका विषय होनेकरके आनन्दमयरूप आत्माको श्रवणकरतेहैं।एतदर्थ यह आनन्दमय कार्यरूपही प्रतीति करनेके योग्यहै । अरु आत्मा काही उल्लंघन करना होता नहीं, क्योंकि अधिकार का विरोध है ताते अरु आत्माका उल्लंघन असम्भवहै ताते अरुआत्माकरके ही आत्माका उल्लंघन सम्भवै नहीं, क्योंकि स्वस्वरूपविषे भेदका अभाव है ताते । अरु तिस उल्लंघन करनेवाले का आत्मरूपही ब्रह्म है । [आनन्दमयके परमात्मभावके असम्भव बिषे अन्य हेतुओंको भी कहते हैं] अरु तिसब्रह्मको शिर आदिक अवयवोंकी कल्पनाका असंभवहै ताते। अरु उक्त लक्षणवाले आकाशादिकों के कारण अरु कार्यों बिषे अप्राप्त ब्रह्मविषे शिर आदिक अवयव रूपकी कल्पना सम्भवै नहीं, क्योंकि "अदृश्येऽनात्म्येऽनिलयनेऽनिरुक्ते, स्थूलमनणुनेति, नेत्यादि " अदृश्य, अशरीर, अवाच्य, अनाधार, इस ब्रह्मविषे, अरु स्थूल नहीं, अणु नहीं, ऐसे नहीं, ऐसे नहीं, । इत्यादि प्रपञ्चके निषधकी श्रुतियोंके प्रमाणसे [जब

आनन्दमयके परमात्मभावके कहने की इच्छाहोय, तब मन्त्र करके तिसहीके असद्भावकी आशंका कहनेको योग्यहै। परन्तु तिसका असम्भव है ताते, आनन्दमय जो है सो परमात्मभाव करके प्राप्तहोवे नहीं, इसप्रकार कहते हैं] अरु मन्त्रके उदाहरण का असम्भवहै ताते। अरु जिस करके प्रियवृत्तिरूप शिरआदिक अवयव करके विशिष्ट प्रत्यक्ष अनुभूयमान आनन्दमय आत्मा रूप ब्रह्मविषे, सो ब्रह्म नहीं है ऐसी आशंकाका अभाव है ताते "असद्ब्रह्मेति वेदचेत् असन्नेवभवति" जब असद्ब्रह्महै, ऐसा जानता है तब असत्ही होता है,। यह मन्त्रका उदाहरण यहां सम्भवे है। अरु "ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" ब्रह्मपुच्छरूप प्रतिष्ठा है,। इसप्रकार आनन्दमय कोश से भिन्न करके जो ब्रह्मका प्रतिष्ठा (आधार)पनाकरके ग्रहणहै सोअघटित होवेगा,एतदर्थकार्योंविषे प्राप्तहुआ जो यह आनन्दमय सो परमात्मरूप आनन्दनहींहै।इस प्रकार विद्या अरु कर्मका फलरूप, तिस परमात्मरूप आनन्दका विकार (कार्य) आनन्दमयहै। अरु [विशिष्ट वस्तुको विशेषण का कार्यहोनेसे "अहंसुखी" (मैं सुखीहूं) इसप्रकार प्रतीयमान हुआभोक्ता आनन्दमयहै, ऐसेकहा। तिस आनन्दमयका विज्ञान मयसे आन्तरपना कैसेहै, यहां यह अर्थहै कि कर्त्तापनेकी अपेक्षा से भोक्तापनेका पश्चात् होनेपना प्रसिद्धही श्रुतिने कहाहै] सो आनन्दमय, विज्ञानमयसे अन्तरहै, क्योंकि यज्ञादिकोंके हेतु विज्ञानमयके अन्तरपनेकी श्रुतिसे कर्त्ताकी अपेक्षा भोक्ताको अन्तरपना प्रसिद्ध है, [अब इसहीको स्पष्ट करते हैं। यहां यह अर्थहै कि आनन्दके साधक शरीरादिक से साध्य आनन्दकरके विशिष्ट आनन्दमय अत्यन्त आन्तर सिद्धहोताहै। किंवा प्रिय अरु प्रिय के साधनका उद्देशकरके कर्त्ता जो विज्ञानमयहै सो उपासना अरु कर्मका अनुष्ठान करताहै। ताते उद्देश के योग्य होनेसे इस आनन्दमयका अन्तरपना सिद्धहै, इसप्रकार कहते हैं] जिसकरके ज्ञान अरु कर्मका जो फलहै सो भोक्ताके अर्थ होनेसे अत्यन्त आ-

न्तर होताहै, एतदर्थ आनन्दमयरूप आत्मापूर्वले अन्नमयादिकों से अत्यन्त आन्तर है । अरु जिसकरके विद्या अरु कर्मको प्रिय आदिक फलके अर्थ क्रियमाण विद्या अरु कर्म्म हैं, ताते फलरूप प्रिय आदिक वृत्तियोंको आत्माके सम्बन्धसे विज्ञानमयको अन्तरपना सम्भवेहै । अरु जिसकरके स्वप्नविषे प्रियआदिकोंकीवासना करके निर्वाह किया जो आनन्दमय सो विज्ञानमय के आश्रित देखिये है, ताते तिस आनन्दमयको मुख्य आत्मापना है नहीं । इसप्रकार कथन किया जो आनन्दमय रूप आत्मा तिस करके यह विज्ञानमय पूर्ण है । सो प्रसिद्ध यह आनन्दमय पुरुषके आकारवालाही है । अरु सो तिसविज्ञानमयकी पुरुषाकारताके पीछे यह आनन्दमय पुरुषाकारवालाहै (स्वरूपसेही नहीं) अरु "तस्य प्रियमेव शिरः, मोदो दक्षिणः पक्षः, प्रमोद उत्तरः पक्षः, आनन्द आत्मा, ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा, तदप्येष श्लोको भवति ।" "तिसका प्रियही शिरहै, मोद दक्षिणपक्ष है, प्रमोद उत्तर पक्षहै, आनन्द आत्माहै, ब्रह्म पुच्छरूप प्रतिष्ठाहै," अर्थात् तिस आनन्दमयरूप आत्माका, इष्ट पुत्रादिकोंके दर्शनसे जन्य जो प्रियवृत्ति सोई शिरवत् शिरहै, मुख्य होनेसे । अरु प्रियवस्तुके लाभरूप निमित्तसे होता जो है हर्ष तिसको मोद कहते हैं,सो मोद (आनन्दमयका) दक्षिणपक्ष है, अरु सोई हर्षरूप मोद अतिशयहुआ प्रमोद कहा जाता है, सो प्रमोद आनन्दमयका उत्तर (वाम) पक्षहै । अरु प्रिय आदिक सुखके अवयवोंके मध्य सामान्य सुखरूप जो आनन्दहै सो (आनन्दमयका) आत्माहै । अरु तिन प्रिय आदिकों विषे अनुस्यूत होनेसे, ब्रह्मको आनन्द अरु पर (सर्वोत्कृष्ट) कहते हैं । अरु जिसकरके सोब्रह्म, शुभ कर्मोंकरके पुत्र मित्रादि विषय विशेषरूप उपाधि के निकट स्थितहुये अज्ञानकरके आवृत्त अरु प्रसन्न वा एकाग्रहुई जो अन्तःकरणकी वृत्तिविशेष तिसविषे प्रकटहोवे है, ताते सो विषय सुख है, इसप्रकार लोकविषे प्रसिद्ध है । तिस वृत्ति विशेषके कारण कर्मको अस्थिर होनेसे तिसविषे

सुखको क्षणिकपनाहै। सो जो अन्तःकरण अज्ञानके नाशक, तप, विद्या, ब्रह्मचर्य श्रद्धा, करके यावत् निर्मलभावको पावता नहीं तावत् अन्तरमुख अरु प्रसन्न वा एकाग्रहुये अन्तःकरणकी वृत्ति विशेषविषे आनन्द विशेषहोताहै। सो [ब्रह्मकी आनन्द स्वभावता बिषेहीक्या प्रमाणहै, तहांकहतेहैं] आगे सप्तम अनुवाकविषे कहेंगे "रसौवै सः, रसꣳह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति, एष ह्येवानन्दयाति" "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति" रसहीसोहै, जिससे यह रसकोही पायके आनन्दीहोवे है। ऐसे, अरु इसही आनन्दकी मात्रा कहिये किणका के ताईं अन्यभूत उपजीविकाको करेहैं। अर्थात् ब्रह्मानन्दके लेशको पायके अन्यभूत अपने जीवनको करतेहैं,। इसअन्य श्रुतिके प्रमाणसे [अन्तःकरण की वृत्ति के उत्कर्षसेही आनन्दका सातिशयपना है, इसविषे में लिंग (चिह्न) कहते हैं, यहां यह अर्थहै कि जब किसी एक विषय से जन्य होनेकरके आनन्दका उत्कर्ष होताहै, तब निष्कामपुरुष को किसी विषयके उपभोग के असम्भवसे आनन्दके उत्कर्षका प्रसंग नहीं होवेगा, परन्तु आत्मस्वभावरूपही आनन्दके आविर्भाव करनेवाले अन्तःकरणकी शुद्धिका उत्कर्ष होताहै, इसप्रकार होनेसे निष्कामता का उत्कर्ष संभवे है] इसप्रकार हुये इच्छाकी निवृत्तिके अधिकताकी अपेक्षासे आनन्द का शतगुणा अधिक उत्कर्ष आगे कहेंगे। ऐसे [उक्तप्रकार विषयानन्दकी अतिशयताके हुये तिसकरके विशिष्ट आनन्दमयका अब्रह्मपना सिद्धहोवे है, क्योंकि सातिशय होनेकरके प्रतिशरीरके ताईं भिन्न२ है ताते। अरुब्रह्म तो तिसके अध्यासका अधिष्ठान अद्वैतरूपहै, इस प्रकार कहतेहैं। यहां "एतस्मिन्नर्थे" इस अर्थविषे,। यापदका आनन्दमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाश करनेमें तत्पर अर्थविषे। यह अर्थ है।] हुये सातिशय करके युक्त आनन्दमयरूप आत्माका परमार्थरूपब्रह्मके विज्ञानकी अपेक्षासे जोप्रसङ्गविषे प्राप्तहुआ, सत्य, ज्ञान, आनन्दरूप परब्रह्मही है, अरु जिसकी प्राप्तिके अर्थ अन्नम-

यादिक पञ्चकोशको आरम्भ कियेहैं। अरु जो उन कोशोंसे भीतर है। अरु जिसकरके सो सर्वकोश आत्मावाले होते हैं, सो ब्रह्म पुच्छरूपहै अरु प्रतिष्ठाहै,आनन्दमयकी एकताका अवसानहोने से। इसप्रकार अविद्या कल्पितद्वैतका अवसानरूप जो अद्वैतब्रह्म सो प्रतिष्ठारूप पुच्छहै। तिसही अर्थविषे, अर्थात् आनन्दमयकी प्रतिष्ठारूप ब्रह्मके प्रकाशनेविषे तत्पर, यह श्लोक होताहै २९॥

हे सौम्य! जैसे घटके भीतर घटसे सूक्ष्मघटके आकारही पूर्णता से वायुहै, अरु तिस वायुसे सूक्ष्मवायुके भीतरवायुकेही आकार पूर्णतासे आकाशहै, अरु तिसआकाशके भीतर आकाश से सूक्ष्म तिसहीके आकार पूर्णतासे प्रकाशहै, अरु तिस प्रकाशके भीतर अरु सूक्ष्म तिसकेही आकार पूर्णतासे प्रकाशकत्वहै। यह दृष्टांत एकके अन्तर दूसरेकी तदाकार अरु सूक्ष्मतासेस्थिति देखावनेके अर्थ कल्पितहै। हे सौम्य! दृष्टान्त प्रमाणही इस अन्नमयकोशके भीतर तिससे सूक्ष्म तिसके आकार तिसकी अपेक्षा चैतन्य तिसका आत्मा पूर्णतासे स्थित प्राणमयकोश है। तिसही प्रकार प्राणमयके भीतर पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा मनोमय कोश है। अरु तिस मनोमयके भीतर तिसके आकार पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा विज्ञानमय कोश है, तिस विज्ञानमयके भीतर तिससे सूक्ष्म अरु पृथक् तिसहीके आकार पूर्णतासे व्याप्त तिसका आत्मा आनन्दमय कोशहै। सो आनन्दमयकोश बादल आदिक पदार्थोंवत् कदाचित् प्रकट होनेवालाहै, अर्थात् जैसे बादल-सूक्ष्म सामान्यरूप करके अदृश्यहुआ परमाणु रूपसे आकाश बिषे रहे है सो जब अपने विशेषरूपसे प्रकट होनेका समयपावे है तब प्रकटहोय लोकोंबिषे प्रत्यक्ष भासेहै, तैसे आनन्दमयकोश अन्य कोशों से सूक्ष्महुआ अपने सामान्यरूप से विज्ञानमय के अन्तर व्याप्तहै सो जब अपने इष्ट पुत्रादि विषय वस्तुको देखता है तब अपने प्रिय आदि अङ्गोंकी विशेषतासे लोक विषे प्रकट भासताहै,एतदर्थ आनन्दमयको कचित् होनेवाला कहते हैं,तातें

असन्नेव भवति । असद्ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः ॥ उता-विद्वानमुं लोकंप्रेत्य । कश्चन गच्छति ३ ॥ अहोविद्वा-नमुं लोकं प्रेत्य । कश्चित्समश्नुता ३ ॥ उ । सोऽका-मयत बहुस्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स त-पस्तप्त्वा । इदꣳसर्वमसृजत । यदिदं किञ्च । तत् सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभ-वत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च । विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च । सत्यमभव-त् । यदिदंकिञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येषश्लोको भवति ३० ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

छणिक है, अरु साक्षीआत्मा आनन्दमयकी क्षणिकता आदिकों का ज्ञाता उसके पृथक् है अरु आनन्दमयका कारण आधार अ-धिष्ठान है उसहीके आश्रय आनन्दमयके आत्मापनेकी कल्पना होती है। अरु सो आनन्दमयके भावाभावका साक्षित्व अपनेविषे पायाजाता है ताते आनन्दमयसे पृथक् तिसके साक्षी चैतन्य प-रमात्मा अपुन हैं, अपुन आनन्दमयकोश नहीं अरु सो अपना नहीं। इसप्रकार अपने आपको आनन्दमय से पृथक् यथार्थ अ-नुभवकर निश्चय करना ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

अथ षष्ठोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! "असन्नेव भवति, असद्ब्रह्मेति वेद चेत्, अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद, सन्तमेनं ततो विदुरिति" (जो पुरुष ब्रह्म असत् है इसप्रकार जब जानताहै, तबसो असत्‌ही होताहै, जब ब्रह्महै ऐसे जानता है, इस सत्‌रूप को जानते हैं तिस करके सो अ-न्यों को ब्रह्मवत् जानने योग्य होता है) अर्थात् जो पुरुष ब्रह्म

असत् (कहिये अविद्यमान, है इसप्रकार जानताहै तब सो 'अ-सत्के तुल्यही, असत् होताहै । ब्रह्म तो जैसा कुछ है तैसा हैही परन्तु जो उसको असत् जानता है सो अपने आपको असत् करता है क्योंकि वास्तव करके वो ब्रह्म से अभिन्न है ताते। अर्थात् जैसे असत् पदार्थ पुरुषार्थ का सम्बन्धी होता नहीं, इस प्रकार सो (ब्रह्म) पुरुषार्थ का सम्बन्धी होता है । अरु जब तिस (असत्से) विपरीत जो सर्वविकल्पों का आश्रय सर्व वृत्तियों का बीज अरु सर्व प्रपञ्चातीत सो ब्रह्म है इसप्रकार जानताहै । पुनः तहां कौनसी शंका है, तिस अस्तित्वभावविषे ब्रह्मको व्यवहार से रहितपना है इसप्रकार हम कहते हैं । अरु जिसकरके वाचा-रंभणमात्रव्यवहारके विषयविषे अस्तिपनेके भावकरकेयुक्त बुद्धि प्राप्त होती है, अरु तिसकरके विपरीत व्यवहार से रहित वस्तु विषे नास्तिपना भी प्राप्त होताहै । जैसे घटादिक व्यवहार का विषय होनेकरके प्राप्तहुई वस्तु सत्है, अरु तिससे विपरीत वस्तु असत् है, यह लोकविषे प्रसिद्धहै, इसप्रकार यहांभी तिसकेतुल्य (व्यवहारका अविषय) होने करके ब्रह्मके नास्तिपने की शंका होती है । ताते "(अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेदेति") ब्रह्म है, इसप्रकार जब जानताहै, । इसप्रकार आशंका सहित वचन कहतेहैं "(तद-स्तीति") सो ब्रह्म है, इसप्रकार जाननेवाले पुरुषको क्या फल प्राप्त होताहै, तहां कहतेहैं । इस ऐसे जाननेवाले पुरुषको विद्य-मान ब्रह्मरूप करके परमार्थ सत्रूपको प्राप्तहुआ ब्रह्मवेत्ता जा-नते हैं । तिस (अस्तिभावके ज्ञान) करके सो (ब्रह्मवेत्ता) अन्यों को ब्रह्मवत् जानने योग्य होता है, यह अर्थ वा फल है ॥ अथवा, जो पुरुष ब्रह्म नहीं है, ऐसा मानता है, सो वर्णाश्रमादिकों की व्यवस्थारूप सर्वही सन्मार्ग के नास्तिकपने को प्राप्त होता है, क्योंकि तिस सन्मार्ग का ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ होना है (अर्थात् जिसके निश्चयमें ब्रह्म नहीं है तिसके निश्चय में वर्णाश्रम अरु तदाश्रित धर्म कुछभी नहीं क्योंकि वर्णाश्रम के आश्रित धर्मका

जो निष्कामता से अनुष्ठान करना है सो अन्तःकरणकी शुद्धि द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ है, सो प्राप्तहोने योग्यब्रह्म जबहैही नहीं तब वर्णाश्रम अरु तिनके धर्मके अनुष्ठानकी कल्पना व्यर्थही है, इसप्रकार ब्रह्मको न माननेवाले पुरुषको वर्णाश्रम के धर्म्मोंविषे नास्तिकभावकी प्राप्ति होती है। इसकरके सो नास्तिक पुरुष लोकविषे असत्असाधु कहेजातेहैं,। तव सो श्रद्धावान् होनेकरके तिस ब्रह्मकी प्राप्तिकेहेतु वर्णाश्रमादिकोंकी व्यवस्थारूप सन्मार्ग को ज्योंकात्यों प्राप्तहोताहै। अरु जिसकरके इसप्रकारहै,तिसही करके इसको साधुपुरुष सन्मार्गविषे स्थित जानते हैं। एतदर्थ ब्रह्म है इसप्रकार की प्रतीति करनेको योग्य है, यह वाक्यार्थ है "। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य, अथातोऽनुप्रश्नाः, ॥ उताविद्वानमुंलोकं प्रेत्य, कश्चन गच्छति ३, अहो विद्वानमुंलोकं प्रेत्य कश्चित्समश्नुता ३ उ "। (जो यहही तिस पूर्वलेका शरीरविषे होनेवाला आत्माहै, याते अनन्तर पीछे प्रश्नहै, कोई एक अविद्वान् भी मरणको प्राप्त होके इस लोकको प्राप्तहोताहै, कोई एक विद्वान् मरणको पायके इस लोकको प्राप्त होता है) अर्थात् जो यह आनन्दमय है यहही तिस अपने पूर्वले विज्ञानमय शरीर (विज्ञानमय) विषे होनेवाला आत्माहै [आनन्दमय का प्रकाशक यह श्लोक है, इसप्रकार कईएक कहते हैं, तिनके अर्थ यहां कहते हैं] तिसके प्रति शंका नहीं है, क्योंकि पूर्वली वस्तुका सद्भाव होनेसे अन्तकी वस्तुका निषेध होतानहीं, परन्तु ब्रह्म को सर्व विशेष वाला होनेकरके प्रत्यक्षता है ताते। [यहां यह अर्थ है कि सर्वको साधारण होनेसे ब्रह्मके व्यवहार करनेकी योग्यता सर्वके अर्थ होवेगी, अरु देखते नहीं, एतदर्थभी नास्तिकपनेकी आशंका होती है] अरु सर्वके अर्थ साधारण होनेसेब्रह्म के नास्तिकपने की आशंका युक्त है। अरु जिसकरके इसप्रकार है याते अनन्तर शिष्य के श्रवण करने को आचार्यकी उक्तिके पीछे प्रश्न है। जिस करके ब्रह्म आकाशादिकों का अर्थात् भूतों

सहित सर्वजीवोंका कारण होनेसे विद्वान् अरु अविद्वान्को साधारण (समान) है, ताते अविद्वान्कोभी ब्रह्मकीप्राप्तिकी आशंका करतेहैं। (अर्थात् ब्रह्मसर्वजीवादिकोंका कारणहोनेसेसर्वकोसमान हीप्राप्तहै तब अविद्वान्कोभी तिसकी प्राप्तिहोतीहोगी) कोईएक अविद्वान्भी यहांसेमरणको पायके इस परमात्मरूप लोकको पावताहै, किंवा नहीं पावताहै, यहां .किंवा नहीं प्राप्त होताहै,ऐसा जो द्वितीय प्रश्न है सो "(अनुप्रश्नाः)" पीछे प्रश्न हैं, । इसबहुवचनके होनेसे जानना । अरु अब विद्वान्के अर्थ अन्य दो प्रश्न कहते हैं । जब अविद्वान् सामान्य कारणरूप भी ब्रह्मको नहीं प्राप्तहोताहै, तब विद्वान्कोभी ब्रह्मके अप्राप्तहोनेकी आशंका करते हैं । इस करके उस विद्वान् के प्रति यह प्रश्न है । कोई एक भी विद्वान् ब्रह्मवेत्ता यहां (इस शरीर) से मरणको पायके (शरीर को त्यागके) इस परमात्मरूप लोकको पावता है, किंवा जैसे अविद्वान् नहीं पावता तैसे विद्वान्भी नहीं पावता है, यह दूसरा प्रश्न है, वा विद्वान् अरु अविद्वान् इन दोनोंको विषय करनेवाले दोनोंही प्रश्न हैं । अरु बहुवचन तो सामर्थ्य से प्राप्तहुये अन्य प्रश्नकी अपेक्षा से घटित है [॥ प्र० ॥ किसके सामर्थ्यसे अन्य प्रश्न प्राप्तहुआहै ॥ उ०॥ तहां कहतेहैं, यहां "(चेच्छब्दात्)" चेत् शब्दसे, । इस पदका पक्षसे प्राप्तहुये सद्भाव के ज्ञानके सामर्थ्य से यह अर्थ है ।] "(असद्ब्रह्मेति वेदचेत् । अस्ति ब्रह्मेतिचेद्वेद)" ब्रह्म असत् है इसप्रकार जब जानता है, अरु ब्रह्म है इस प्रकार जब जानता है, । इस श्रवणसे ब्रह्म है वा नहीं है, ऐसा संशय होता है । ताते क्या है वा नहीं है, ऐसा प्रथम प्रश्नअर्थसे प्राप्त हुआ । अरु ब्रह्मको अपक्षपाती (सामान्य) होनेसे अविद्वान् पावता है वा नहीं पावता (अर्थात् ब्रह्मको यह पक्षपात नहीं जो मैं अमुकको प्राप्त होवों अरु अमुक को प्राप्त न होवों, अरु ब्रह्म आकाशादि सर्वकाकारण अरु आकाशवत् सर्वत्रव्याप्त अरु सर्वका आत्मा है ताते सर्वको समान है, इस कारण से उस

अपक्षपाती सामान्यब्रह्मको अविद्वान् पावताहै वा नहींपावता। ऐसा द्वितीय प्रश्न प्राप्तहुआ। अरु ब्रह्मको समभावके हुये भी अविद्वान्वत् विद्वान् को भी आशङ्का करते हैं कि विद्वान् क्या पावताहै वा नहीं पावता है। अर्थात् जो ऐसाकहा जाय कि ब्रह्म को अपक्षपाती सामान्य होनेपर भी अविद्वान् नहीं पावता,तो यह आशङ्का होतीहै कि ब्रह्मको अपक्षपाती सामान्य समभावके हुयेभी जब अविद्वान् नहीं पावता तब अविद्वान्वत्विद्वान्को भी तिसकी अप्राप्तिकी आशङ्काहोती है कि ब्रह्मको विद्वान भी क्या पावताहै वा नहीं। इसप्रकार तृतीयप्रश्न प्राप्तहुआहै। इनतीनों प्रश्नोंके समाधानार्थ अग्रिमग्रन्थका आरम्भ करतेहैं। तहांप्रथम ब्रह्मका अस्तिपनाही कहते हैं। जो पूर्व "। सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म "। सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप, ब्रह्म है,। इस प्रकार कहा है। तहां सो ब्रह्मका सत्यपना कैसे कहते हैं, ऐसा प्रश्न करनेको योग्य है, तहां यह। उत्तर। कहते हैं कि, सद्भावके कथनसे ही ब्रह्मका सत्यपना कहते हैं। याते "। सदेवसत्यमिति "। सत्यही सत्य है। इसप्रकार श्रुतिविषे कहा है, ताते सद्भाव के कथनसेही ब्रह्मका, सत्यपना कहतेहैं ॥ प्रश्न ॥ इस ग्रन्थको इसप्रकारके अर्थ करके युक्तता, अर्थात् सत्यपनेके प्रतिपादनसे सत्य वस्तुकी विषयता, है सो कैसे जानिये, तहां ॥ उ० ॥ कहते हैं जिसकरके शब्दकी सूचनासे इसही अर्थकरके युक्त "।यदेषआकाश आनन्दोनस्यात्"। जो यह आकाश विषे आनन्द न होवे, इत्यादि अग्रिम कहने के वाक्य "।तत्सत्यमित्याचक्षते"। सोसत्यहै, ऐसा कहतेहैं। इनकरके विदित होताहै कि इसग्रन्थको उक्तप्रकारके अर्थकरके युक्तताहै। [ब्रह्मके सत्यपनेका साधननाम असद्भाव की निवृत्तिही है, इस अभिप्रायसे असद्भावकी शङ्काको प्रकट करते हैं। यहां यहभावहै कि विवादका विषय जो आकासादिक सो सत्पूर्वक हैं, क्योंकि घटादिकोंवत् कार्य है ताते। इसप्रकार लौकिक व्याप्तिके आश्रय करके सत्रूप कारण प्रथम सिद्ध होवे है। अरु तिसको देशादि-

कों का कारण होनेकरके देशादिकों से अपरिच्छिन्न होनेसे ब्रह्म-
पदका वाच्यपना सिद्ध होता है । अरु तिसकी विशेषता से
अप्रतीतिके हुये तिस विषयक असद्भावकी शंका होती हैं, सो
शंका उसको कारणपने करके निवारण करते हैं, परन्तु कारण
होनेसे सद्भाव सिद्धहोवे नहीं, क्योंकि कार्य के आश्रय की अ-
सिद्धि का प्रसङ्ग प्राप्त है ताते [तहां वादी 'असत्ही ब्रह्म है
इसप्रकार शङ्का करताहै, क्योंकि जो है सो विशेष करके ग्रहण
करते हैं (अर्थात् जानते हैं) जैसे घटादिकों को है ऐसा जानते
हैं तैसे (अर्थात् जोवस्तु होती है सो घटादिकोंवत् विशेष (इदं-
प्रत्यय) करके ग्रहणहोती है। अरु जो नहीं है सो नहीं जानिये है,
जैसे शशशृंगादिक (अर्थात् जो वस्तु होती नहीं तिसको जानते
भी नहीं जैसे शशशृङ्ग वा वन्ध्यासुतहै नहीं तवतिसको इदंकरके
जानते भी नहीं जोयहहै, अथवा जोवस्तु घटादिकोंवत् इदंकरके
नहीं जानी जाती वा नहीं ग्रहणहोती सो होती भी नहीं। इस
प्रकार ब्रह्म नहीं प्रतीत होता ताते विशेषकरके अग्रहणसे नहीं
हैं । (अर्थात् जिसकरके शशशृङ्गवत् ब्रह्म भी प्रतीत होता नहीं
एतदर्थ उसके घटवत् इदं करके ग्रहण के न हुये सो है नहीं) ।
इसप्रकार (वादी) शङ्का करे है । तहां (समाधान यह है कि)
ब्रह्मको आकाशादिकों का कारणपना होनेसे ब्रह्म है, इसप्रकार
जानिये है, क्योंकि जिसकरके आकाशादिक सर्व कार्य्य ब्रह्मसे
उत्पन्नहुआ ग्रहण करते हैं । अरु जिसकरके कुछ भी उपजता है
सो है, इसप्रकार लोकविषे देखाहै । (अर्थात् जिस वस्तुसे कुछ
भी कार्य उत्पन्न होताहै तिसका अस्तित्व लोकविषे मानते देखा
है) । जैसे घट अरु अंकुरादिकों का कारण मृत्तिका अरु बीजा-
दिकहैं । तैसे आकाशादिकों का कारण ब्रह्म है इसप्रकार जानते
हैं । (यहां अवसरपायके शिष्य शंका करेहै कि हेगुरो!आकाशादि
कार्य के कारण ब्रह्मके अस्तित्व होनेके विषय में घट अरु अंकुर
रूप कार्य के दृष्टान्तसे कहा कि जैसे घट अरु अंकुररूप कार्य के

ग्रहणसे तिनके कारण मृत्तिका अरु बीजके अस्तित्वका ग्रहणहोताहै, तैसे आकाशादि कार्यके ग्रहणसे तिनके कारण ब्रह्मका अस्तित्व जानिये है,सो अस्तु परन्तु जैसे कार्यरूपघट अरु अंकुरका इदंकरके प्रत्यक्ष ग्रहणहोताहै,तैसेही तिनके कारण मृत्तिका अरु बीजकाभी इदं करके ग्रहण होता है, अरु यह लोकबिषे प्रसिद्ध भी है कि जिसका कार्य प्रत्यक्ष इदं करके ग्रहण होताहै सो आप कारण भी प्रत्यक्ष इदं करके मृत्तिका बीज सुवर्ण लोह तन्तुवत् ग्रहण होता है। परन्तु जैसे आकाशादिक कार्य इदं करके प्रत्यक्ष ग्रहण होते हैं तैसे इनका कारण जिसको ब्रह्मकहते हैं सो मृत्तिका बीजवत् इदं करके प्रत्यक्ष नहीं ग्रहण होता अर्थात् नहीं जानाजाता, एतदर्थ तिसके अस्तित्वबिषे निश्चय भी नहीं होता ताते ब्रह्म नहीं है, अरु जो कदापिहै तो ऐसे दृष्टान्तसे कहिये कि जिसकाकार्य प्रत्यक्षभासे अरु सो कारण प्रत्यक्ष न भासके भी होवे॥ उ०॥ हे सौम्य! यहां जो अंकुररूप कार्यका कारण बीज कहाहै सो तिस कहने से बीजान्तर सूक्ष्मसत्ताको जानना क्योंकि बीज को भी कार्यपनाहै ताते, अरु इस विषयमें छान्दोग्य उपनिषद् की श्रुति प्रमाण है। तथाच श्रुतिः "न्यग्रोधफलमत आहरेतीदं भगवइति भिन्धीतिभिन्नं भगव इति किमत्र पश्यसीत्यराव्यइवेमाधाना भगव इत्यासामङ्गैकां भिन्धीति भिन्नाभगव इतिकिमत्र पश्यसीति किञ्चन न भगव इति १॥ तꣳहोवाच यँ वैसोम्यै तम णिमानं न निभालयसएतस्य वै सोम्यैषोऽणिम्न एवं महान्यग्रोध स्तिष्ठति २॥" श्वेतकेतुप्रति उद्दालकमुनिका वाक्य। हेपुत्र! जो तू इस जगत्के कारण महासूक्ष्म सत्कोप्रत्यक्ष देखनेको इच्छता है तो इस बड़ेवटके वृक्षसे एक फललेआव, तब वो लेआया अरु कहा कि हे भगवन्! वटके फलको लेआया, तब पिताने कहा इसको तोड़डालो, तब पुत्रने फलको तोड़के कहा कि हे भगवन्! तोड डाला, तब पिताने कहा कि अब इसमें क्या देखतेहो,पुत्रने कहा हे भगवन्! इसमें बहुतसे सूक्ष्मबीज देखताहों,पिताने कहा कि हेपुत्र!

इसमें से एक सूक्ष्म बीजको तोड़ो, पुत्रने कहा हे भगवन्! तोड़ा, पिताने कहा हे पुत्र! इस तोड़ेहुये सूक्ष्म बीजके अन्तर क्या देखतेहो सो कहो, पुत्रने कहा हेभगवन्! इसमें मैं कुछ भी नहीं देखता, पिताने कहा हे पुत्र! वटके तोड़ेहुये सूक्ष्म बीजके अन्तर अब तुम कुछभी नहीं देखते तथापि इस सूक्ष्मबीज के अन्तर इस महास्थूल वटवृक्षका कारणभूत महासूक्ष्म सत्ताहै तिसही महासूक्ष्म अदृश्यमान सत्ताका कार्यभूत यह अपने बीजादि अवयवों सहित महास्थूल वटवृक्ष सुशोभित है। अरु बीजका परिणामरूप कार्य वृक्षनहीं क्योंकि बीजकी विद्यमानताहीमें बीज के अन्तर से अंकुर पत्रादिक प्रकट होते हैं अरु तिनकी वृद्धि से बीज नष्टहोजाता है, ताते वृक्षका कारण बीज न होकेबीजोपलक्षित बीजसे पृथक् बीजान्तर कोई एकअदृश्यमान सत्यरूप सूक्ष्मसत्ताहै। हे सौम्य! तैसेही इन आकाशादि दृश्यमानकार्यका अदृश्यमान महासूक्ष्म सत्यरूपकारण ब्रह्महै ऐसा जानते हैं। यह इस भाषाभाष्यकारकी कल्पनायुक्तिविशेषहै॥ [इसकथन करने के हेतुसेभी जगत्के उपादान बिषे असत्पनेकी आशंका करनेको योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं] अरु लोकबिषे असत् वस्तुसे कुछ भी कार्य उत्पन्न हुआ देखते नहीं। जब असत्से नामरूपादि कार्य उत्पन्न होवे, तब वो कार्य निःस्वरूप होने से प्रतीत हुआ न चाहिये अरु प्रतीत होताहै, ताते ब्रह्महै इसप्रकार जानते हैं। अरु जब असत् का कार्य ग्रहण होवे तब भी सो असत् करके युक्तही ग्रहण होवेगा। अरु ऐसे है नहीं, ताते ब्रह्म है इसप्रकार जानिये है। अरु "तत्कथमसतःसज्जायतेति" असत् से सो सत् कैसे उपजताहै, यह जो अन्यश्रुतिहै, सो युक्तिसे असत्से सत्के जन्म के असंभव को कहे है। ताते सत्‌ही ब्रह्म है, इसप्रकार कहना युक्त ही है। [इसप्रकार ब्रह्म के असद्भावकी शंका को निषेध करके अब प्रसंगसे प्राप्त प्रधानवादी की अचेतनपने की आशंका को निषेध करते हैं] अरु जो ऐसा कहे कि सो ब्रह्म जब मृत्तिका अरु

बीजादिकोंवत् कारणहोवे तब अचेतन (जड़) होवेगा, सो कहना बनेनहीं, क्योंकि ब्रह्म इच्छावाला है ताते। अरु लोकबिषे इच्छावाली वस्तु अचेतन होतीनहीं, अरु ब्रह्म सर्वज्ञही है, इस प्रकार हम श्रुतिके वेत्ता कहते हैं, याते ब्रह्मको इच्छावान् होनेपनेका संभव है॥ अरु जो ऐसा कहे कि ब्रह्म इच्छावाला होनेसे अस्मदादिवत् अपूर्णकाम होवेगा, सो कथन बने नहीं, क्योंकि ब्रह्मस्वतन्त्रहै ताते। जैसे कामादि दोषजीवोंको अपने वा परवस्तुके वशकरके प्रवृत्त करे हैं, तैसे कामादिक ब्रह्मके प्रवर्तक नहीं॥ प्र०॥ तब ब्रह्मको काम कैसे है,॥ उ०॥ तहां कहे हैं सत्य ज्ञान स्वरूपवाले ब्रह्म के कामहैं सो ब्रह्म के स्वरूप भूतहोने से शुद्ध हैं, ताते तिनकरके ब्रह्म प्रवर्त होतानहीं [यहां यह कथन किया होताहै कि मायाबिषे प्रतिबिम्बित हुआ ब्रह्म जगत्का कारणहै, सो माया के परिणाम रूपही कामना से कामनाका कर्त्ता होवैहै, अरु तिस मायाके परिणामों को अविद्या आदिकों से तिरस्कारको अप्राप्त हुये चेतन करके व्याप्त होनेसे सत्यज्ञान रूपताहै, अरु ब्रह्मको तिसरूप होने से पुण्यादिक करके स्पर्श के हुये शुद्धपना है। ताते ब्रह्मकी कामना को जीवों की कामनासे विलक्षणपना है यह सिद्ध हुआ] किन्तु प्राणियों के कर्मों की अपेक्षा से सो ब्रह्म तिनका प्रवर्त्तक है। ताते कामों बिषे ब्रह्मकी स्वतन्त्रता है। एतदर्थ ब्रह्म अपूर्णकाम नहीं। अरु [कामना को शरीरादिकोंके संबंधसे जन्यहोनेकी प्रसिद्धि से ब्रह्मको शरीरादिकवान् होनेपनेका प्रसंग होवेगा, यह शंका करनेको योग्य नहीं, इसप्रकार कहते हैं यहां यह अर्थहै कि कामनाके संस्कारवाली मायासे ब्रह्मके तादात्म्यते तिस मायाके परिणामको ब्रह्मके तादात्म्य से शरीररूप निमित्तकी अपेक्षा नहीं है] अन्य साधनकी अपेक्षा से रहित होनेसे भी ब्रह्म अपूर्ण काम नहीं है। किंवा जैसे जीवोंको अपने से भिन्नकार्य अरु कारणका रूप अन्य साधनोंकी अपेक्षावाले होनेसे अनात्मरूप अरु धर्मादिक निमित्तकी अपेक्षावाले काम हैं (अर्थात

जीवों की जो कामना है सो अपनी सिद्धताके अर्थ अहंकारादि अनात्मरूप कारक अरु धर्मादिरूप निमित्त की अपेक्षा वाली है क्योंकि धर्म से अर्थादिक होते हैं ताते। । तैसे ब्रह्म के काम को निमित्तादिकों की अपेक्षावान्‌पना नहीं, किन्तु अपने स्वरूप से अभिन्न ब्रह्मके काम हैं। । अर्थात् जीवों के जो काम (कामना) हैं सो अविद्या के परिणाम वा पंच भूतों के मिश्रित सत्त्वगुण के कार्य अन्तःकरण के निमित्तवाले हैं, वो अन्तःकरण अपने कारण आकाशादिकों की उत्पत्ति से पूर्व आकाशादिकोंके कारण ब्रह्म विषे है नहीं ताते ब्रह्म के काम किसी भी अनात्मा के निमित्त वाले नहीं, अरु आकाशादिभूत अरु तिनके कार्य अन्तःकरणादि भौतिक तिन सर्व के पूर्व "। सो अकामयत" इत्यादि प्रमाण से ब्रह्मके काम हैं ताते सो काम अन्य निमित्त वाले न होके ब्रह्म की चैतन्यता वाले होने से उसके स्वरूप से अभिन्न उसके काम हैं । । सो श्रुति वाक्य कहे हैं कि जिससे आकाश उत्पन्न हुआ सो आत्मा "।सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा,।इदꣳसर्व्वमसृजत, यदिदंकिञ्च"। (सो कामना करता हुआ कि बहुत होवों, सो तपको तपताहुआ, सोई तपको तपिके, इस सर्व को सृजता हुआ, जो कुछ यह है) अर्थात् जिससे आकाश उत्पन्न हुआ ऐसा जो । सर्वका कारण । आत्मा सो कामना करता हुआ॥प्र०॥ सो कैसे वा क्या कामना करता हुआ ॥ उ० ॥ बहुत होवों यह । कामना करता हुआ। ॥ प्र०॥ एकको अन्य अर्थ विषे अप्रवेशहुये बहुतपना कैसे होवेगा ॥ उ०॥ तहां कहते हैं, प्रजाको उत्पन्न करो । जिस करके पुत्रकी उत्पत्ति सेही अन्य अर्थ को विषय करनेवाला बहुत होना होवे नहीं, इस करके प्रजाकी उत्पत्ति के अर्थ अद्वैतकी हानि होवे नहीं ॥ प्र० ॥ तब आप विषे स्थित अप्रकट हुआ जगत् नामरूप की प्रकटता से कैसे होता है, ॥ उ० ॥ जब आप विषे स्थित अप्रकट हुये नाम रूप प्रकट करते हैं, तब नाम रूप के अपरित्यागसेही ब्रह्म

से अविभाग को प्राप्तहुये वे नामरूप देशकालादिक सो सर्व अवस्थाविषे प्रकटकरिये हैं, तब सो नामरूपका प्रकटकरना ब्रह्मका बहुतहोना संभवे, अन्यथा निरवयव ब्रह्मको बहुतपने की प्राप्ति वा अल्पपना सम्भवे नहीं। जैसे आकाश का अल्पपना अरु बहुतपना अन्य (घटादि) वस्तुओं का कियाही है, तैसे। एतदर्थ तिस नामरूपकी शक्तिरूप मायाके परिणाम द्वाराही आत्मा बहुतहोताहै। जिसकरके [जब नामरूपकी शक्तिरूप माया अंगीकार किया तब सो प्रधानवत् ' ब्रह्म से भिन्न सत्यरूपहुई, इस करके अद्वैत की हानि होवेगी, यह आशंकाकरके कहते हैं। यहां यह भाव है कि आत्मा से भिन्न जो वस्तुहै, सो क्या आपसेही सिद्धहोती है वा पर (अन्य) से (सिद्धहोवे है यह प्रष्टव्य है) तिनमें जो प्रथमपक्ष (कहे कि आत्मा से जो भिन्नवस्तु है सो आपसेही सिद्धहोवे है सो) बने नहीं, क्योंकि तिस को जड़ता की हानिहोने से अरु आत्मा से भिन्नताकी हानिहोने से (अर्थात् चैतन्य आत्मा से जो भिन्नवस्तु है सो जड़ अनात्मा होवे है, अरु तिसकी जब अपने आपसे सिद्धता मानी तब तिसको जड़ताकी अरु आत्मा से अभिन्नताकी हानिहोवे है अरु तिस की हानि से उसको आत्मरूपताहोने से आत्मा से भिन्नपने के अभावहुये सो वस्तुही नहीं यह सिद्धहोवे है) अरु जो दूसरा पक्ष (मानो कि आत्मा से भिन्नवस्तुकी पर (दूसरे) से सिद्धि होवे है तो सो) भी बने नहीं, क्योंकि तिस से ज्ञान कहिये चैतन्य के संबंध का अनिरूपणहै (अर्थात् निरूपण नहीं) ताते अरु जिस करके भिन्नदेश कालवाली वस्तुओं का संयोग आदि सम्बन्ध संभवे नहीं, वा विषय विषयीभाव सम्बन्ध बने नहीं, क्योंकि नियामक के खोजने से। अरु तिनका स्वभावरूपही सम्बन्ध बनेनहीं, क्योंकि दोनों स्वभावों को सम्बन्धरूप होने करकेही कृतार्थहुये सम्बन्धी के अभाव का प्रसंग है ताते। अरु आपने प्रति अपनाही सम्बन्धीपना बनेनहीं क्योंकि तिसकरके

आत्माश्रयरूप दोषकी प्राप्ति होती है ताते। तिसप्रकार के अर्थ के अभावहुये अरु व्यवहारमात्रकी प्रवर्तकता के होने से मिथ्या व्यवहारकी प्राप्ति से अनिर्वचनीय वादही सिद्ध होताहै] जिस करके आत्मा से अन्य अनात्मरूप अरु तिस (आत्मा) से भिन्न देश कालवाला सूक्ष्म अन्तरायसहित दूर स्थित भूत भविष्यत् वर्तमानरूप वस्तु नहीं है [जिस करके आत्मा से भिन्न वस्तु संभवे नहीं ताते आत्मा के तादात्म्य सेही नामरूपकी सिद्धि होवैहै, इसप्रकार कहते हैं] याते सर्व अवस्थावाले नामरूप ब्रह्म सेही स्वरूपवाले हैं। अरु [तब ब्रह्मको प्रपंच सहितता का प्रसंग होवेगा, सो। तुम्हारा। कहना योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि ब्रह्म तिस प्रपंचरूप नहीं है क्योंकि जड़रूप नहीं ताते, अरु सुषुप्ति आदिकों विषे तिस प्रपंचकी निवृत्ति होने से भी तहां ब्रह्मकी सिद्धिका संभव है ताते] ब्रह्म तिसरूप नहीं है। [प्र० ॥ तब नामरूपको ब्रह्मरूपता कैसे है, ॥ उ० ॥ तहां कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि स्वप्नविषे आकाशको भक्षण करनेवत् आरोपितकी अनुभव के अंगीकार से सिद्धि के असंभव से, अनुभवके विषय जे नामरूप सो अनुभवरूप ब्रह्मस्वरूपही कहिये है, परन्तु एकता के अभिप्राय से नहीं] सो नामरूपता के निषेध से, सोई, इस वाक्य करके तिसरूप कहते हैं। अरु तिसनामरूप उपाधि करके, ज्ञाता, अरु ज्ञानरूप शब्द अरु अर्थ आदिक सर्व्वविद्यमान व्यवहारका भजनेवाला ब्रह्म सो आत्मा है। सो आत्मा सृष्टिकी कामनावाला हुआ तपको तपता भया। यहां तप शब्दकरके। ऊर्ध्वबाहु जलस्थायी पंचाग्नि का तापना कृच्छ्र चांद्रायणादिकों को, न कहके। ज्ञानको कहते हैं, क्योंकि "। तस्य ज्ञानमयं तपः" । तिसका ज्ञान (विचार) मय तपहै। इस अन्य श्रुतिके प्रमाण से, अरु तिस। आत्मा। को आप्त। पूर्ण। कामहोने से अन्य। उक्तप्रकार के। लोकप्रसिद्ध तप का असंभवही है। एतदर्थ सो आत्मा उत्पन्न करने योग्य

जगत् की रचना को विषय करनेवाले विचारको करता हुआ, यह अर्थ होताहै। सोई आत्मा तपको तपिके अर्थात् विचार अवलोकन करके, प्राणियों के कर्म्मादिक निमित्तों के अनुसार , देश, काल, नाम, अरु रूप से जिसप्रकार अनुभव किया है, तैसेही सर्व अवस्थावाले सर्व प्राणियों करके अनुभव किये हैं, ऐसे इस जगत्को सृजताहुआ "। तत् सृष्ट्वा, तदेवानुप्राविशत्, तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् "। (तिसको सृजके, तिसहीके ताईं पीछे प्रवेश करता हुआ, सच्च त्यच्चरूप होताहुआ) अर्थात्, तिस को सृजिके तिसही सृजेहुये जगत्के ताईं पीछे प्रवेशकरताहुआ। अब प्रवेशकी अनिर्वचनीयताके प्रकाशने से जीवको ब्रह्मस्वरूप होने करके प्रवेश वाक्यके तात्पर्य के देखावनेको विचारका आरंभ कहते हैं। तहां कैसे पीछे प्रवेश करताहुआ, यह विचार करने को योग्यहै। किंवा सो स्रष्टा (सृष्टिकर्त्ता) तिसही स्वरूप से प्रवेश करताहुआ, किंवा अन्य स्वरूप से। प्रवेश करताहुआ। यह दो विकल्प हैं। तिनमें प्रथम क्या युक्तहै, तहां श्रुतिके अनुसार जो स्रष्टाहै, सोई पीछे प्रवेश करताहुआ, यह युक्तहै। इसप्रकार जब सिद्धान्तीनेकहा, तब पूर्ववादी कहताहै। [पूर्ववादी कहताहै। यहां यह अर्थ है कि सृष्टि क्रिया अरु प्रवेश क्रियाके पूर्व अरु पीछे के कालबिषे होनेके असंभवहुये तिनके कर्त्ताकी एकता श्रुतिकरके बोधनकियाहै, परन्तु प्रवेशकी पिछले कालबिषे होनेकी योग्यता संभवेनहीं, क्योंकि सृष्टिके कालबिषेही उपादानको कार्य्यरूपसे स्थितहोनाहै ताते] ननु, जब ब्रह्म मृत्तिकावत्कारणहै तब कार्यको तिसब्रह्मरूप होनेसेतिस (कार्य) केबिषेतिस (कारण) का प्रवेशयुक्त नहीं है। जिस करके कारणही कार्यरूपसे परिणामको पावताहै, याते सो प्रविष्टवत्है, परन्तु कार्यकी उत्पत्तिके पीछे कार्य से भिन्न कारण का पुनःप्रवेश अघटितहै। अरु जिस करके घटके परिणामसे भिन्न मृत्तिकाका घटबिषे प्रवेश नहीं,इसकरके जगदाकार परिणाम से भिन्न ब्रह्मका जगत् बिषे प्रवेश अघटितहै। अरु जो

सिद्धान्तका एक देशीकहे "जीवेनात्मनानुप्रविश्येति" इस जीव रूपसे पीछे प्रवेशकरके, । इस अन्य श्रुतिसे, जैसे घटबिषे चूर्ण रूपसे मृत्तिकाका पीछे प्रवेश होताहै, तैसे आत्माका अन्यरूपसे नामरूपात्मक कार्यबिषे पीछे प्रवेश होताहै, यह कथन युक्त नहीं है, क्योंकि ब्रह्म एकरूप है ताते । अरु मृत्तिकाके स्वरूपको तो अनेक रूपताहै ताते, अरु सावयवताहै ताते अरु मृत्तिका का चूर्ण प्रवेश रहित देशवालाहै ताते, मृत्तिकाका चूर्णरूपसे घटबिषे पीछे प्रवेश युक्तहै, परन्तु आत्माको एकताके होनेसे अरु निरवयव होने से अरु प्रवेश रहित देश का अभाव होने से तिसका प्रवेश संभवेनहीं। अरु जो सिद्धान्तका एक देशीकहे है कि[सृष्टि कर्त्ता से अन्यका प्रवेश जब नहीं संभवे है, तब किसप्रकार प्रवेश कहनेको योग्यहै। इसप्रकार सिद्धान्तका एकदेशी कहताहै] तब कैसा प्रवेश युक्तहै, अरु प्रवेश नहीं है ऐसा नहीं कहना चाहिये, किन्तु"तदेवानुप्राविशत्" तिसही के ताईं पीछेप्रवेश करताहुआ, इस श्रुतिकरके प्रवेश श्रवणकियाहै ताते प्रवेश कहना युक्त है। याते तब सावयवरूपही ब्रह्म होवो, अरु तिसको सावयव होनेसे मुखबिषे हस्तके प्रवेश होनेवत् तिसका जीवरूप से नाम रूपात्मक कार्य बिषे प्रवेशयुक्तही होवेगा, सो कथन बने नहीं, क्योंकि शून्यदेशका अभावहै ताते। अरु जिसकरके कार्यरूप से परिणाम को प्राप्तहुये ब्रह्मका नामरूप कार्यही देशहै, तिससे भिन्न आप करके शून्य अन्यदेशहै नहीं। अर्थात् जिसको शून्य कहते हैं सो लक्षणवाला होनेसे नामरूपवाला ब्रह्मका कार्य है ताते ब्रह्म से भिन्न शून्यदेश कोई नहीं। कि जिस प्रदेशके अर्थ जीवरूपसे प्रवेश करे। अरु [जो कारणही अन्य कार्यरूप से परिणाम को पाया है, तिसके प्रति कोई एककार्य जीव रूपसे प्रवेश को पावेगा, यह शंकाकरने योग्य नहीं है, इसप्रकार कहते हैं] जो कहै कारणही प्रवेशको पावेगा अरु जीवरूप को त्यागैगा। जैसे घट मृत्तिकाके प्रवेशहुये घटभावको त्यागताहै तैसे, तो[कोई एककार्यकेप्रवेशको

अंगीकार करके जो दूषणकहा सो संभवे नहीं क्योंकि श्रुतिका विरोधहै ताते,इसप्रकार कहते हैं]"तदेवानुप्राविशत्"। तिसहीके अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ, इसश्रुतिवाक्यसे सो कारणका पीछे प्रवेशयुक्त नहींहैं॥ [कारणके स्मारक तत् शब्दसेकार्यको लक्षणा से जानिके तिसबिषे अन्यकार्यकाप्रवेश कहते हैं क्योंकिप्राप्तदेशका संभव है ताते। अरु इसकरके श्रुतिका विरोध नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्तके एक देशी के मतको प्रकटकरके दूषण देते हैं] जो कहे, अन्य, कार्यही होवे है, अर्थात् "। तदेवानुप्राविशत्"। तिसही के ताईं पीछे प्रवेश करताहुआ, इस श्रुति करके जो जीव रूप कार्य सो नामरूपसे परिणामको प्राप्तहुये अन्य कार्यकोही प्राप्तहोता है सो बनेनहीं, क्योंकि ऐसेहुये श्रुतिसे विरोधहोताहै ताते। अरु जिस करके घट अन्यघटको पावता नहीं अरु व्यतिरेक श्रुतियोंके विरोधसे। अरु जिस करके नामरूप कार्य से जीवकेभेदकी अनुवाद करनेवाली श्रुतियां विरोधको प्राप्तहोंगी। अरु जीवको अन्य कार्यकी प्राप्ति के हुयेमोक्षका असंभव होताहै ताते। अरु जिस करके मुक्त होता है तिसही को पावता नहीं। अरु जिस करके बांधेहुये चौरादिकों को श्रृंखला (बेड़ी) की प्राप्तिहोवे नहीं। अर्थात् चौरादिकों को प्रथम बन्धन होता है अरु उसको श्रृंखलाकी प्राप्तिहुये उस बन्धनकी निवृत्ति होती है सो पुनः प्राप्तहोवे नहीं, एतदर्थ कहाहै कि जिससे मुक्त होताहै तिसको पावता नहीं। इस करके जीव अन्य कार्य को प्राप्तहोता है, यहकथन युक्तनहीं॥ [कारणके वाचक तत् शब्दसे कार्यकी लक्षणा विषे कहने को अनिच्छित लक्षण जब प्राप्त होवे, तब , तत् , शब्द कारण पर ही होवो इस प्रकार अन्य सिद्धान्तका एक देशी कहता है] अरु जो कहे बाह्य अरु अन्तरके भेद से परिणामको पावता है, अर्थात् सोई कारणरूप ब्रह्म शरीरादिकों का आधार होनेकरके अरु तिन शरीरादिकों के भीतर ध्येय होनेकरके परिणाम को पावता है सो कहना बनेनहीं, क्योंकि

बाह्यस्थित वस्तुके प्रवेशका संभवहै ताते। अरु जिसकरके जो वस्तु जिसके भीतर स्थित है सोई प्रवेशको पाया, ऐसा कहते नहीं, इसहीसे बाह्यस्थित वस्तुका अन्तर प्रवेश होताहै । अरु प्रवेश शब्दके अर्थको इसप्रकार देखा होनेसे, जैसे गृहको रचि के प्रवेश करताहुआ, तैसे ॥ अरु जो अन्य वेदान्ती कहे कि जल बिषे सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्बवत् ब्रह्मका प्रवेशहोवेगा सोभी कहनाबने नहीं,क्योकि ब्रह्मको पूर्णताहै ताते अरुअमूर्त्त(निराकार)है ताते, अरु परिच्छिन्नमूर्त्तरूप सूर्यादिकोंका प्रसन्नता (स्वच्छता) निर्मलता के स्वभाववाले अन्य जलादिकों बिषे प्रतिबिम्ब का उदय होता है । अर्थात् प्रतिबिम्ब प्रकट भासता है, परन्तु आत्माको अमूर्त्त होनेसे, अरु आकाशादिकों के कारण आत्मा को पूर्ण होनेसे अरु व्यापक होनेसे । अरु आत्मा से दूर देशवाले प्रतिबिम्बके आधार वस्तुका अभाव है ताते, तिसका प्रतिबिम्बवत् प्रवेश कहना युक्त नहीं ॥ । अर्थात् हे सौम्य ! । जैसे पुरुष के प्रतिबिम्ब का आधार स्वच्छ स्वभाव वाला दर्पण पुरुषसे भिन्न देशमेंहोताहै, अर्थात् जितने अवकाशमें पुरुष के शरीरकीआकृति परिमेयता है तिससे पृथक् दूरदेशवाले अवकाशस्थलमें दर्पण के होनेसे प्रतिबिम्ब होता है, अरु साकार वस्तुका होताहै अरु बिम्बरूपसे अधिक स्वच्छस्वभाववाले दर्पणादिकों में प्रतिबिम्ब होताहै, इसप्रकार जब प्रतिबिम्बके होनेकी सामग्री होती है तब प्रतिबिम्बहोताहै, सो प्रतिबिम्बकी सामग्रीका एक अद्वैतआत्मा विषे अभाव है, क्योंकि प्रथम तो आत्मा अपने प्रतिबिम्ब होनेके हेतु साकारतासे रहित निरवयव निराकार है, अरु सो आत्मा निराकार हुआ परिपूर्ण है तिससे इतर कहिये खाली ऐसा कोई देश (स्थान) नहीं जहाँ उसके प्रतिबिम्ब का आधार दर्पण स्थानीय बुद्ध्यादिक होवे, अरु तिस आत्मासे भिन्न अरु तिससे अधिक स्वच्छ कोई वस्तु नहीं कि जिस विषे उसका प्रतिबिम्ब होवे । ताते प्रतिबिम्ब होनेकी ,यावत् साकारता, दूरदेश, पृथक्

आधार, अरु तिसकी स्वच्छता आदिक सामग्री हैं, तिन सर्व का एक अद्वैत निराकार स्वयं प्रकाश अतिस्वच्छ सर्वव्यापी परिपूर्ण आत्मा बिषे अभाव है। ताते तिस आत्मा का सूर्यादिकों के प्रतिबिम्बवत् प्रतिबिम्बरूप से प्रवेश कहना युक्त नहीं॥ हे सौम्य!यहां इस "। तदेवानुप्राविशत् ।" इस श्रुति के अर्थ बिषे भाष्यकारस्वामी श्रीशंकराचार्य्यजीने प्रतिबिम्बरूप से आत्मा के प्रवेशका खंडन कियाहै, अरु छांदोग्यउपनिषद्के छठे अध्याय की "। जीवेनात्मनानुप्राविश्य ।" इस श्रुतिके अर्थ बिषे आत्माका प्रतिबिम्बरूपसे प्रवेश कहाहै, सो स्थान विशेष के भेदसे अर्थविशेषका भेदहै ऐसे जानना, विरुद्धार्थ न जानना।॥ इसप्रकार सिद्धान्तके एकदेशीकेमतकोनिषेधकरके पूर्ववादीकीशंकाकीसमाप्ति करेहैं। जब इसप्रकारहै, तब ब्रह्मकाप्रवेश नहीं है। अरु "तदेवानुप्राविशत् ।" इसके अर्थपीछे प्रवेशकरताहुआ,।इस श्रुतिके अन्यार्थ को हम पावते नहीं। अरु श्रुति जो है सो हमको इन्द्रिय अगोचर ।अर्थात् इन्द्रियोंका अविषय। वस्तुके ज्ञानकी उत्पत्तिबिषे निमित्त है। अरु यत्न करनेवाले जे हम तिस हमको इस श्रुतिवाक्य से ज्ञानका होना संभवे नहीं, हा बड़ाकष्ट है। तब व्यर्थ होनेसे "। तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् ।" तिसको रचिके तिसके अर्थ पुनः प्रवेश करताहुआ,। यह वाक्य अंधपुरुष मणिको प्राप्तहुआ इसवाक्यवत् [सो श्रुतिसृष्टिकर्त्ताके प्रवेशको कहे हैं, यहां यह अर्थ है कि सोश्रुति हम मीमांसकोंको प्रमाणहै,ताते विरोधहुये अन्यकेप्रवेश की कल्पना युक्त नहीं है] अर्थ से शून्यहै, [शक्तिके विषयरूप अर्थका असम्भव होनेसे अर्थ करके शून्यता है, अथवा तात्पर्यके विषयके असम्भवसे अर्थकरके शून्यताहै, तिनमें प्रथमपक्षबनेनहीं क्योंकि समीप देशवाले भी जल में आकाशादिक मूर्त्त वस्तुके प्रतिबिम्बके होनेवत् अमूर्त्तब्रह्मके भी अनिर्वचनीय अविद्या आदिकों बिषे प्रतिबिम्ब होनेकी उत्पत्ति के अनन्तर कालके ताईं अन्तःकरणादिकोंबिषे प्रतिबिम्बके अभावके असंभवसे इसप्रकार

कहे हैं "नेति" नहीं इति, । अरु द्वितीयपक्ष भी बने नहीं, ऐसा कहते हैं] सो कथन बने नहीं, क्योंकि इस श्रुतिवाक्यको अन्य अर्थवालापनाहै ताते॥ प्र०॥इस स्थान विषे किस अर्थकी चर्चा करतेहौ॥उ०॥ इस वाक्यका प्रसंगविषे प्राप्तहुआ यह अर्थ है, तथापि कहनेको इच्छित अन्य अर्थ है, सो स्मरण करनेको योग्यहै "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावता है, "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै, "योवेदनिहितं गुहायाम्" जो गुहाविषे स्थित ब्रह्मको जानताहै,॥ ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तहुआ जिस ब्रह्मका ज्ञान (जानना) सो कहनेको इच्छित है । अरु तिस ब्रह्मस्वरूपके जनावने के अर्थ आकाशादिकों से लेके अन्नमयकोशपर्यन्त सर्वकार्य देखाया । अरु ब्रह्मके जाननेका उपाय आरम्भ कियाहै । तहां "अन्नरसमयादन्योऽन्तरात्माप्राणमयः" अन्नरसमय आत्मासे अन्य भीतर आत्मा प्राणमय है, । अरु तिसके भीतर मनोमयहै, तिसके भीतर विज्ञानमय है, अरु इस विज्ञानमय बुद्धिरूपा गुहा विषे प्रवेश को पाया आनन्दमय रूप विशिष्ट आत्मा देखाया । [बुद्धिरूपा गुहाविषे प्रवेशसे अनन्तर आनन्दमयही विशिष्टार्थ है, क्योंकि लिंगकरके चेतनरूप विशेष्यके विशेष्यपने के अव्यभिचारको देखते हैं ताते । तिसके ज्ञानद्वारा आनन्दके वृद्धिका अवधिआत्मब्रह्मरूपी जो है, सो इस ही (बुद्धिरूपा गुहाविषे जाननेको योग्यहै, इस अभिप्रायसे जल विषे सूर्यके प्रवेशवत् अनिर्वचनीय प्रवेश कहिये है । यह अर्थ है] याते पीछे आन्दमयरूप लिंग (चिह्न) के ज्ञानद्वारा आनन्दकी वृद्धिका अवधिरूप ब्रह्मपुच्छ प्रतिष्ठा सर्वविकल्पका आश्रय अरु निर्विकल्परूप जोआत्माहै, सो इसही बुद्धिरूपा गुहाविषे जानने को योग्यहै । इस रीतिसे तिसका प्रवेश कल्पना करते हैं । [बुद्धिरूपा गुहाविषेही ब्रह्मके ज्ञानका संभव होनेसे तहांहीं (उसका) प्रवेश कहनेको इच्छितहै, इसप्रकार कहते हैं] अरु जिस करके ब्रह्मनिर्विशेष है ताते अन्य ठिकाने जानाजाता नहीं । [ननु

अन्य ठिकाने प्रतीति के अयोग्य जो ब्रह्महै सो बुद्धिबिषेही कैसे प्रतीतहोताहै, यह आशंकाकरके ऐसा कहतेहैं कि उपाधिकीकोई योग्यता के सम्भव होनेसे बुद्धि बिषेही ब्रह्मप्रतीत होवे है. यहां यह अर्थ है कि अन्तःकरणके सम्बन्धसेही देह अरुघटादिकोंबिषे चैतन्यका आविर्भाव होता है आपहीसे नहीं। अरु अन्तःकरण जो है, सो अन्तराय से विनाही अन्वय अरु व्यतिरेकसे चैतन्य के आविर्भावका करनेवालाहै,] अरु विशेषसे जो सम्बन्धहैसोई ज्ञानका हेतु देखा है। जैसे (अदृश्यमान) राहुका चन्द्र अरु सूर्य करके विशिष्ट सम्बन्ध है (सोई राहुके दर्शन का हेतु है)। तैसेही अन्तःकरण (वा बुद्धिका) अरु आत्माका (विशिष्ट) सम्बन्ध है सोई (अविशिष्ट) ब्रह्मके ज्ञानका हेतु है, क्योंकि अन्तःकरण (आत्माके) समीपवर्त्ती है तासे अरु [जैसे अस्वच्छ (मलिन) स्वभाववाले घटादिकों बिषे मुख प्रतिबिम्बको पावतानहीं (अर्थात् मुखका प्रतिबिम्ब होता नहीं) अरु स्वच्छ (निर्मल) स्वभाव वाले जलादिकों बिषे प्रतिबिम्बको पावता है (अर्थात् प्रतिबिम्ब होताहै)। तैसेही शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान अन्तःकरणकी (स्वच्छता) अरु एकाग्रता के स्वभाव से तहांही ब्रह्मका ज्ञानघटे है (घटवत् मलिन देहादिकोंबिषे नहीं) इसप्रकार कहते हैं] प्रकाशरूप होने से। [किं वा किरणाकार से विकाशको प्राप्तहुये जड़ सूर्यादिकों का अन्धकाररूप आवरण के तिरस्कारबिषे समर्थ प्रकाश अङ्गीकार करते हैं, तैसे जड़ताके तुलहुये अरु वृत्तिके आकार से परिणाम को प्राप्तहुये अन्तःकरण का ही अज्ञानरूप आवरण के तिरस्कार का सामर्थ्य अङ्गीकार करने को योग्य है, ऐसा कहते हैं। (हे सौम्य!) यहां जो दृष्टान्त दार्ष्टान्त करके कहा कि सूर्यका अपनी किरणों करके अन्धकारके तिरस्कार करनेका सामर्थ्य है, अरु वृत्तिरूपसे परिणामको प्राप्तहुये अन्तःकरण का अज्ञानके तिरस्कार करनेका सामर्थ्य है, सो स्वयंज्योतिः चैतन्य आत्माके निमित्त का किया जानना उनके स्वरूप का ही नहीं क्योंकि सूर्य

अरु अन्तःकरण का, अन्धकार अरु अज्ञान नाशक सामर्थ्य उनके स्वभाव स्वरूप का ही माननेसे " तस्यभासासर्वमिदंविभाति " अरु " यदादित्यगतंतेजो जगद्भासयतेऽखिलम् " इत्यादि श्रुतिस्मृतियों से विरोध आवता है ॥] अरु जैसे प्रकाश करके विशिष्ट घटादिकों का ज्ञान होता है, तैसे बुद्धि वृत्तिरूप प्रकाश करके विशिष्ट आत्माका ज्ञान होवेहै, तातें ज्ञानकी हेतु बुद्धिरूप गुहाविषे स्थित, ऐसे प्रसंगविषे प्राप्तहुआ । जो ब्रह्म । सोबुद्धि वृत्तिरूप स्थानवाला ब्रह्मही यहां पुनः तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत् " तिसको सृजिके तिसके ही अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ, । इसप्रकार कहियेहै । सोई यह आकाशादिकोंका कारण ब्रह्म सो कार्यको सृजके तिसके अर्थ पीछे प्रवेशहुयेवत् बुद्धिरूपा गुहाके भीतर । द्रष्ट, श्रोता, मन्ता अरु विज्ञाता, ऐसे विशेषवत् प्रतीत होताहै। सोई तिसका प्रवेश है। एतदर्थ सो कारणरूप ब्रह्महै,अरु सो अस्तिभाव के होनेसे है, इस प्रकार जाननेके योग्य है। सो तिस कार्यके ताईं पीछे प्रवेश करके सच्चकहिये मूर्त्त (स्थूलरूप) अरु त्यच्च कहिये अमूर्त्त (सूक्ष्मरूप) होताहुआ । अरु जिसकरके अप्रकट नामरूपमय आत्माविषे स्थितमूर्त्त अरु अमूर्त्त, यह दोनों अपने अन्तर्गत आत्मासे प्रकट करते हैं । एतदर्थ वे मूर्त्त अरु अमूर्त्त शब्दके वाच्यहैं । अरु वे आत्मासे विभागरहित देशकालवाले हैं, एतदर्थही सो ।मूर्त्त अमूर्त्त। दोनोंरूप आत्मा होताहुआ इसप्रकार कहिये है। " ब्रह्मणो वा द्वे रूपे मूर्त्तश्चामूर्त्तश्च " । श्रुत्यन्तरे ।। किंवा समान अरु असमान जातिवाले पदार्थोंसे निकृष्टहुआ देश अरु काल तिनकरके विशिष्ट होनेसे "इदंतत्" यह अरु सो, । ऐसे कथनकिया जो " निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च, निलयनञ्चानिलयनञ्च, विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च, सत्यञ्चानृतञ्च, सत्यमभवत्, यदिदं किञ्च, तत्सत्यमित्याचक्षते, तदप्येष श्लोको भवति" ' निरुक्त अरु अनिरुक्त, निलयन अरु अनिलयन, विज्ञान अरु- अविज्ञान, सत्य अरु असत्य, सत्यरूप होताहुआ, तिसको सत्य

ऐसे कहते हैं, तिसबिषे यह श्लोक होताहै ? अर्थात् , यह अरु सो, इसप्रकार कथन किया जो निरुक्त अरु तिससे विपरीत सो अनिरुक्त । अर्थात् यह निरुक्त अरु अनिरुक्त यह भी मूर्त्त अ-मूर्त्तके ही विशेषणहैं, जैसे प्रत्यक्ष अरु परोक्ष रूप अर्थवाले सच्च अरु त्यच्चरूप विशेषण हैं तैसे । अरु निलयन अरु अनिलयन । निलयन जो आश्रय सो मूर्त्तकाही धर्म है, अरु तिससे विप-रीत जो अनिलयन सो अमूर्त्तकाही धर्म है । [निलयन कहिये गृह अरु अट्टालिकादिक मूर्त्तिमान् स्थानविशेष, अरु अनिलयन कहिये अवयवरूप, देश विशेषसे रहितपना, सो अनिरुक्तादिक अमूर्त्तके धर्मवत् ब्रह्मकोही क्यों न होवेंगे, तहां कहते हैं] त्यत् अरु अनिरुक्त अरु अनिलयन, यह अमूर्त्त रूपताके हुये भी व्या-कृतको विषय करनेवालेही हैं, क्योंकि सृष्टिके उत्तरकाल बिषे तिनके होनेका श्रवणहै ताते । याते त्यत् जे प्राणादिक अनिरुक्त हैं सोई अनिलयनहैं, याते यह अमूर्त्तके विशेषण व्याकृत ,कार्य, कोही विषय करनेवाले हैं । अरु विज्ञान (चैतन्य) अरु चेतन से रहित अचेतनरूप अविज्ञान, अरु पाषाणादिरूप सत्य । यहां सत्य जो कहा सो अधिकारसे व्यवहारको विषय करनेवाला है परन्तु परमार्थसे सत्य नहीं । परमार्थसे सत्यरूप तो एक ब्रह्मही है, अरु व्यवहार को विषय करनेवाला जो सत्य है, सो सापे-क्षिक है । याते मृग जलादिक असत्यकी अपेक्षा से व्यावहारिक जलादिक सत्य कहते हैं, अरु तिस सत्यसे विपरीत सो झूठ (असत्य) यह सर्व सो परमार्थ से सत्यरूप जो ब्रह्म सो होता हुआ ॥ प्र० ॥ सो ब्रह्म क्या रूपहै॥उ०॥ सोब्रह्म " सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म " सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्म है, । अर्थात् सोब्रह्म ,सत्य, चैतन्य, अनन्त रूप है । ऐसे प्रसंगमें प्राप्तहुआ होनेसे, सत्यादिरूप है। अरु जिस करके सत् अरु त्यत् आदिक मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप धर्मों का समूह जो कुछ यह विलक्षण विकारका समूह है, सो एकही सत् शब्दका वाच्यब्रह्म होताहुआ, तिससे भिन्न नाम रूपमय

ऐसे कहते हैं, तिसबिषे यह श्लोक होताहै ; अर्थात्, यह अरु सो, इसप्रकार कथन किया जो निरुक्त अरु तिससे विपरीत सो अनिरुक्त। अर्थात् यह निरुक्त अरु अनिरुक्त यह भी मूर्त्त अ-मूर्त्तके ही विशेषणहैं, जैसे प्रत्यक्ष अरु परोक्ष रूप अर्थवाल सच्च अरु त्यच्चरूप विशेषण हैं तैसे। अरु निलयन अरु अनिलयन। निलयन जो आश्रय सो मूर्त्तकाही धर्म है, अरु तिससे विप-रीत जो अनिलयन सो अमूर्त्तकाही धर्म है । [निलयन कहिये गृह अरु अट्टालिकादिक मूर्त्तिमान् स्थानविशेष, अरु अनिलयन कहिये अवयवरूप, देश विशेषसे रहितपना, सो अनिरुक्तादिक अमूर्त्तके धर्मवत् ब्रह्मकोही क्यों न होवेंगे, तहां कहते हैं] त्यत् अरु अनिरुक्त अरु अनिलयन, यह अमूर्त्त रूपताके हुये भी व्या-कृतको विषय करनेवालेही हैं, क्योंकि सृष्टिके उत्तरकाल बिषे तिनके होनेका श्रवणहै ताते। याते त्यत् जे प्राणादिक अनिरुक्त हैं सोई अनिलयनहैं, याते यह अमूर्त्तके विशेषण व्याकृत (कार्य) कोही विषय करनेवाले हैं। अरु विज्ञान (चैतन्य) अरु चेतन से रहित अचेतनरूप अविज्ञान, अरु पाषाणादिरूप सत्य। यहां सत्य जो कहा सो अधिकारसे व्यवहारको विषय करनेवाला है परन्तु परमार्थसे सत्य नहीं। परमार्थसे सत्यरूप तो एक ब्रह्मही है, अरु व्यवहार को विषय करनेवाला जो सत्य है, सो सापे-क्षिक है। याते मृग जलादिक असत्यकी अपेक्षा से व्यावहारिक जलादिक सत्य कहते हैं, अरु तिस सत्यसे विपरीत सो झूठ (असत्य) यह सर्व सो परमार्थ से सत्यरूप जो ब्रह्म सो होता हुआ॥ प्र०॥ सो ब्रह्म क्या रूपहै॥उ०॥ सोब्रह्म "। सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म "। सत्य ज्ञान अनन्तब्रह्म है,। अर्थात् सोब्रह्म (सत्य, चैतन्य, अनन्त रूप है। ऐसे प्रसंगमें प्राप्तहुआ होनेसे, सत्यादिरूप है। अरु जिस करके सत् अरु त्यत् आदिक मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप धर्मों का समूह जो कुछ यह विलक्षण विकारका समूह है, सो एकही सत् शब्दका वाच्यब्रह्म होताहुआ, तिससे भिन्न नाम रूपमय

विकार कहिये कार्य तिसके अभाव से । याते तिस (सर्व के कारणरूप) ब्रह्मको ब्रह्मवेत्ता सत्य ऐसा कहते हैं । [पदोंका अर्थ करके प्रसंगविषे प्राप्त प्रश्न के निषेधहुये "(सोऽकामयत,इति)" सो कामना करताहुआ, । इत्यादिरूप प्रकरणके तात्पर्यको देखाते हैं] (ब्रह्मवेत्ता तो ब्रह्मको सत्य कहते हैं, परन्तु (ब्रह्म है वा नहीं, ऐसा प्रसंगविषे प्राप्तहुआ प्रश्न है, तिसके उत्तर विषे यह कहा कि "(बहुस्यामि)" मैं बहुत होवों, । ऐसे कामना करता हुआ । अरु सो कामना के अनुसार सत् अरु त्यत् आदि लक्षण वाले आकाशादि कार्यरूप सृजके तिसके ताईं पीछे प्रवेश करके, देखताहुआ, सुनताहुआ, मनन करताहुआ, जानताहुआ, बहुत रूप होताहुआ । ताते सो यह आकाशादि कार्योंका कारण परम व्योमविषे अनुगत हृदयरूपा गुहाविषे स्थित, अरु तिस गुहा के अहंकर्त्ता भोक्ता इत्यादि वृत्तिरूप प्रकाशविशेषों से प्रतीयमान ब्रह्मको ,, है ,, इसप्रकार जानना ऐसे कथन कियाहै । अरु तिस (इस ब्राह्मण भागकरके उक्त, अर्थविषे यह श्लोक कहिये मन्त्र (प्रमाण (होताहै । अर्थात् जैसे पूर्व के पाँच अनुवाकों विषे भी अन्नमयादिक आत्माके प्रकाशक मन्त्रहैं, तैसे कार्यद्वारा अत्यन्त सर्वान्तर आत्मा के सद्भाव के प्रकाशक भी मन्त्र होतेहैं ॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

अथ सप्तमोऽनुवाकः ॥

हेसौम्य! "(असद्वाइदमग्रआसीत्, ततोवैसदजायत, तदात्मान छंस्वयमकुरुत, तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति)" (यह आगे असत्ही होताहुआ, तिससेही सत्उत्पन्न होताहुआ, सो आपही आपको ही करताहुआ, ताते सो सुकृत कहिये है, अर्थात् यह जगत्आगे असत्ही होताहुआ । यहां असत् शब्दकरके प्रकटनामरूप प्रपंच से विपरीतरूपवाला अविकारी ब्रह्म कहतेहैं । पुनः सो अत्यन्तही असत्है ऐसानहीं जिसकरके असत्सेसत् (विद्यमान,जन्मसेरहित

असद्वा इदमग्र आसीत। ततो वै सदजायत। तदात्मनꣳ स्वयमकुरुत । तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वैतत्सुकृतम् । रसो वै सः । रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति । को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात् । यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते । अथ सोऽभयं गतो भवति । यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति ३१ ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

ऐसानामरूप विशेषवाला व्याकृत(कार्य)रूप जगत्उत्पत्तिसे पूर्व नहीं हुआहै,किन्तु असत् ब्रह्मकावाच्य ब्रह्महोताहुआ। तिसअसत् ब्रह्म से निश्चयकरके नामरूपके विभागवाला प्रपंचरूप से सत् उत्पन्नहुआ ॥ तिससे विभागवाला कार्य क्या पिता से पुत्रवत् उत्पन्नहुआहै, तहां नहीं, इसप्रकार कहते हैं, सो असत, ब्रह्मका वाच्य ब्रह्म आपही आपकोही करताहुआ। इस करके ऐसे है, ताते सो ब्रह्मही सुकृत, (अर्थात् आपही कर्त्ता) कहते हैं। लोक विषे ब्रह्म सर्व्वका कारण होने से आपही कर्त्ता प्रसिद्ध है। जाते निश्चय करके सर्वरूपसे सर्वको आपही करताहुआ, ताते सो आपही कर्त्ताऐसा कहते हैं। वा पुण्यरूपसे भी सोई ब्रह्मरूप कारण सुकृत कहते हैं। अरु लोकविषे सर्वथा भी फलका सम्बन्धादिक कारण सुकृत शब्दका वाच्य प्रसिद्धहै। अरु जब पुण्य है वा अन्य है, सो प्रसिद्ध चेतनवत् नित्य कारण के होते संभवे है, ताते सुकृत की प्रसिद्धि से सो ब्रह्म सुकृतरूप है । अरु इस अग्रिम कहने की रसरूपता की प्रसिद्धि रूप हेतु से भी यह ब्रह्म सुकृतरूपहै॥प्र०॥ब्रह्मको सुकृतपनेकी प्रसिद्धि काहे से है,

उ० ॥ तहां कहते हैं "। यद्वैतत् सुकृतम्, रसो वै सः,रस ㈧ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दीभवति "। (यद्वा यह सुकृत, निश्चय करके सो रसरूप है, रसकोही पायके आनन्दित होते हैं) अर्थात् यद्वा यह सुकृत निश्चयकरके सो रसरूप है । लोक विषे तृप्तिका हेतु आनन्दकारी मधुर आम्रादिक रूपरस प्रसिद्धहै यह पुरुष रसको ही पायके आनन्दित कहिये सुखी होताहै । लोकविषे असत् वस्तुको आनन्द का हेतुपना देखा नहीं । अरु जिसकरके बाह्य आनन्द के साधन से रहितहुये भी इच्छा अरु एषणा से रहित विद्वान् ब्राह्मण बाह्य रसके लाभादिकों से रहित रसरूप आनन्द वाले देखते हैं, तिनका ब्रह्मही रसहै । एतदर्थ तिन विद्वानों को आनन्दका कारण रसवत् ब्रह्मही रसहै । अरु प्राणादिक क्रियाके देखने रूप हेतु से भी ब्रह्महै, इसप्रकार जानाजाताहै । अरु यह पिण्ड (देह) भी जीवते के प्राणसे प्राणन (जीवन) क्रिया को करताहै,अरु अपानसे अपाननक्रियाको करताहै,ऐसेवायुसम्बन्धी अरु इन्द्रियसम्बन्धी जो चेष्टाहै, सो मिश्रितहुये कार्य अरु कारण रूप संघात करके निर्वाह कियाहुआ देखतेहैं अरु सो एकप्रयोजन का साधनहोने करके परस्परके अधीनअचेतनरूप कार्य कारणका संघात चेतन करके युक्त संभवे है, क्योंकि [गृह अरु अटारीआदिकों विषे स्वतन्त्र, अरु गृहादिकों से आरंभ करने को अयोग्य स्वामी विना मिलावने के अदर्शन से । अर्थात् गृहादिक जिनकी संज्ञाहै सो ईंट पाषाण चूना मृत्तिका काष्ठादि संघात से निमित्त होते हैं, परन्तु उन ईंट पाषाणादि जड़ों के संघात से पृथक् अरु चेतन कोई एक उनके स्वामी करकेही उन ईंट पाषाणादिकोंका एकत्रहोय गृहादिकों के नामरूप से निर्माण होना लोकविषे देखाहै, उन ईंट पाषाणादिकों से भिन्न उनके स्वामी चैतन्य विना उन जड़ ईंट पाषाणादि संघातका एक होना देखा नहीं । कार्य कारण के संघात विषे भी विलक्षण अरु शरीरवाला अरु अवयवादिकों से अरु बुद्धि आदिकों से रहित । उन जड़ संघात

का एकत्र करनेवाला कोई एक। स्वामी जानिये है, अरु वह चेतनपने करके। सर्वत्र। भेदके अभाव से ब्रह्मही है, इसप्रकार तिसके सद्भावकी सिद्धिहै। यह अर्थ है] अन्य ठिकाने स्वामीसे रहित तिनका अदर्शनहै ताते। सो कहते हैं "। को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्, यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् एष ह्येवानन्दयति, यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते"। (जब यह आकाशविषे आनन्द न होवे, कौनही अपान रूप चेष्टाको करेगा, कौन प्राणनरूप चेष्टाको करेगा, जिसकरके यहही आनन्द करावे है, जब याते यह इस अदृश्य अनात्म्य अनिरुक्त अनिलयन अभय स्थितिको पावताहै तब सो अभयको प्राप्त होताहै) अर्थात् जब यह आकाशसंज्ञक परमव्योमगत हृदयरूपा गुहाविषे स्थित आनन्द न होय तब लोकबिषे कौनही अपानरूप चेष्टाको करेगा, अरु कौन प्राणनरूप चेष्टाको करेगा, किन्तु कोई भी न करेगा, ताते सो ब्रह्म है, ऐसा जानाजाताहै॥ जिसके अर्थ कार्य कारणादिकों की प्राणन आदिक चेष्टा होवेहै, तिसका कियाही आनन्द लोकोंको होताहै॥ प्र०॥ यह काहे से जानतेहौ, ॥उ०॥ जिसकरके यहही परमात्मा लोकोंको। उनके। पुण्योंके अनुसार आनन्द करावे है, अरु सोई आनन्दरूप आत्मा प्राणियों को अविद्या से परिच्छिन्न भासताहै, एतदर्थ अविद्वान् को भयका अरु विद्वानको अभयका हेतु होने से, सो ब्रह्महै, इस प्रकार जानिये है॥ ननु, सत् अवस्थावाले वस्तुके आश्रयसे अभय होताहै, अरु असत् वस्तुके आश्रयसे भयकी निवृत्ति संभवे नहीं, इसकरके ब्रह्मको अभय का हेतुपना कैसे है, तहां कहतेहैं, जब जिसकरके यह साधक इस अदृश्य [दृश्यनाम देखनेयोग्य विकारका है, क्योंकि विकार (कार्य) दर्शनके अर्थहै ताते, । अरु ब्रह्म जिसकरके दृश्य नहीं, इसकरके अदृश्य कहिये अविकारहै। यह अर्थ है] ,अविकारी अरु अविषयरूपहै, अरु जिसकरके अदृश्यहै तिसही करके अनात्म्य कहिये अशरीरहै, अरु जिसकरके

अनात्म्य । अशरीरी। है तिसही करके अनिरुक्त कहिये अवाच्यहै [जो विशेषहै सोई कहनेका विषय है, अरु सो विशेष विकार रूपहै । अरु ब्रह्म जिसकरके सर्व विकारों (कार्यों) का हेतु (कारण) है ताते अविकारीरूपहै, एतदर्थ अनिरुक्त कहिये अवाच्य है ।] अरु जिसकरके अनिरुक्तहै तिसही करके अनिलयन कहिये आधाररहित अनाधारहै ऐसा कहते हैं अरु पूर्व कार्य के धर्मसे विलक्षण ब्रह्मविषे अभय स्थितिकहिये आत्मभावकोपावता है, तब सो तिस ब्रह्म विषे भयके हेतु अविद्याकृत नानाभावके अदर्शनसे अभयको प्राप्त होताहै । अरु जिसकरके यह साधक जब स्वरूप विषे प्राप्त होताहै तब अन्यको देखता नहीं, अन्यको सुनता नहीं, अन्य को जानता नहीं अरु जिसकरके अन्य से अन्यको भय होताहै, आत्मा अपने आपसेही नहीं, एतदर्थ आत्मा से जो अभय कहा सो युक्त है ताते आत्माही आत्मा के अभयका कारण है । अरु भय हेतुके होते ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण सर्व ओरसे निर्भय देखिये है, अरु भयसे रक्षक ब्रह्मके अविद्यमानहुये सो अभयअयुक्तहै, ताते तिन ब्राह्मणको अभयके दर्शन से तिस अभयका कारण ब्रह्महै इसप्रकार जानते हैं ॥प्र०॥ यह साधक कब अभयको प्राप्त होताहै ॥उ०॥ जब यह साधक अन्यको नहीं देखता है, अरु आत्माविषे भेदको करता नहीं, तब अभयको प्राप्त होता है । यह अभिप्राय है " अथ सोऽभयंगतो भवति, यदाह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयंभवति, तत्त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य, तदप्येष श्लोको भवति " (तब सो अभयको प्राप्त होताहै, जब जिस करके यह इसविषे अल्पभी अन्तर को करताहै तब तिसको भय होताहै, जाननेवाले न मानने वाले को सोई तो भय होता है, तिसविषे भी यह श्लोक होता है) अर्थात् तब सो तिस ब्रह्मविषे भयके हेतु अविद्याकृत नाना भावके न देखने से अभय को प्राप्त होता है, अरु जब अविद्यावस्था विषे जिसकरके यह अविद्यावान् अविद्या करके आरो-

पित वस्तुको तिमिर दोषकरके आरोपित द्वितीय चन्द्रमावत् आत्मा बिषे देखता है, अरु इस ब्रह्मबिषे अल्प भी अन्तर कहिये भेददर्शन को करता है, अर्थात् अन्तःकरण बिषे रंचक-मात्र भी भेदको देखता है, तब तिस भेद दृष्टिरूप हेतु करके तिस भेददर्शी आत्माको भय होताहै। एतदर्थ आत्माही आत्मा को भयका कारण होताहै, अर्थात् ईश्वर मुझ से अन्यहै अरु मैं तिससे अन्य संसारी हौं, इसप्रकार जाननेवाले अरु अल्प भी भेदके करनेवाले पुरुषों को भय होताहै। इसप्रकार जानके भी एकता करके न माननेवाले भेददर्शी को भेददृष्टिका विषयकिया सोई ब्रह्म तो भयका हेतु होताहै। ["। दासोस्मि ।" "दासोऽहं तस्य देवस्य ममाराध्यःपरमेश्वर इति ।" मैं दासहौं, वा मैं तिसदेवका दासहौं अरु मेरा आराध्य परमेश्वर है, । इसप्रकार के भेदको, जाननेवालेको कैसे अज्ञानी कहतेहो,यहां यह अर्थहै, जैसे चन्द्रमा के भेदको देखताहुआभी पुरुष अयथार्थदर्शी होनेसे अज्ञानीकहते हैं तैसे]जिसकरके जो यह एक अभिन्न आत्मतत्त्वको देखतानहीं, तिसही करके यह विद्वान् भी अविद्वान्है। तब तिस भेददर्शी को भयकी संभावना किसप्रकार होती है। तहां कहते हैं, यहांयहअर्थ है कि, संहारका कर्ता परमेश्वर हमको संहार करेगा, वा नरक बिषे डालेगा, इसप्रकार देखनेवाले पुरुषको भय होताहै।]अरु नाश करनेयोग्य मानेहुये वस्तुके विनाशके हेतुके देखने से, तिस को भय होवे है। ब्रह्मही उच्छेदका हेतु काहेसे है। तहां कहे हैं। यहां यह अर्थ है कि, उच्छेद कहिये नाश तिसके हेतुके भी उच्छेद के हुये अनवस्थाके प्रसंगसे तिसकी नित्यता कहनेको योग्य है, सो उच्छेद का हेतु ब्रह्मसे अन्य संभवे नहीं] अरु अन्यों के नाश का हेतु जो ब्रह्महै, सो नाश करने को अयोग्य है, एतदर्थ तिस भेददर्शी के चित्त बिषे तिस नाशके कारण । अरु नाश करनेको अयोग्य ब्रह्मके अविद्यमानहुये तिस नाशके हेतु भेदके दर्शनका कार्यरूप भय युक्तहै। अरु सर्व जगत्को भयवाला देखते हैं, तातें

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्य्यः भीषा स्मादग्निश्चेन्द्रश्च। मृत्युर्धावति पञ्चम इति। सैषा ऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति। युवा स्यात्साधु युवाऽ ध्यायिकः। आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः। तस्येयं पृथिवी सर्व्वावित्तस्य पूर्णास्यात्। स एकोमानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः। स एको मनुष्यगन्धर्व्वाणा मानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं म नुष्यगन्धर्व्वाणामानन्दाः। स एको देवगन्धर्व्वाणामान न्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं देवगन्ध र्व्वाणामानन्दाः। स एकः पितॄणां चिरलोकलोकाना मानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं पि तॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः। स एक आजानजा नां देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः। स एकः कर्म्मदेवा नामानन्दः। ये कर्म्मणा देवानपि यन्ति। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं कर्म्म देवानामानन्दाः। स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः। श्रो त्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः। स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः। स एकः प्रजापतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य॥ ते ये शतं प्रजापतेरान न्दाः। स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाका महतस्य॥ स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये। स

एकः। स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमय मात्मानमुपसंक्रामति । एतंप्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतंमनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतंविज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति।तदप्येषश्लोको भवति३२॥इत्यष्टमोऽनुवाकः॥ जगत् के भयके देखनेसे जानिये है कि जिससे जगत् भयको पावताहै, ऐसा भयका कारण विनाशका हेतु अविनाशी रूप सो ब्रह्म निश्चय करके है। तिस इस अर्थबिषेभी यह अग्रिम कहनेका श्लोक कहिये मन्त्र प्रमाण होवे है ॥ ३१ ॥ इतिसप्तमोनुवाकः॥

अथाष्टमोऽनुवाकः॥

हे सौम्य "भीषाऽस्माद्वातः पवते, भीषोदेतिसूर्य्यः, भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चम इति" (इससे भयकरके वायुचलताहै, भयकरके सूर्य उदयहोताहै, इससे भयकरके अग्नि ,इन्द्र, अरु पांचवां मृत्युधावताहै) अर्थात् जिसकरके वायु आदिक आप ईश्वरहुये भयके योग्यहोयके बहुत श्रमवाले गमनादिक कार्य्यों विषे नियमितहुये प्रवृत्त होतेहैं, सो भयकाकारण आनन्दरूपब्रह्म है। तिस इसआनन्दरूप ब्रह्मको यहयुक्तहै कि जिस नियामक के होते नियम करके तिनका प्रवर्त्तन होवे है। अरु राजा से किंकरवत् वे वायुआदिक इस ब्रह्म से भयकरके प्रवर्त्त होते हैं, एतदर्थ। उनको। भयका कारण तिनका नियामक ब्रह्महै। अरु सो भयका कारण ब्रह्म आनन्दरूप है [सो भयका कारण ब्रह्म "। यदेष आकाशआनन्दो नस्यात् "। जो यह आकाशविषे आनन्द न होय तो, । इस श्रुतिविषे आनन्द कहा। अरु यहां आनन्द जो है सो लोकविषे जन्य प्रसिद्धहै, ताते विचारका आरंभ करते हैं] "। सैषाऽऽनन्दस्य मीमाꣳसाभवति, युवास्यात्साधु युवाऽध्यायिकः। आशिष्ठो दृढिष्ठो बलिष्ठः, तस्येयं पृथिवी सर्वावित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुष आनन्दः "। (आनन्द का सो यह

विचार होताहै, श्रेष्ठ युवा, अधीत चारो वेद, और से पाया, दृढ़ अरु बलिष्ठ, तिसकी यह सर्व पृथिवी वित्तकरके पूर्ण होती है, सो एक मनुष्यों का आनन्द होताहै, अर्थात् तिस इस ब्रह्म के आनन्दका सो यह विचारहै ॥ प्र० ॥ आनन्दका क्या विचार करने को योग्यहै, तहां कहते हैं ॥ उ० ॥ ब्रह्मका आनन्द क्या लौकिक आनन्दवत् विषय अरु विषयीके सम्बन्धसे जन्यहै, अथवा स्वाभाविकहै, इसप्रकारका यह आनन्द का विचारहै । [जब ब्रह्मानन्दका विचार प्रसंगविषे प्राप्तहुआहै, तब यहां श्रुतिविषे सार्वभौमके आनन्दादिकों के कहनेका आरंभ किस अर्थ है, इस शंकापर कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि जो लौकिक आनन्द है सो कहीं भी अवधि को पायाहै । कि यह इतनाहै । क्योंकि सातिशयहै, परमाणुवत् । इसप्रकार ब्रह्मानन्द के विचार अनुमानार्थ लौकिक आनन्दोंके कथनका आरंभहै] यहां जो लौकिक आनन्दहै सो बाह्य अरु भीतरके साधनोंकी सम्पत्तिरूप निमित्त वालाउत्कृष्टहै, सो यह ब्रह्मानन्दके निश्चयार्थ कहतेहैं । अरु जिस करके इसप्रसिद्ध आनंदसे विषयरहित ब्रह्म अरु आत्माकी एकता के दर्शी पुरुषों की बुद्धिका विषय ब्रह्मानन्द जानने को शक्य है, एतदर्थ यह लौकिक आनन्द कहते हैं [अबअन्यप्रकारसे ब्रह्मानन्दके ज्ञानको कहते हैं] लौकिक आनन्द भी ब्रह्मानन्दका लेश है । अरु अविद्यासे तिरस्कारको पायाहुआ अज्ञात सो ब्रह्मानन्द, अविद्या के उत्कर्षहुये ब्रह्मादि प्राणियों करके कर्मके वशसे बुद्धिके अनुसार विषयादि साधन के सम्बन्ध के अधीन होवे हैं, अरु सो लोकविषे विपरीत भासमान होने से अस्थिर लौकिक होताहै अरु सोई ब्रह्मानन्द, अविद्या काम अरु कर्म्म इसकी न्यूनता करके मनुष्य गंधर्वादिकोंकी उत्तरोत्तर भूमिविषे निष्काम विद्वान् श्रोत्रियको प्रत्यक्षहुआ शत १०० गुणा अधिक अधिक उत्कर्ष से जहांलगि हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मका आनन्द है तहां पर्य्यन्त भासताहै । अरु अविद्याकृत विषय विषयी के विद्याद्वारा निषेध

कियेहुये स्वाभाविक परिपूर्ण एक अद्वैत आनन्द होता है। इस अर्थको प्रकट करनेकी इच्छा करतेहुये कहतेहैं। श्रेष्ठ युवा अधीत चारोंवेद, माता पितादिक अन्यसे शिक्षा पायाहुआ अत्यन्त दृढ़ अरु बलिष्ठ, ऐसे अन्तरके साधनकरके सम्पन्न जोपुरुषहै तिसकी यह भोगके साधनधनकरके अरु कर्मके साधन दृढ़ अर्थकरके पूर्ण सर्वपृथिवी होती है, अर्थात् सम्पूर्ण पृथिवीका पति चक्रवर्ती राजा होताहै। तिसका जो आनन्दहै सो एक मनुष्योंका उत्कृष्ट आनंद है "। तेये शतं मानुषा आनन्दः, स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य ॥ " वे जे शत मनुष्योंके आनन्दहैं, सो एक मनुष्य गन्धर्वका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय मनुष्यके विषयभोग अरु कामनाके निवृत्तहुये होती है ", अर्थात् वह जो एक चक्रवर्ती राजाका आनन्द है तैसे सौ चक्रवर्ती के आनन्दहैं सो मिलके एक मनुष्य गन्धर्वोंका आनन्दहै। अर्थात् मनुष्योंके आनन्दसे सौगुणा अधिक मनुष्य गन्धर्वोंका आनन्द होता है मनुष्य होके जो कर्म उपासनाके बलसे गन्धर्वपनेको प्राप्तहुये हैं, तिनको मनुष्य गंधर्व कहतेहैं। अरु सो जिस करके अन्तर्धानादिक होनेकी शक्तिकरके सम्पन्नहैं, अरु सूक्ष्मकार्य कारणवाले (अतिवाहक शरीरवाले) हैं, ताते उनको शीतोष्णादिक द्वन्द्वकृत पीड़ाकी अल्पताहै, अरु द्वन्द्वके निवारण करने की सामर्थ्यरूप साधनकी सम्पत्ति है। एतदर्थ मनुष्यके भोगोंकी कामनासे रहित मनुष्य गन्धर्वकोचित्त की प्रसन्नताहोती है। तिसप्रसन्नता विशेषसेसुख विशेषकी प्रकटता होवे है। इसप्रकार पूर्व पूर्व भूमिकासे उत्तरोत्तर भूमिकाबिषे प्रसन्नताके विशेषसे शतगुणा आनन्दका उत्कर्ष संभवे है। [प्रथम "अकामहत" निष्काम, । इस विशेषण से अग्रहण का तात्पर्य्य कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि जब प्रथम पर्यायबिषेही निष्काम ग्रहण करिये, तब तिसहीको सार्वभौम कहिये चक्रवर्ती राजाके तुल्य आनन्द होवेगा तब मानुष आनन्दकी इच्छासे रहित पुरुष मानुष आनन्दका भागी है, इस प्रकार व्याघात दोष होवेगा।

एतदर्थ मनुष्य गन्धर्वके आनन्दसे तुल्य तिसके आनन्दको देखा वने को प्रथम पर्याय विषे "अकामहतस्य" इस विशेषण का अग्रहण है] प्रथम तो "अकामहत" कामना से रहित, । इस विशेषणका अग्रहण है, क्योंकि मनुष्यों के विषय भोगकी कामनासे अहतहुये श्रोत्रिय (विद्वान्)को मनुष्यके आनन्दसे शतगुण आनन्दका उत्कर्ष मनुष्य गन्धर्वके तुल्य कहनेको योग्य है, इस प्रयोजनार्थ "युवास्यात्साधुयुवाऽऽध्यायिकः" श्रेष्ठयुवा अरु अधीतवेद । इन पदोंकरके श्रोत्रियपना अरु निष्पापपना ग्रहण करिये है । अरु जिसकरके सो दोनों विशेषण सर्वठिकाने समान हैं अरु कामनासे रहितपना तो विषयकी अधिकता अरु न्यूनता से सुखकी न्यूनता अधिकताके अर्थ विशेष होताहै । एतदर्थ तिसके विशेषसे शतगुणा सुखके अधिकताकी प्रतीति से कामनासे रहितपने को परमानन्दके प्राप्ति की साधनताके विधानार्थ प्रथम पर्य्याय विषे कामनासे रहितपनेका अग्रहण है इस प्रकार कथन किया जो मनुष्य गंधर्वका आनन्द सो श्रोत्रिय मनुष्यके विषय भोगकी अरु कामनासे रहित (ज्ञानी)को होवेहै "तेयेशतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः,सएकोदेवगंधर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वह जोशतमनुष्यगन्धर्वोंका आनन्दहै सोएकदेवगंधर्वका आनन्दहै, सोश्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुषोंको होताहै । अर्थात् जो सौ १०० मनुष्य गंधर्वका आनन्दहै सो एकदेव गंधर्वका आनन्दहै सोआनन्द श्रोत्रिय अरुनिष्काम पुरुष कि जिसकी मनुष्य गंधर्वोंके आनन्दकी कामना उठगईहै तिसको होताहै।अरु कल्पकी आदिविषे जो जातिसेही गंधर्व होते हैं, तिनको देवगंधर्व कहतेहैं "तेयेशतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः, सएकः पितृणांचिरलोकलोकानामानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वे जो शतदेवगन्धर्वोंके आनन्द हैं सो एकचिरलोकवासी पितरोंका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु कामना से रहितको होता है) अर्थात् जो एक देवगन्धर्व के आनन्दहैं तिससे सौगुणा अधिक एक चिरलोकके

निवासी पितरोंका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित को होता है॥ अरु "तेयेशतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः, स एक आजानजानांदेवानामानन्दः श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" (वह जो शत चिरलोकनिवासी पितरों का आनन्द है, सो एक आजानज देवोंका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु अकाम को होता है) अर्थात् जो एक चिरलोक के निवासी पितृके आनन्द हैं तिनसे सौगुणा अधिक एक आजानज देवता के आनन्द हैं सो आनन्द श्रोत्रियपुरुषको, कि जिसकी चिरलोकके निवासी पितरों के आनन्दकी कामना अभाव हुई है तिसको होता है। आजानज जो देवलोक तिसविषे स्मृति उक्त कर्मोंके करनेसे। तिनके फल भोगार्थ देवभावसे उत्पन्न हुये जे मनुष्य। तिनको आजानज देव कहतेहैं॥ "अरु तेयेशतमाजानजानां देवानामानन्दाः, सएक कर्मदेवानामानन्दः, येकर्मणा देवानामपियन्ति श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वे जोशत आजानज देवोंके आनन्दहैं, सो एककर्म देवों का आनन्द है, जो केवल वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म करके देवभावको पावते हैं, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितको होता है) अर्थात् जो एक आजानज देवके आनन्दहैं तिसके शतगुणे अधिक कर्मदेवों का आनन्द है अरु जो वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म विद्याके ज्ञान सहित करते हैं सो पुरुष देवभावको पावते हैं, अर्थात् यहां शरीर त्यागके देवलोकमें देवभावसे उपजते हैं, तिन देवताओंका आनन्द आजानज देवके आनन्दसे शतगुणाअधिक है सो आनन्द श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुष पावता है॥ अरु "तेयेशतंकर्मदेवानामानन्दाः, स एकोदेवानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" (वेजेशत कर्म देवनके आनन्द हैं सो एक देवोंका आनन्दहै, सोश्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुषको होता है) अर्थात् जो एक कर्म जा देवके आनन्द हैं तिनसे शत १०० गुणाअधिक देवताका आनन्दहै, अरु अष्टवसु ८, एकादशरुद्र ११, द्वादश आदित्य १२, चन्द्रमा प्रजापति २, यह सर्व मिल के

तैंतीस ३३ देवता हैं अरु जे यज्ञविषे हवीके भोक्ता । अरु सृष्टि के उत्पत्ति कालविषे प्रथम ब्रह्माके सङ्कल्पमात्र सेही उपजे अयोनिसम्भव हैं । ताते ये मुख्य देवता हैं, तिनका जो आनन्द है सो श्रोत्रिय अरु निष्काम पुरुषको होता है ॥ अरु "तेयेशतं देवानामानन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य" (वेजेशत देवों के आनन्द हैं, सो एक इन्द्रका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहित पुरुषको होताहै) अर्थात् जो एक देवतोंका आनन्द है तिससे सौगुणा अधिक देवताओं के अधिपति इन्द्रका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय (विद्वान्, अरु सर्वकामनासे रहित पुरुषको होता है ॥ अरु "तियेशतमिन्द्रस्यानन्दाः, स एको बृहस्पतेरानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वेजेशत इन्द्रके आनन्द हैं, सो एक बृहस्पतिका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु निष्काम को होता है) अर्थात् जो एक इन्द्रको आनन्द है तिनसे सौगुणा अधिक इन्द्रके आचार्य बृहस्पतिका आनन्द है । क्योंकि जो सर्व देवताओं का अधिपति त्रैलोक्य का राजा इन्द्र है सो अपने गुरु बृहस्पति का सेवन आराधन करतसन्ते उनकी आज्ञामें वर्त्तता है अरु ईश्वरके तुल्य जानता है, एतदर्थ इन्द्र के आनन्द से सौ गुणा अधिक बृहस्पति का आनन्दहै। सो श्रोत्रिय अरु कामनारहितको होता है ॥ अरु तेयेशतं बृहस्पतेरानन्दाः स एकःप्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य" (वेजेशतबृहस्पतिके आनन्दहैं, सोएक प्रजापतिका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितको होताहै) अर्थात् इन्द्रके आनन्दसे शतगुणा अधिक बृहस्पतिका आनन्दहै तिससे सौगुणा अधिक त्रैलोक्यमय शरीरवले विराडभिमानी प्रजापतिका आनन्दहै, सो श्रोत्रिय अरु कामनासे रहितहुयेको होताहै॥अरु "तयेशतंप्रजापतेरानन्दः स एको ब्रह्मण आनन्दः, श्रोत्रियस्य कामहतस्य" (वेजेशत प्रजापति के आनन्द हैं, सो एक ब्रह्माका आनन्द है, सो श्रोत्रिय अरुकामनासे रहितको होताहै) अर्थात् जोएकविराट्

शरीरवाले प्रजापति का आनन्द है, तिस आनन्द से शतगुण अधिक ब्रह्मानामकरके हिरण्यगर्भका आनन्दहै। अर्थात् समष्टि व्यष्टिस्वरूप, अरु जन्ममरणरूप अग्निबिषे व्यापी, अरु जहां पर्यन्त आनन्दके भेद एकताको पावते हैं, अरु जहां उनका निमित्त धर्म अरु तिनको विषय करनेवाला ज्ञान अरु कामना से रहितपना, ये सर्व अतिशय कहिये सर्व से अधिक हैं, सो यह हिरण्यगर्भ ब्रह्माहै जिसका यह आनन्दहै सो श्रोत्रिय (वेदशास्त्र को जानके धर्माचरणको करनेवाला) अरु कामनासे रहितपुरुष पावताहै। अर्थात् जो विद्वान् धार्मिक निष्पाप रूप है अरु तिस की विषय सुखकामना उठगई है ऐसा निष्काम पुरुष चक्रवर्त्ती राजा के आनन्दको भोगता है, अर्थात् जिसको जिस वस्तुकी कामना है तिसको तिसकी प्राप्तिके अर्थ श्रम होनेसे अरु प्राप्ति के प्रयत्नमें कचिद्विघ्न होनेसे अरु प्राप्तिके अनन्तर तिसकी अरु शरीर की अस्थिति निमित्तक वियोग होनेकी चिन्तासे सुख नहीं, अरु जिसकी विषय सुख कामना उठगई है सो तन्निमित्तक प्रयत्नादिकोंसे रहितहुआ आनन्दको भोगताहै। इसप्रकार जिस धार्मिकविद्वान् निष्पाप पुरुषकी चक्रवर्तिके आनन्दसे हिरण्यगर्भ के आनन्दपर्यन्त जिस जिस विषयक आनन्द भोगकी कामना उठगई है सो निष्कामपुरुष यहांही सुखपूर्वक उस आनन्द को प्राप्त होताहै। अतएव जिस निष्पाप धर्मात्मा श्रोत्रिय पुरुषकी जितनी जितनी कामना अधिकाधिक निवृत्तहुई है सो तिसके अनुसार अधिकाधिक आनन्दको पावता है। अरु जिसकी हिरण्यगर्भ के भी पद पर्यन्त की कामना उठगई है तिन की प्रशंसा वेद करता है अरु सोई ब्रह्मानन्द प्राप्तिका अधिकारी होताहै। तथाच "कामस्याप्तिञ्जगतः प्रतिष्ठांक्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्। स्तोममहदुरुगायम्प्रतिष्ठान् दृष्ट्वाधृत्याधीरो नचिकेतोऽत्य स्राक्षीः" इस श्रुति से मृत्यु भगवानने हिरण्यगर्भ के पदसे भी निष्कामहुये परमाधिकारी की प्रशंसा कियाहै ताते जिसकी हि-

रण्यगर्भ के आनन्द भोगकी कामना भी अभाव हुई है सो ब्र-
ह्मानन्दका उत्तमाधिकारी है। ॥ अर्थात् श्रोत्रिय कहिये वेदशास्त्र
की आज्ञानुसार धर्म मार्गमें वर्त्तनेवाला अरु निष्पाप अरुकामना
सेरहित, ऐसे पुरुषकरके सो ब्रह्मदेवका आनन्द सर्वओरसे प्रत्यक्ष
अनुभव कियाजाताहै। एतदर्थ यह श्रोत्रियतादि तीन, आनन्दके
साधनहैं,इसप्रकार जानाजाताहै।अरु तिनमें भी श्रोत्रियपना अरु
निष्पापपना यह दोनों साधन नियमित हैं, अरु निष्कामता तो
अधिकाधिक होती है, ताते सर्व साधनों में तिसकी उत्कृष्टता
जानीजाती है। [तिसके अर्थ विचारका आरम्भकिया है, तिस
निरतिशय साधनकी सिद्धि विषे वाक्यके तात्पर्यके लखावने को
कहते हैं। यहां तिस हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माका जो आनन्द है अरु
जो तिसके उपासक को प्रत्यक्ष है सो आनन्द जिसकी मात्रा
कहिये लेश (किणका) है सो यह परमानन्द स्वाभाविकहै, इ-
सप्रकार सम्बन्ध है] तिस ब्रह्मा को निष्कामपने की अधिकता
करके प्रतीयमान जो श्रोत्रियको प्रत्यक्ष ब्रह्मा का आनन्द है जो
जिस परमानन्दका एक अंशमात्र है ॥ (अथवा देश है जैसे एक
समस्त भूमंडल पर अनेक देश हैं तिनमें कोई एक देशके अधि-
पतिका देश भूमण्डलका कोई एक देश है, तैसे हिरण्यगर्भाख्य
ब्रह्मा का जो आनन्द है सो परमानन्द का कोई एक अंश है। ॥
क्योंकि "एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति"
इसहीआनन्दके एकदेशके ताईं अन्य (ब्रह्मादि) भूत उपजीविका
करते हैं, । इस अन्य श्रुतिके वाक्यसे । अरु समुद्र जल के एक
बिन्दुवत् जिसका एकदेशरूप सो यह चक्रवर्त्ती आदिकोंका आ-
नन्द नानामात्रारूप विभागको पावता हुआ जहां (अर्थात् जिस
निष्काम ब्रह्मवेत्ता के प्रत्यक्ष अनुभव हुये ब्रह्मानन्दविषे) एकता
को पावता है, सो यह परमानन्द स्वाभाविक है ॥ (अर्थात् पर-
मानन्द जो है सो अथाह अपार समुद्र जलवत् है, अरु हिरण्य-
गर्भका आनन्द महानदजलवत्है, अरु प्रजापतिका आनन्द नदी

जलवत् है, अरु बृहस्पतिका आनन्द महाह्रदवत् है अरु इन्द्रका आनन्द लघुह्रदजलवत् है, अरु देवताओं को आनन्द सरोवर के जलवत् है, अरु कर्म्मज देवोंका आनन्दकुण्डके जलवत् है, अरु आजानजदेवका आनन्द वापीके जलवत् है, अरु पितरोंका आनन्द दीर्घ कूपके जलवत्है, अरु देवगंधर्वोंका आनन्द लघुकूपके जलवत् है, अरु मनुष्य गंधर्वों का आनन्द एक गृहस्थ के घरके जलवत् है, अरु चक्रवर्त्तीका आनन्द पानपात्र (गिलासादिक) के जलवत्है। इसप्रकार महानदके जलसे लेके पानपात्रके जल पर्यन्त अंशाअंशी भावकी तारतम्यतासे एक महासागर के जल का अंश व्याप रहा है, अरु उसीही के आश्रय सर्व अपने नाम रूपादिसहित अपने व्यापारको सिद्धकर रहे हैं। तैसेही एक परमानन्दका अंश से हिरण्यगर्भ के आनन्द से लेके चक्रवर्ती के आनन्द पर्यन्त फैल रहाहै अरु उसहीके आश्रय सर्व आनन्दित हुये अपनी २ उपजीविका को करते हैं॥ अथवा जैसे एक सैंधव लवणकी आकर है तिसके लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो आकर से बाहर पर्वत के समान एकत्र करके रक्खा है, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो सहस्रावधि उष्ट्र शकटों में भरके महावणिज लिये जाते हैं, अरु तिस लवण का कोई एक अंश वो लवण है जो दीर्घ नगरों में वैश्यों ने अपने स्थानों में भर रक्खा है, अरु तिस लवण का कोई एक अंश वो लवणहै जोलघु वैश्यलोक अपनी दूकानपर विक्रय करते हैं, अरु तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो गृहस्थ ने अपने गृहके दीर्घपात्रमें भरा है, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो गृहस्थ के यहां नित्य खर्च के अर्थ लघुपात्रमें कियाहै, तिस लवणका कोई एक अंश वो लवण है जो दाल शाकमें पड़ताहै, तिसलवणका कोई एक अंशवो लवणहै जो एक मनुष्य के भोजनमें आवता है। इसप्रकार उस आकरके लवणका कोई एक अंश आकर के बाहर पर्वताकार लवणसे लेके एक मनुष्य

के भोजन पर्यन्त के लवणपर्यन्त व्याप्त होरहा है अरु उसही के आश्रय सर्व अपनी उपजीविका को करते हैं ॥ हे सौम्य! तैसेही आनन्दघन परमानन्दका कोई एक अंश हिरण्यगर्भका आनन्द है तिसका शतवांभाग प्रजापति (विराट्) का आनन्द है, तिस प्रजापति के आनन्दका शतवांभाग बृहस्पतिका आनन्दहै, तिस बृहस्पतिके आनन्दका शतवांभाग इन्द्रका आनन्दहै, तिसइन्द्रके आनन्दका शतवांभाग वसुआदि देवताओंका आनन्दहै,तिसका शतवांभाग कर्म्मज देवोंका है, तिन कर्म्मज देवों के आनन्दका शतवांभाग आजानजदेवोंकाहै, तिसआजानज देवके आनन्दका शतवांभाग पितरोंका आनन्द है, तिस पितरों के आनन्दका शतवांभाग देवगन्धर्वोंका आनन्दहै, तिस देवगन्धर्वोंके आनन्दका शतवांभाग मनुष्य गंधर्वोंका आनन्दहै, तिसमनुष्य गंधर्वके आनन्दका शतवांभाग चक्रवर्ती राजाका आनन्दहै । हे सौम्य! उक्त प्रकारपरमानन्दका कोईएकअंशहिरण्यगर्भकेआनन्दसे चक्रवर्ती केआनन्दपर्यन्त अंशाअंशीभावसे फैलरहाहै अरु उसहीआनन्दके आश्रय हिरण्यगर्भसे पिपीलिका पर्यन्त सर्वभूत अपनी उपजीविकाको करते जीवतेहैं । हेसौम्य! जिसधर्मात्मा परमपवित्र श्रोत्रिय पुरुषनेवेदशास्त्र करके हिरण्यगर्भकेपदसे लेकेतृणपर्यन्त सर्वकार्य मात्र जगत्को सम्यक्प्रकार नाशवान् अनित्य बन्धनका कारण जाना है अरु तिस ज्ञानकरके सर्वकी कामना अपने चित्त से अशेष त्याग कियाहै, सो पुरुष यहांही अपने आपविषे उस परमानन्दको साक्षात् अनुभव करता है । अरु जिस धार्मिक पवित्र शास्त्रज्ञ श्रोत्रिय पुरुष ने साधारण मनुष्यों के विषय भोगकी कामनाका त्यागकिया है सो चक्रवर्ती के आनन्दको भोगता है, अरु जब चक्रवर्ती के आनन्द की कामनाका त्याग करताहै, तब तिससे शतगुणा अधिक मनुष्य गन्धर्व का आनन्द यहां इसही शरीरमें भोगता है, अरु जब मनुष्य गन्धर्व के आनन्द भोगकी कामनाको त्यागता है तब तिससे शतगुणा अधिक देवगन्धर्वके

आनन्द को यहां इसही शरीरबिषे भोगता है, अरु जब तिसकी कामनाको त्यागताहै तब पितरों के आनन्दको भोगताहै। इस प्रकार पूर्व पूर्व के आनन्द भोगकी कामना के त्याग से उत्तरोत्तरके आनन्द को भोगता है, अरु जब हिरण्यगर्भ के भी आनन्द भोगकी कामनाको अशेष त्यागता है, तब साक्षात् परमानन्दको यहांही अपनेआप बिषे यथार्थ अनुभव करता है। ताते अभिप्राय यह है कि ज्योंहीं ज्यों कामना का त्याग अरु प्रवृत्ति से निवृत्ति होती है, त्योंहीं त्यों आनन्दकी आधिक्यता है, ताते मुमुक्षुको कामनाका अशेषत्यागही परमानन्दकी प्राप्तिका मुख्य सर्वोत्कृष्ट साधन है। ॥ अरु। परमानन्दको। अद्वैतरूप होनेसे यहां आनन्द अरु आनन्दी का विभाग नहीं ॥ सो यह विचारका फल अब समाप्त करते हैं ॥ "।सयश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये, सएकः"। (सो जो यह पुरुष बिषे है, अरु जो यह सूर्यबिषे है, सो एक है) अर्थात् "सयश्चायंपुरुषे" सो यह पुरुषबिषे, । ऐसा जो कहा सो। यहां परमव्योमगत गुहा बिषे स्थित हुआ आकाश से आदि लेके अन्नमय पर्यन्त कार्य को सृजिके तिसही के अर्थ। वा तिसही बिषे। पीछे प्रवेशको पावता है। वा करता है। ऐसा जो परमात्मा, यह। वा यह शब्द करके लक्षित जो यह परमात्मा। "सयः"।सो जो,। इसप्रकार कहाहै, सो एकहै। अरु जो यह सूर्यबिषेहै, अर्थात् जो श्रोत्रिय कहिये ब्रह्मनिष्ठ को प्रत्यक्ष कथन किया परमानन्द है, कि जिसके एक देशके ताईं ब्रह्मा आदिक भूत सुख के योग्य हुये उपजीविका को करते हैं, यह "यश्चासावादित्ये" सो जो यह सूर्यबिषे है, इसप्रकार कहाहै,सो एकहै। इसप्रकार जिस [बिचारसे "निरतिशयानन्द ब्रह्मास्मीति" निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्ममैंहूं,। इसप्रकार निर्द्धार किया, तिसकी निष्काम पुरुषके प्रत्यक्षके कथन से अभेदकी सिद्धि है। अरु जिसकरके परका आनन्द परको प्रत्यक्षहोवेनहीं।अर्थात् एकका आनन्द दूसरे को भासे नहीं। इसकरके निरतिशय आनन्दरूप ब्रह्मही तूहै। जी-

वका तत्त्व " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परमब्रह्मको पावता है, इसप्रकार कहने को आरम्भकिया, अरु विचार से सिद्ध हुआ, सो अब समाप्त करिये है] विचार करके सिद्ध वस्तुको भिन्न देशगत घटाकाश अरु महदाकाश की एकतावत् उपसंहार करिये है [सूर्य, ग्रहणके अधिदैवक उपाधिरूप अर्थ के कहने के अनिच्छितपने के देखावने को प्रश्नको प्रकट करते हैं। यहां यह अर्थ है कि "। य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषोयश्चायं दक्षिणेऽक्षम् पुरुषः"। जो यह इस मण्डल बिषे पुरुष है अरु जो यह दक्षिण नेत्रबिषे पुरुष है, । इत्यादिरूप अन्य श्रुतिबिषे सूर्यमण्डल बिषे स्थित पुरुषकी दक्षिणनेत्र बिषे स्थित पुरुष से एकता के कथन हुये दक्षिण नेत्रका कथन युक्त है [ननु, तिसके निर्देशहुये" सयश्चायं पुरुषे " सो जो यह पुरुष विष है, । ऐसे अविशेष करके अध्यात्म रूपका कथनयुक्त नहीं, परन्तु " यश्चायं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषः " जो यह दक्षिण नेत्रबिषे पुरुषहै, । ऐसा कथन युक्त है, क्योंकि अन्यश्रुतिबिषे प्रसिद्धहै ताते, । सो] अध्यात्म अरु अधिदैवतरूप जो लिंगात्मा है सो उपासना के कहने की इच्छाके हुये तैसे होता है । अरु यहां सो उपासना कहने को इच्छित नहीं, इसप्रकार कहते हैं । यहां यह अर्थ है कि जो उत्कृष्ट उपाधि बिषे प्रतिबिम्ब को पाया है सोई शिर अरु हस्त आदिक । अवयव । वाले पुरुषरूप निकृष्ट उपाधि बिषे प्रतिबिम्ब को पावता है, इसप्रकार परमानन्दकी अपेक्षासे समताहै । अरु विशिष्ट चैतन्योंकी स्वभाव से एकता कहने को इच्छित है, इसप्रकार जो जानता है सो निरतिशय आनन्द को पावता है [बनेनहीं, परमात्मा के अधिकार से । जिसकरके " अधिकृतोऽदृश्येऽनात्म्ये " " भीषास्माद्वातः पवते " " सैषा नन्दस्यमीमांसेति " इस अदृश्य अरु अनात्मा बिषे । इससे भयकरके वायु चलता है । सो यह आनन्द का विचार है, । इन श्रुतिवाक्यों करके यहां परमात्माही अधिकार को पाया है । अरु अकस्मात् प्रसंगबिषे अप्राप्त पदार्थ कहनेको युक्त

नहीं, अरु यहां परमात्माका विज्ञान कहनेको इच्छितहै, ताते "स एकः" सोएक है, । इसवाक्य करके परमात्माही कहाहै ॥ ननु, यहां आनन्दका विचार प्रसंगविषे प्राप्तहुआ है, तिसकाभी फलसमाप्त करने को योग्य है, तहां कहते हैं, अभिन्न स्वाभाविक जो आनन्द है सो परमात्मा ही है, विषय विषयी भावसे । जनित आनन्द । नहीं, इस प्रकार सो विचारका फल समाप्त कियाहै । अरु " स यश्चायं पुरुषे" सो जो यहपुरुष बिषेहै, । अरु "यश्चासावादित्ये, स एकः" जो यह सूर्यबिषे है सो एकहै, । इसप्रकार भिन्नअधिकरण बिषे स्थित वस्तुके भेदके निषेधसे जो यह कथन किया है सो निश्चय करके तिसके अनुसार ही है ॥ ननु ऐसेहुये भी सूर्यरूप विशेषण (उपाधि) का ग्रहण व्यर्थ है, सो व्यर्थ बनेनहीं, क्योंकि सूर्य के ग्रहणको उत्कर्ष अरु अपकर्ष के निषेधरूप अर्थवान्-पनाहै ताते । अरु जब मूर्त्त अरु अमूर्त्तरूप द्वैतका जो सूर्यकेअन्त-र्गत उत्कर्ष है, सो जब पुरुषगत भेदके निषेधसे परमानन्द की अपेक्षा करके समहोवे है, तब तिस गतिको प्राप्तहुये पुरुष को कोई भी उत्कर्ष वा अपकर्ष नहीं है, एतदर्थ " अभयं प्रतिष्ठां विन्दते" अभय प्रतिष्ठा को पावता है, । यह पूर्वोक्त अर्थ घटित होता है ॥ इसप्रकार [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक उत्तरग्रंथ को प्रकट करते हैं [इस वल्ली के षष्ठ अनुवाक बिषे ,ब्रह्म है वा नहीं है, इसप्रकारका कथन कियारहा जो प्रश्न सो,'एक, कार्य, रसलाभ, प्राणन, अभय, स्थिति, अरु भय दर्शनरूप युक्तियों से, सो आकाशादिकों का कारण ब्रह्म ही है, इस प्रकार करके । उक्त प्रश्नगत संशयको । दूरकिया । अरु अन्यदोनों ' विद्वान्, अरु ,अविद्वान्, को ब्रह्मकी प्राप्ति अरु अप्राप्ति होती है, तिसको विषय करनेवाले प्रश्नहैं । तहां "विद्वान् समश्नुतेसमश्नुत इति" विद्वान् मरणको प्राप्त होके इस ब्रह्मरूप लोक को प्राप्तहोता है वा नहीं प्राप्तहोता, । इसप्रकारका अन्तका प्रश्नहै तिसकासमा-धान करनेको कहते हैं । अरु मध्यका जो प्रश्न है सो अन्तके

प्रश्नके दूरकरने के साथही दूरहोवेगा, एतदर्थ तिसकेदूरकरनेको प्रयत्न करते नहीं " (सय एवं वित्, अस्माँल्लोकात्प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति " (जो ऐसे जानताहै सो इसलोकसे निरपेक्षहोके इस अन्नमय आत्माको उल्लंघन करता है, इस प्राणमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस मनोमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस विज्ञानमय आत्माको उल्लंघन करताहै, इस आनन्दमय आत्माको उल्लंघन करताहै) अर्थात् जो कोई एक उक्त प्रकार का, उत्कर्ष अरु अपकर्ष से रहित अरु, सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप ब्रह्म मैंहूं, इसप्राकार जानता है सो दृष्ट अरु अदृष्ट विषयका समुदायरूप जो यह (संसाराख्य) लोकहै तिसलोक से निरपेक्षहोके कथनकिये इनअन्नमय (कोशरूप) आत्माको उल्लंघन करके (अनात्मा जानके वा अन्नमय रूप आत्माही जानके) अर्थात् विषयके समूहको पिंडरूप अन्नमयसे भिन्न देखतानहीं, किन्तु सर्व को स्थूलभूत अन्नमय रूप आत्माही देखता है। ताते भीतर इस सर्व अन्नमयरूप आत्माविषे (घटमें पवनवत्) स्थित अभिन्न प्राणमय (कोशरूप) आत्माको उल्लंघन करता है। पीछे इस मनोमय (कोशरूप) आत्मको उल्लंघन करता है। पुनः इस (मनोमय के अन्तर जो) विज्ञानमय (कोशरूप) आत्मा है (तिसको) उल्लघन करता है तिसके पश्चात् जो (विज्ञानमयके अन्तर आनन्दमय कोश है तिस) इस आनन्दमयरूप आत्माको उल्लंघन करताहै । तिसके पश्चात्, अदृश्य, अनात्म्य, अनिरुक्त, अनिलय, ब्रह्म विषे अभयस्थितिको पावताहै ॥ यहां यह विचारकरनेयोग्यहै, कि यह इसप्रकारका जाननेवाला कौनहै, वा सो कैसे उल्लंघन करता है, अरु सो उल्लंघन कर्त्ता क्या परमात्मासे (भिन्न किया है, अथवा सोई है, अरु तिससे [अंशयुक्त अरु प्रयोजनसहित वस्तु विचार

के योग्य होती है, अरु यहां किसपक्ष बिषे कौन दोष है वा कौन लाभ है, यह कहते हैं] क्याहै, जो ऐसा कहोगे सो परमात्मासे भिन्नहै, तब "तत् सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्" "अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति, न स वेद" "एक मेवाद्वितीयम्" "तत्वमसि" तिसको सृजके तिसही के अर्थ पीछे प्रवेश करताहुआ। यह अन्यहै मैं अन्य हों इसप्रकार जो जानताहै, सो सम्यक् प्रकार जानता नहीं। एकही अद्वितीय है। सो तू है। इत्यादि बहुतसी श्रुतियों से विरोध आवता है॥ अरु जो कहोगे कि यह सोई है, तब "आनन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति" आनन्दमयरूप आत्मा को उल्लंघन करताहै, एकही को कर्म (विषय) भाव अरु कर्त्ता (विषयी) भाव इनका असंभवहोवेगा। अर्थात् एकही को कर्म अरु कर्त्तापना वा विषय विषयीपनेका असंभवहै। यद्यपि दोनोंप्रकारसे प्राप्तहुआ जो दोष सो निवारण करनेको अशक्यहै, ताते विचारकाकरना व्यर्थ है, तथापि उनदोनों में से एक पक्षबिषे दोषकीअप्राप्ति है, वा तीसरे अदृष्ट पक्षबिषे दोषकी अप्राप्ति है, अरु सोई शास्त्रार्थ है, ताते विचारका करना व्यर्थ नहीं, किंतु तिसशास्त्रार्थ के निर्द्धारणार्थ होने से यह विचार प्रयोजनवालाही है॥ इसप्रकार जब वादीने कहा तब सिद्धान्ती कहे है, प्राप्तहुआ जो दोष सो निवारण करने को अशक्यहै। अरु दोनों में से किसी एकके पक्षके वा तीसरे अदृष्ट पक्षके निश्चय किये हुये चिन्तन व्यर्थहोवेगा यह तेरा कथन सत्य है, परन्तु सो अबतक निश्चय कियानहीं याते तिसके निश्चयरूप अर्थवाला होने से यह चिन्तन अर्थवालाही है अरु सफल है॥ यद्यपि शास्त्रके निश्चय रूप अर्थवाला होने से यह चिन्तन अर्थ वालाही है, अरु तू चिन्तन करता है यह कथन सत्य है, परन्तु तिसको क्यों निर्णय करतानहीं, अरु निर्णय करने को योग्य नहीं, इसप्रकारका वेदका वचन नहीं है। तब बहुत प्रतिपक्षों के होनेसे अरु वेदार्थ के परायण होने से एकताका निर्णय तू वादी कैसे करतानहीं, अरु जिसकरके बहुत नानाभावके वादी वेदते बाह्य

तेरे प्रतिपक्षी हैं, याते मेरी आशंका को निर्णय करतानहीं, इस प्रकार मैं जानताहौं [यहही विचारके आरम्भ करनेवाले मुझको कल्याणहै, जो तू मुझको, तुम एकत्व वादीहो, इसप्रकार कहता है । अरु अप्राप्य वस्तुका वादी होनेसे एकताके वादीको भी एक वस्तु सम्मत होनेसे अरु अनेक वस्तुके वादी बहुत मेरे प्रतिपक्षी हैं । इस अर्थ से भी मेरा कल्याणहै, क्योंकि अनेकताको अन्योन्याश्रयादिक दोषकरके दूषितपना है ताते, अरु पूर्वपक्षके निषेध से सिद्धान्तके संभव से यह अर्थ होताहै] तहां सिद्धान्ती कहे है, यहही मेरा कल्याणहै कि जो मुझ एकके सम्बन्धीको अनेक का सम्बन्धी अरु बहुत प्रतिपक्षवाला कहताहै, इसकरके मैं सर्वको जय करोंगा अरु चिन्तन (विचार) को आरंभ करों हौं, सोई [विचारके आरम्भको प्रतिपादन करके अब सिद्धान्तके कहनेका आरंभकरेहैं, यहां यह अर्थ है कि, इसप्रकार जाननेवाला पुरुष उपाधिकृत भेदसे भिन्नहुआभी परमात्माही होताहै] सो होता है, क्योंकि तिसके भावका कहना इच्छितहै ताते । अरु " ब्रह्मविदाप्नोतिपरम् " ब्रह्मवेत्ता परब्रह्मको पावताहै, । इस श्रुतिवाक्य करके तिसके विज्ञान से यहां परमात्मभाव कहने को इच्छितहै । अरुजिसकरकेअन्यकोअन्यभावकीप्राप्तिसंभवेनहीं,इसहीसेसोउल्लंघनकर्त्तापरमात्माहीहै ॥ ननु,तिस(ब्रह्मवेत्ता)कोभी तिसपरब्रह्म(के भावप्राप्तिअघटितहै।सोकहनाबनेनहीं,क्योंकि तिस(विद्या)को अविद्याकृत अनात्माके निषेधरूप अर्थवान्पनाहै ताते । अरु ब्रह्मविद्याकरके जो स्वस्वरूपकीप्राप्ति उपदेश करते हैं, सो आत्मापने करके आरोपितअनात्मरूप अविद्याकृत अन्नमयादि विशेषआत्मा के निषेधार्थहै॥ अर्थात् 'अन्नमयआत्मा'यहजोवाक्यहै तिसमें जो अन्नमयपद विशेषहै सो उसको आत्मत्वके निषेध बोधार्थ है। ॥ [अविद्याकरके आरोपित अब्रह्मभावकी निवृत्तिही ब्रह्मकीप्राप्ति (ऐसा) कहने को इच्छितहै । तहां फलवाक्यका ऐसे अर्थ करके युक्तपना कैसे जानिये है, अरु अप्राप्त वस्तुकी प्राप्ति होवेनहीं ।

इसप्रकार वादी [शंका] कहे है] जो ऐसा कहे कि इसप्रकार के अर्थ करके युक्तपना कैसे जानते हो, तहां श्रवण करो, [यहांऔर प्रकार से भी वादी असंभव को शंका करता है । यहां यह अर्थहै कि गमनकर्त्ता को स्वरूपसेही ग्रामरूपता का अभाव होनेसे भी जैसे मार्गके ज्ञानका उपदेश सार्थक है ,तैसे जीवको भी स्वरूप से ब्रमरूपता के अभाव होनेसे भी विद्याका उपदेश सार्थक है, क्योंकि अभ्यासद्वारा [विद्या] ब्रह्मकी प्राप्तिका हेतु है ताते] विद्यामात्रके उपदेश से इसप्रकारके अर्थकरके युक्तता जानिये है, अरु अविद्याकी निवृत्ति रूप विद्या का कार्य देखा है, सो आत्मा की प्राप्ति विषे विद्यामात्र रूप साधन यहां उपदेश किया है ॥ अरु जो कहे कि मार्गके विज्ञानके उपदेशवत् तिसके आत्मभाव विषे विद्यामात्र रूपसाधनका उपदेशहेतुहै, क्योंकि अन्यदेशकी प्राप्ति विषे मार्गके विज्ञानके उपदेशके देखने से, अरु जिसकरके ग्राम ही गमन कर्त्ता (चलने वाला) नहीं है, इसकरके सो मार्गके ज्ञान का उपदेश सफल है, तैसे जीव स्वरूप से ब्रह्म नहीं है, तथापि विद्या का उपदेश आभास द्वारा ब्रह्मकी प्राप्तिकाहेतु होनेसे सफल है, सो कथन बने नहीं, क्योंकि दृष्टान्त अरु सिद्धान्त की विषमताहै ताते । अरु जिसकरके जैसे तहां ग्रामको विषय करनेवाला विज्ञान नहीं उपदेश करते हैं, किन्तु तिस ग्रामकी प्राप्ति के मार्गको विषय करनेवाला विज्ञान उपदेश करते हैं, । तैसे यहां ब्रह्मके विज्ञान करके [ब्रह्मसे] भिन्न अन्य साधनको विषय करने वाला विज्ञान नहीं उपदेश करते , एतदर्थ उपदेश की विषमतासे मार्गविज्ञानके उपदेशका दृष्टान्त विषमहै ॥ अरु जो ऐसा कहेकि, उक्त कर्म्मादिक साधनकी अपेक्षावाला ब्रह्मका विज्ञानरूप साधन परब्रह्मकी प्राप्तिविषे उपदेश करतेहैं, सो कहना बने नहीं, क्योंकि "नित्यत्वान्मोक्षस्येति" मोक्षको नित्यताहै ताते, । इत्यादि वाक्यों करके पूर्व निषेधकियाहै ताते । अरु "तत् सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" तिसको सृजके तिसके अर्थ पुनः पीछेसे

प्रवेश कर गाहुआ, । यह श्रुति कार्यकी तिस (ब्रह्म) रूपताको देखावेहै। अरु अभयस्थितिके संभवसे, अरु जिसकरके जब विद्वान् स्वस्वरूपसे अन्यको देखतानहीं, इसही करके अभय स्थिति को पावता है, इसप्रकार होय, क्योंकि भयके हेतु अन्यका अभाव है ताते। अरु [जब विद्वान् से अन्यभयका हेतु ईश्वर नहीं है, तब भिन्न ईश्वरके ज्ञानकी कौनगति (अर्थात् कौन व्यवस्था) है, यह आशंका करके कहते हैं। यहां यह अर्थहै कि कल्पित भेद सहित रूपसे ईश्वरको अविद्यासे रचिततारूप मिथ्यापनेकेहुये विद्यासे तिसविषे मिथ्यापनेका ज्ञान संभवे है "(ईश्वरो मम प्रशास्तेति ") मेरा नियामक ईश्वर है, । यह ज्ञान जिसकरके मिथ्याहै, इसही करके तिस ईश्वरकी अरु मेरी वास्तवकरके एकरूपताही है। इसप्रकार विद्वान्की दृष्टिसे उपाधिविशिष्ट चैतन्यरूप ईश्वरका मिथ्यापना है] अन्य ईश्वरको अविद्याकरके रचितता के हुये विद्यासे तिसके अवस्तुहोने रूप भावके दर्शनकासंभवहै। जैसे दूसरे चन्द्रमाका जो असत्यपना (वा सत्यपना) है सो तिमिर दोष से रहित पुरुषकरके ग्रहणकिया जाता नहीं तैसे ॥ [अब वादी दृष्टान्तकी विषमताकी शंका करताहै। यहां यह अर्थ है कि 'जैसे चन्द्रमाकीएकताके दर्शनसे दूसराचन्द्रमाजानते नहीं, ऐसा यहां नहीं है किंतु यहां ब्रह्मवेत्ताकरके भिन्नईश्वर जानियेहै, क्योंकि भोजनादिककी प्रवृत्तिके असंभव करके जीवन्मुक्तको भी नियमित प्रपंचकी प्रवृत्तिका अंगीकार है ताते, अरु प्रपंच के नियमको ईश्वरके आधीन होने से अंगीकार है] अरु जो कहै इसप्रकार नहीं ग्रहण करते हैं, [यद्यपि जाग्रत्विषे विद्वानको भिन्न आभासका दर्शन होवेहै, तथापि वो भयका कारण नहींहै। अरु मायावी पुरुष स्व रचित व्याघ्रसर्पादिकोंके आभास दर्शन से भय को पावतानहीं। अरु अविद्वान्को भी भिन्न वस्तुका दर्शन सदाहै नहीं, इसप्रकार कहते हैं] सो बनेनहीं क्योंकि सुषुप्तिवाले अरु समाधिवाले पुरुषको तिस ईश्वरका अग्रहणहै ताते [सुषुप्तिविषे

भिन्नवस्तुके अग्रहणके सद्भावका साधक नहीं है, इसप्रकार पूर्व वादी कहताहै। यहां यह अर्थ है कि जैसे बाणका बनानेवाला बाण विषे आसक्त मनवाला होता है, सो तिस आसक्तिसे तिस बाणसे भिन्न विद्यमान वस्तुको भी देखता नहीं, तैसे सुषुप्तिविषे भी सुखमें आसक्त होनेकरके विद्यमानहुये भी द्वितीय वस्तुको देखता नहीं परन्तु तिसके अभावसे नहीं] अरु जो कहे कि सुषुप्ति वाले पुरुषविषे जो अन्यका अग्रहणहै सो अन्यकार्यविषे आसक्त हुये पुरुषवत्‌है,॥ [अन्यवस्तुविषेआसक्तपुरुषको तिससे।कि जिस में आसक्त है। भिन्न वस्तुके अदर्शन हुये भी तिसका अदर्शनही है। अरु सुषुप्तिविषे भी "न किञ्चिदज्ञासिषमिति" मैं कुछ भी न जानताहुआ, इस प्रतीतिसे सुखको भी आत्माके तादात्म्यसे अरु अज्ञानकी भिन्नताके अकथनसे, वास्तविक द्वितीयवस्तुके अभाव सेही द्वितीय वस्तुका अग्रहण है। ऐसा कहते हैं] सो बने नहीं क्योंकि सुषुप्तिविषे सर्वका अग्रहण है ताते [जब सुषुप्तिविषे अप्रतीतिसे द्वैतका असद्भाव है, तब जाग्रत् अरु स्वप्नमें प्रतीतिके होनेसे द्वैतकासद्भाव क्यों न होवेगा। इसप्रकार वादी कहताहै] अरु जो कहै कि जाग्रत् अरु स्वप्न विषे अन्यके ग्रहणसे तिसका सद्भावही है। [अनात्मादिकों विषे आत्मभावादिकों की बुद्धि अविद्याहै, तिसके होतेही द्वैतकी प्रतीति से प्रतीतिमात्र द्वैत के सद्भावकी साधक नहीं है, अन्यथा शुक्तिगत रूप्यादिकोंके भी सद्भावके प्रसंगसे] सो कहना बनेनहीं क्योंकि तिसको अविद्या करके रचितपनाहै ताते, जाग्रत् अरु स्वप्नविषे जो अन्यका ग्रहण होताहै सो अविद्याकृतही है क्योंकि अविद्याके अभावहुये तिनका अभाव है ताते॥ [यहां पूर्ववादी कहे है। इसका यह अर्थहै कि सुषुप्तिविषे द्वैतका अग्रहण भी लयरूप अविद्याका कियाहै परन्तु भेदके अभावका कियानहीं।एतदर्थ सुषुप्तिविषे सर्वात्मा ब्रह्मभूत हुआ जीव अपनेसे भिन्न वस्तुको तिसके अभावसेही देखतानहीं, इसप्रकार जो तुमने कहा सो असत्यहै] अरु जो कहे कि सुषुप्ति

बिषे जो अग्रहणहै सोभी अविद्याका कियाहै, [विद्यमानहुये भी द्वैतका अविद्याके वशसे अग्रहण होताहै, इस तेरे वचनका क्या अर्थ है सो कहो । अग्रहण क्या ग्रहणका प्रागभाव होताहै,अथवा अप्रकाशका आरोपहै, किंवा अग्रहण के आकारसे अविकार को प्राप्तहुये स्वरूपकी स्थितिहै, तिनमें जो प्रथमपक्ष कहै तो सोबने नहीं, क्योंकि प्रागभावका अनादिपना अंगीकारहै ताते, अरु जो कदापि द्वितीयपक्ष कहै तो सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्य (सांख्य) वादी करके द्वितीय (सुषुप्तिगत चैतन्य) वस्तुके स्वप्रकाशतारूप स्वभावके अंगीकारसे अरु अप्रकाशके आरोप के अनंगीकारसे, अरु प्रकाशके आरोपहुये सर्वकी स्वप्रकाश ब्रह्मरूपता के अंगीकार करनेकी योग्यतासे हमारे इष्टकी सिद्धि के प्रसंगसे । अरु जो तृतीयपक्ष कहे तो सो भी बने नहीं, इसप्रकार अब कहतेहैं । यहां यह अर्थ है कि अविकारको प्राप्तहुये स्वरूपकी जो स्थिति है सो अविद्याका कार्य नहीं है क्योंकि उत्पत्ति अरु विनाशकरके रहितहै ताते] सो बने नहीं क्योंकि तिसको स्वाभाविकपनाहै ताते । [इस उक्त अर्थकोही स्पष्ट करतेहैं, यहां स्वतन्त्रता की सिद्धिके अभिप्रायसे सन्मात्र वस्तु इष्ट कहते हैं, परन्तु वैशेषिकके अभिप्रायसे ऐसे जानना । अरु यहां जो अविक्रियाकही है सो विक्रियाके अभाव करके लक्षणासे जानने योग्य स्वरूपहै, क्योंकि तिसको निरपेक्ष सिद्धिवालापनाहै ताते, अरु ग्रहण आदिक विक्रिया जोहै सो स्वाभाविक नहीं है, क्योंकि तिसको स्फटिकके रक्तवर्णवत् पर की अपेक्षावाली होनेसे । अरु अब तो निरपेक्ष सिद्ध होनेसे अविक्रियपनाकहा, तिसको स्पष्ट करते हैं] अरु जिसकरके इष्ट कहिये ' सत्वस्तु ' का स्वरूप अविक्रिया है क्योंकि अन्यकी अपेक्षासे रहितहै ताते । अरु जो विक्रिया है सो तिसका स्वरूप नहीं क्योंकि विक्रिया अन्यकी अपेक्षावाला है ताते । अरु जिसकरके कारककी अपेक्षावाली वस्तु परमार्थ से सत्वस्तुका स्वरूप नहीं, अरु जो विशेषहै सो कारककी अपेक्षा

वालाहै, अरुविशेषही विक्रियाहै, अरु जाग्रत् स्वप्नका जो ग्रहणहै सो विशेषहै। अरु जो जिसका अन्यकी अपेक्षा से रहित स्वरूप है सो तिसका यथार्थ स्वरूपहै, अरु जो अन्यकी अपेक्षावाला है सो यथार्थ स्वरूपनहीं क्योंकि अन्यके अभावहुये तिसका अभावहै ताते। एतदर्थ स्वाभाविक होनेसे सुषुप्तिविषे अग्रहण है सो जाग्रत् अरु स्वप्नवत् विशेष नहीं। [इसप्रकार सिद्धान्ती अपने मतबिषे चैतन्यकी सत्तासे भिन्नभयके हेतु ईश्वरके अभावसे विद्वान्को अभयता संभवे है, इसप्रकार प्रतिपादनकरके, अब द्वैतवादिनके पक्ष बिषे तिस अभयके असंभवको कहे है। यहां यह भावहै कि अन्यवस्तुकेस्वरूपके स्थितहुये वा नष्टहुये सत्वस्तुका ध्वंस होवे नहीं क्योंकि व्याघातते, अरु तिसकी अनवस्था से] अरु पुनः जिनके मतमें ईश्वर आत्मासे अन्य (भिन्न) है अरुकार्य अन्य है तिनको भयकी निवृत्ति होवे नहीं, क्योंकि भय जो है सो अन्य वस्तुके निमित्तवाला है ताते, अरु अन्य वस्तु के स्वरूपसे स्थितहुये वा नष्टहुये सत्वस्तुके स्वरूपका नाश होवेनहीं क्योंकि व्याघात अरु अनवस्था दोषहोता है ताते। [तब भयकी उत्पत्तिके हुये असत्ही अभयकी प्राप्ति होवेगी, यह आशंका करके कहतेहैं] अरु असत् वस्तु से आत्माका लाभ होतानहीं॥ जो [भिन्न ईश्वरको सद्भावमात्रसे भयकी हेतुता नहीं है, किन्तु धर्मादिक की अपेक्षावालेको भयकी हेतुताहै, एतदर्थ तिन धर्मादिकके अभाव से अभय होवेगा, यह आशंकाकरके, सिद्धान्ती यह सांख्यवादी करके कहनेको योग्य नहीं, क्योंकि सत्रूप अधर्मादिकके भी अत्यन्त असद्भावके अंगीकारसे। अरु नैयायिक आदिकों के मत बिषे भी सत् हेतुबिषे कार्यके अत्यन्त अभावके निश्चय न होने से तिन्होंकरके भी यह कहनेको योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं] कहे अपेक्षा सहित अन्य वस्तुको भय का हेतुपना है, सो बने नहीं, क्योंकि तिसको भी तुल्यता है ताते। अरु जो अधर्मादिकों का अनुयायी रूप नित्य वा अनित्य निमित्तको अपेक्षा करके अन्य

वस्तु भयका कारण होती है,तिसप्रकारके तिसको भी स्वरूपकी हानिके अभावसे भयकी अनिवृत्ति होती है वा आत्माकी हानि होवे है। अरु सत् [किंवा असत् रूप अधर्मादिक जब असत् भाव को प्राप्तहोवे हैं, तब आत्माबिषे भी कौन विश्वास है, ताते स्वभाव की विपरीततारूप जो असत् वस्तुको असद्भाव की प्राप्ति है, सो किसी के भी मत बिषे घटे नहीं] अरु असत् को परस्परकी प्राप्तिके हुये सर्वत्र अनास्थाही होवेगी। अरु एकताके पक्षबिषे सत्रूपनिमित्तवाले संसार को अविद्याकरके कल्पित होने से दोष नहीं है, एतदर्थ तिमिरदोषवाले पुरुष करके देखेहुये द्वितीयचन्द्रको स्वरूपका लाभ वा नाश नहीं है ॥ [अविद्यासे कल्पित जो भय सो विद्या से निवृत्त होवे है, इसप्रकार कहनेवाले तुम्ह सिद्धान्ती के मतबिषे विद्या अरु अविद्या को आत्माका धर्मपना वाञ्छित है । ताते धर्मकी उत्पत्ति अरु विनाशके हुये आत्मा को विकारीपना अरु अनित्यपना प्राप्त होवेगा, इसप्रकार आशंका करते हैं] जो कहै, विद्या अरु अविद्या को तिस आत्माका धर्मपना है, सो बने नहीं, क्योंकि (विद्या अविद्या) प्रत्यक्ष है ताते, अरु अन्तःकरण बिषे स्थित जो विवेक अरु अविवेक, सो रूपादिकोंवत् प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं । अरु प्रत्यक्ष विद्यमान रूपको द्रष्टाका धर्मपना नहीं है, अरु जो अविद्या है सो अपने अनुभव से मैं ढूंढूंहूं मुझको ज्ञान अविचारित है, इसप्रकार निरूपण करते हैं, तैसेही विद्यारूप विवेक अनुभव करते हैं, अरु आत्मा की विद्याको जान के अन्योंके अर्थ उपदेश करते हैं, अरु तैसे अन्य अधिकारी निश्चय करे हैं, ताते नामरूप पक्षवाले की ही विद्या अरु अविद्या अरु नामरूप है, अरु नामरूपबिषे निर्वाह करीहुई यह विद्या अरु अविद्या आत्मा के धर्म नहीं, क्योंकि " यदन्तरात्तद्ब्रह्मेति " जो मध्यमें है सो ब्रह्म है, इस अन्य श्रुति से । अरु [चेतनमात्र के अधीन अनादि अनिर्बचनीय जो अविद्या है, सो अन्तःकरण रूपसे प-

रिणामको पावती है। अरु सो अन्तःकरण तामस अरु सात्त्विक अवस्था के भेदसे भ्रान्ति ज्ञान अरु सम्यक् ज्ञान के आकार से परिणाम को पावता है। तिस अन्तःकरण बिषे प्रतिबिम्ब को पाया चैतन्य अपनी उपाधिके धर्म्म से ही भ्रांत दिवस अरु रात्रिवत् कल्पितहै, परमार्थ से विद्यमान नहीं॥ जो पूर्व कहा था कि अभेदके हुये „ एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति „ इस आनन्दमय आत्माको उल्लंघन करके जाताहै,।इसप्रकार एकही परमात्मा को कर्मभाव अरु कर्त्ताभावका असंभवहै, सोबनेनहीं, क्योंकि उल्लंघन करने को विज्ञानमात्ररूपता है ताते। अरु जलौका (जोंकनामक जलजन्तुविशेष) आदिकोंवत् उल्लंघन करना यहां उपदेशकरते नहीं किन्तु विज्ञानमात्ररूप यहां उल्लंघन करनेकी श्रुतिका अर्थ है॥ ननु „उपसंक्रामतीति„ उल्लंघन करके जाता है। इस प्रकार मुख्यही उल्लंघन करना श्रवण करते हैं, इसप्रकार जो कहे तो सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्नमयबिषे तिस उल्लंघन करनेका अदर्शन है ताते। अरु अन्नमय को उल्लंघन करनेवाले का जलौकावत् इस बाह्यसे उल्लंघन करके जाना व अन्य पक्षी के प्रवेश के प्रकारवत् जाना देखते नहीं॥ [उक्त न्यायसे ब्रह्मवेत्ता ताते (ब्रह्मसे) अभिन्न है, इस प्रकार कहा। तहां अन्यवादी के कथन को प्रकट करके निषेध करते हैं। यहां यह अर्थ है कि आनन्दमय कोशरूप परमात्मा नहीं, अरु तहां तिसका प्रवेशरूप उल्लंघन नहीं है, किन्तु अविषय ब्रह्मरूपताके ज्ञानसे भ्रांतिसे आत्मापनेकरके ग्रहणकिये आनन्दमय का बाधही यहां उल्लंघन कहनेको इच्छित है] अरु जो कहे बाह्य निकसे मनोमयका वा विज्ञानमय का फेर लौट के आत्मासे उल्लंघन करना होवे है, [यद्यपि अन्नमय कोश बिषे मुख्य संक्रमण (अर्थात् अन्यको लंघि के स्वरूपविषे गमन) संभवे नहीं, तथापि बाह्यके विषयोंबिषे प्रवृत्त जो मन और बुद्धि तिन बिषे बाह्यके विषयोंसे लौटके स्वरूपबिषे स्थितिरूप संक्र-

मग (गमन) देखा है । तैसे दुःखी जो पुरुषहै, तिसका आनन्दमयके स्वरूपविषे स्थितिरूप संक्रमण होवेगा, इसप्रकार वादी कहता है] सो बने नहीं क्योंकि स्वस्वरूप विषे विक्रिया का विरोध है ताते, अन्य जो है सो अन्नमय को उल्लंघन करके जाता है, इसप्रकार आरम्भ करके मनोमय वा विज्ञानमय आत्मा को ही उल्लंघन करिके जाता है, यह विरोध होवेगा । तैसे आनन्दमय का आत्मासे उल्लंघन नहीं संभवे है [तिसकी स्वरूप विषे स्थिति अस्थिर है ताते, अरु आरंभ किये अर्थका विरोधहै ताते, सो मुख्य संक्रमण नहीं है, इसप्रकार सिद्धान्ती कहे है] ताते देशान्तरकी प्राप्तिका उल्लंघन करनानहीं है, अरु अन्नमयादिकों मेंसे एकका कियाभी उल्लंघन करना नहीं है परिशेषसे अन्नमयसे आदिलेके आनन्दमय पर्यन्त जो आरोपित आत्माहैं, तिनसेभिन्न जो परमात्मा है, तिसका किया, अरु ज्ञानमात्र उल्लंघन करके जाना संभवे है । अरु, संक्रमणको ज्ञानमात्र रूपता के होनेसे क्या सिद्ध होताहै, इस आशंकापर कहते हैं । यहां यह भावहै कि मुख्यार्थ के असम्भव होनेसे गौण अर्थका ग्रहण श्रेष्ठही है, याते अधिष्ठानके स्वभावके तिरस्कार करके युक्त अध्यस्त वस्तु का बाधकरना ही संक्रम सिद्ध होवे है] तिसकी ज्ञानमात्रताके हुये आनन्दमय पर्यन्त पंचकोशों में स्थित अरु सर्वान्तर अरु आकाश से आदिलेके अन्नमय पर्यन्त कार्य को सृजके तिसके अर्थ पीछे प्रवेशहुये आत्मा को हृदयरूप गुहाके सम्बन्धसे अन्नमयादिक अनात्माविषे आत्माका जो विभ्रम है सो आत्माके विवेक ज्ञानकी उत्पत्ति से विनाशको पावता है । तिस ' इस अविद्या रचित, विभ्रमके नाशहुये उल्लंघन करके गमनकरना, यह कथन उपचारसे कियाहै, अन्यथा सर्वगत आत्मा का उल्लंघन करके गमन संभवे नहीं, अरु अन्य वस्तुके अभावसे सो मुख्य गमन करनाही खोजने को योग्य है । अरु आत्मा का ही गमन करना नहीं है, अरु जलौका नामक जो जलजन्तु विशेष है सो आप-

यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति। तछंह वाव न तपति॥ किमहछंसाधु नाकरवम्। किमहं पापमकरवमिति॥ स य एवं विद्वानेते आत्मानछंस्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मानछंस्पृणुते। य एवं वेद इत्युपनिषद् ३३॥

कोही उल्लंघन करके जाता नहीं। ताते [संक्रमणके कथनमात्रपनेको व्याख्यान करके प्रकरणके महान् तात्पर्य की समाप्ति के मिसकरके कहते हैं "सत्यंज्ञानमनन्तंब्रह्म" सत्य, ज्ञान, अनन्त, ब्रह्म है,। इस उक्त प्रकार के लक्षणवाले आत्मा के ज्ञानार्थही 'बहुरूपहोना, सृष्टि,प्रवेश,रस, भय,अभय, अरु उल्लंघनादिक जो हैं, सो व्यवहार आदिकों विषय कल्पित ब्रह्मविषे संभवे है, परन्तु परमार्थ से निर्विकल्प ब्रह्मबिषे कोई भी विकल्प संभवे नहीं [उपनिषदोंबिषे जहांजहां प्रकरणकी आदि अरु अन्तबिषे उक्त निर्विकल्प ब्रह्मका कथन होनेसे उपक्रम अरु उपसंहारकी एक रूपताहै। याते मध्यमें कहे जे बहुरूप होने आदिक अर्थ तिनविषे प्रकरणका तात्पर्य नहीं है, किन्तु आदि अन्त में कथन किये निर्विकल्प वस्तुबिषे ही तात्पर्य है। यह अर्थ है॥] तिस इस निर्विकल्प आत्मा को, ऐसे क्रमसे उल्लंघन करके (अर्थात् जानके) किसीसे भी भयको पावता नहीं, अरु अभय स्थिति को पावता है "(तदप्येष श्लोको भवति)" (तिसबिषे भी यह श्लोक होता है) अर्थात् तिस इस अर्थबिषे भी सर्वही इस आनन्दवल्ली के अर्थरूप प्रकरणके संक्षेपसे प्रकाशनार्थ यह अग्रिम मन्त्र(प्रमाण) होता है ३२॥ इत्यष्टमोनुवाकः॥

हे सौम्यो! "(यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह)" (जिससे वाणियां अप्राप्तहोके मनकरके सहित निवर्त्त होवे हैं) अर्थात् जिस निर्विकल्प उक्त लक्षणवाले अद्वैत आनन्दरूप

आत्मासे द्रव्यादिक सविकल्प वस्तुको विषय करनेवाले,अरुवस्तु की समानता से निर्विकल्प अद्वैत ब्रह्मविषे भी वक्ता पुरुष करके प्रकाशनार्थ योजना कियेहुये वचनरूपा वाणियां अप्राप्त होके (अर्थात् प्रकाश किये विनाही) निवर्त्त होती है (अर्थात् अपने सामर्थ्य से हीन (रहित) होती है । अरु यहां मननाम ज्ञानका है, सो ज्ञान जहां इन्द्रिय अगोचरादिक अर्थ बिषे वचन प्रवर्त्त होते हैं, तहां तिनके पीछेही प्रकाश करने के अर्थ प्रवर्त्त होवे है, अरु जहां ज्ञानहै तहां वाणीकी प्रवृत्ति होती है । ताते वचन अरु वृत्तिरूपावाणी अरु मनकी सर्वत्र साथही प्रवृत्ति होती है । ताते ब्रह्मके प्रकाशनार्थ सर्वप्रकारसे योजना करनेवाले वक्तापुरुष करके योजना करीहुई भी वाणियां जिस ज्ञान अरु शब्दके अविषय अरु अदृश्यादिक विशेषणवाले आत्मासे, सर्वको प्रकाशकरनेबिषे समर्थ मन नामक विज्ञान करके सहितही निवर्त होवे हैं । तिस श्रोत्रिय निष्पाप अरु निष्काम अरु लोकादि सर्व एषणासे रहित पुरुषके आत्मभूत अरु विषय विषयी के सम्बन्ध से रहित, अरु स्वाभाविक नित्य विभाग वर्जित सर्वोत्कृष्ट "(आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्, न बिभेतिकुतश्चनेति" (ब्रह्मके आनन्दको उक्तप्रकारसे जाननेवाला किसीसे भी भयको पावता नहीं) अर्थात् (श्रोत्रिय, अपाप,कामनासे रहित, विद्वान् ब्रह्मनिष्ठ पुरुषके आत्मस्वरूपब्रह्म केआनन्दको उक्तप्रकारके जाननेवाला विद्वान् किसीसेभी भयको पावता नहीं, क्योंकि भयके निमित्त (भेददृष्टि) का (उसबिषे) अभाव है ताते । अरु जिसकरके विद्वान्को , कि जिससे भयको पावता है, ऐसा ब्रह्मसे पृथक् अन्य वस्तु कोई भी है नहीं, इसही करके उसको भयका निमित्त नहीं (अरु भयके निमित्तके अभाव से भय भी नहीं) । अरु अविद्या करके "यदोदरमन्तरंकुरुते,अथ तस्य भयं भवतीति " जब अल्प भी अन्तरको करताहै, तब तिसको भयहोताहै, । इसप्रकार पूर्व कहाहै, अरुविद्वान्को अविद्या के कार्य अरु तिमिर दृष्टिवाले पुरुषकरके देखेहुये द्वितीयचन्द्रवत्

भयके निमित्त अन्यवस्तुके नाशहुये वो किसी से भी भयको पावतानहीं, यह कथन घटित है। अरु मनोमयविषे उदाहरणकिया जो मंत्र सो मनके ब्रह्मज्ञान का साधन होनेसे, तिस मन विषे ब्रह्मभावको आरोप करके तिसकी स्तुतिके अर्थ है "न बिभेति कदाचनेति" किसी कालबिषे भी भयको पावतानहीं,। इसप्रकार भयमात्रका निषेध किया। यहां अद्वैतबिषे "नबिभेति कुतश्चनेति" किसीसे भी भयको पावता नहीं,। इसप्रकार भयके निमित्तकाही निषेध करते हैं, एतदर्थ पुनरुक्ति दोषनहीं ॥ ननु शुभकर्म्मोंका न करना अरु पापक्रिय (करने) रूप भयका निमित्त है। तब कैसे कहतेहो कि विद्वान्को भयके निमित्तका अभावहै। इसप्रकार नहीं है। तब किसप्रकार है, तहां कहते हैं "। तꣳह वाव न तपति, किमहꣳ साधु नाकर वम, किमहं पापमकरवमिति "। (इसको किस कारणसे मैं शुभकर्मोंको न करता हुआ, किसकारणसे मैं पाप कर्म्मोंको करताहुआ, ऐसे निश्चय करके तपावते नहीं) अर्थात् इस कथन किये ऐसे जाननेवालेको किस कारणसे मैं शुभकर्मोंको न करता हुआ, इसप्रकार पश्चात् मरणके समीप कालबिषे जो संताप होताहै, तैसे किसकारणसे मैं पापकर्मको करता हुआ, इसप्रकार नरकपातादि दुःखके भय से तापहोताहै, सो शुभकर्मका न करना अरु पापक्रिया यह दोनों जैसे अविद्वान्को तपावते हैं, ऐसे निश्चयकरके तपावते (उद्वेग करते) नहीं॥ प्र०, विद्वान्को वे कैसे तपावतेनहीं। तहां कहते हैं, "। स य एवं विद्वानेते आत्मनꣳस्पृणुते, उभेह्येवैष एते आत्मनꣳ स्पृणुते, य एवं वेद इत्युपनिषत्"। (जो ऐसे जाननेवाला है सो इन दोनोंको आत्मा देखताहै, जाते इन दोनोंको यह आत्मारूपसे देखताही है, जो ऐसे जानताहै सो अद्वैत ब्रह्मको जानता है, ऐसी यह उपनिषद् है) अर्थात् जो उक्त प्रकार जानने वाला है, सो तापके हेतु इनदोनों शुभ अशुभ कर्म्मोंको अपना आत्मा जानके आच्छादन कहिये तिरस्कार करता है वा परमात्मभाव

से देखता है । जाते इसप्रकार इन दोनों पुण्य पापोंको यह विद्वान् [शुभाशुभ जो कर्म हैं, सो अधिष्ठान से भिन्न किये नहीं हैं, अरु नहीं भासते हैं, याते सत् अरु प्रकाशमात्र आत्म तत्त्वही तिन दोनों का स्वरूप है, अरु तिससे भिन्न अर्थ अरु अनर्थ के हेतुपने रूप जो तिनका विशेष रूप है सो वस्तु नहीं है, क्योंकि तिनको सत् अरु प्रकाशसे अन्यहोने करके असत्पनाहै ताते, अरु अप्रकाशवान् होनेसे, इस अभिप्राय से कहते हैं] अपने विशेष स्वरूप से शून्य करके आत्मस्वरूप से [आत्माही अविद्यासे शुभाशुभ कर्म रूपसे प्राप्त होताहुआ, इसप्रकार कहा। अरु अबतो यह शुभाशुभ कर्मअर्थ अरु अनर्थके हेतु होतेहुये "ते आत्मैवेति" सो आत्माही है, । इस ज्ञानसे स्वस्वरूप को शुभाशुभ कर्मरूप करने करके विद्वान् तिनको देखताही है । अरु लौकिक दृष्टिसे सम्पादन किये पुण्यपाप रूप देखिके विद्वान्को पुण्य पापवान् देखते हैं, परन्तु सो उनसे भयको पावता नहीं, ऐसा कहते हैं] देखताही है, एतदर्थ इसको पुण्यपाप तपावते नहीं । ऐसा कौन है जो ऐसे जानताहै सो उक्तप्रकारके अद्वैत आनन्दरूप ब्रह्मको जानता है । अरु तिसके आत्मभाव के देखे हुये पुण्य पाप निष्फलताप वाले हुये जन्म के आरंभक होते नहीं । ऐसी यह उपनिषद् जैसे है तैसे कथनकिया, अर्थात् इस वल्ली बिषे ब्रह्मविद्यारूप उपनिषद् (सर्व विद्याओंसे परमरहस्य , गोप्य,) जो है सो प्रकट देखाई । इसबिषे परमश्रेय स्थितहै ३३ ॥

"ब्रह्म यह इत्यादिलेके, जो इसप्रकारजानताहै सो ब्रह्मवेत्ता है, ऐसी उपनिषद् है ,, यहां पर्यन्त इस चौंतीसवें ३४ मन्त्र का अर्थ है ३४॥ अरु इसकाविशेषार्थ श्रीभाष्यकारशंकराचार्यजी ने भी किया नहीं अतएव यहां भी विशेषव्याख्यान नहीं ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

इति श्री तैत्तिरीयोपनिषद्गत ब्रह्मानन्दवल्लीनामकद्वितीयाध्यायभाषाभाष्यसम्पूर्णम् हरिः ॐ तत्सत्

ब्रह्मेदमयमिदमेकविꣳशतिरन्नादन्नरसमयादन्नात्प्राणो व्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छꣳषड्विꣳशतिः प्राणं यजुर्ऋक् सामादेशोऽथर्वाङ्गिरसःपुच्छं। द्वाविꣳशतिर्यत् श्रद्धत्तꣳ सत्यं योगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदः प्रमोदआनन्दो ब्रह्म पुच्छं। द्वाविꣳशतिरसन्नेवाथाष्टाविꣳशतिरसत्षोडश। भीषाऽस्मान्मानुषो। मनुष्यगन्धर्वाणां। देवगन्धर्वाणां। पितॄणां। चिरलोक लोकानामाजानजानां। कर्मदेवानां। ये कर्मणा। देवा नामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः। स यश्च संक्रामत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्च। नैतमेकादश। नव॥ सहनाववतु माविद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ब्रह्मविद्यएवंवेदेत्युपनिषत् ३४॥

इति द्वितीयोऽध्याय ब्रह्मानन्दवल्ली॥ हरिःॐ तत्सत्

अथ तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक
तृतीयाध्याय भाषाभाष्य प्रारभ्यते

हे सौम्य! अब भृगुवल्लीके विचारको श्रवणकरो कि जिसप्रकार वरुणनाम ऋषिका भृगुनामपुत्र अपने पिता के उपदेश से अन्नमयादि पंचकोशों के विचारसे पंचकोशातीत परमानंदरूपब्रह्मको अपना आप आत्मरूपसे साक्षात् यथार्थ अनुभव करके शान्त सुखी निर्भयहुआहै॥

जो [उक्त अर्थके अनुवाद पूर्वक तृतीयावल्लीके सम्बन्ध को ... हैं] सत्य, ज्ञान, अनन्तरूपब्रह्म आकाशादिकोंसे लेके अन्नम...न्त कार्य को सृजके तिसही विषे पुनः प्रवेशको पायाहै, सो ...रके विशेषवत् प्रतीति होवेहै, तिसकरके सर्व कार्यसे विलक्ष...दृश्यादिक धर्मवाला आनन्दरूपही है। तिसही को

अथ भृगुवल्लीप्रारभ्यते ॥

हरिः ॐ। सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु । माविद्विषा वहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

भृगुर्वैवारुणिः। वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच । अन्नं प्राणं चक्षुःश्रोत्रं मनो वाचमिति। तꣳ होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति तद्विजिज्ञासस्व । तद्ब्रह्मेति ॥ स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा ३५ ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः

"तदेवाहमिति" सोईमैं हूं,। इसप्रकार जानना, क्योंकि तिस के प्रवेशको तिसे ज्ञानरूप अर्थवान्पना है ताते । अरु तिस ऐसे जाननेवाले ब्रह्मवेत्ताके शुभ अरुअशुभकर्म जन्मान्तरके आरंभक होतेनहीं, इसप्रकारका अर्थ उक्त आनन्दवल्ली विषे कहनेको इच्छितहै । तिसबिषे ब्रह्मविद्या समाप्त किया। तिसके पीछे भृगुवल्ली बिषे ब्रह्मविद्या का साधनरूप तप (वाक्यार्थ के ज्ञान का साधन पदों के अर्थका विचार) कहनेको योग्यहै। अरु अन्नमयादिकोंको विषय करनेवाले उपासन कहे हैं। एतदर्थ प्रथमवत् शान्तिपाठपूर्वक यह । भृगुवल्ली । आरंभ करते हैं ॥ "। सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्य्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै, ॐ शान्तिः ३ "। (सो हमको रक्षाकरो, हमको भोगावो, सो सामर्थ्य को करो , हमारा अध्ययन कि[illegible] तेजस्वी होहु, हम शिष्य अरु आचार्य परस्पर द्वेष न क[illegible] ।सत्यही कहताहों।। शान्तिहोउ ३) । इस शान्ति प[illegible] पूर्व सविस्तर कहाहै। यहां विद्याकी प्रशंसाके अर्थ[illegible]

पुत्रको पिताने कथनकरी यह आख्यायिकाहै "। भृगुर्वैवारुणिः, वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति, तस्मा एतत्प्रोवाच, अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति "। (भृगु प्रसिद्ध वरुण-ऋषिका पुत्र सो वरुण नाम अपने पिताके समीप जाय। कहता हुआ कि। हे भगवन् ब्रह्मको कहो, तिसके अर्थ यह करता हुआ ,अन्न, प्राण, चक्षु श्रोत्र, मन, अरु वाणी, कहता हुआ) अर्थात् भृगु इसनामवाला प्रसिद्ध वरुणनाम ऋषिका पुत्रथा सो ब्रह्म के जाननेकी दृढ़ जिज्ञासाधारके वरुणनाम अपनेपिताके समीप जाय यह वचनकहताहुआ कि हे भगवन्! आप मेरेप्रति ब्रह्मको वर्णनकरो, इसप्रकार जब भृगुने अपनेपितासे ब्रह्मकी जिज्ञासा अरु विनयपूर्वक कहा, तब सो वरुणनाम पिता विधिवत् अपने समीप प्राप्तहुये तिस भृगुनाम पुत्रकेताईं यहवचन कहताहुआ। कि हे पुत्र!। तिसको अन्नकहिये शरीर अरु तिसकेभीतर प्राणअरु इन अन्तरके ज्ञानके साधन ,चक्षु, श्रोत्र, मन, अरु वाणी, इन ब्रह्मके [यहां यह भावहै कि, जिसकरके शरीरादिकोंकी चेष्टाके अन्यथा। अर्थात् चैतन्यबिना। असंभवकरके तिनका साक्षीरूप चैतन्यको विवेचनकरतेहैं, एतदर्थ यह शरीरादिक ब्रह्मके लक्ष-कहोनेसे तिसके ज्ञानविषे। अर्थात् विवेकार्थ। द्वारवत् द्वारहै। तिनको। अपनेपुत्र, भृगुकेअर्थ। वरुणपिता। कहताहुआ। केवल अर्थ का ज्ञान। अर्थात् त्वं पदकार्थ। वाक्यार्थ के ज्ञानका सा-धननहीं, किन्तु तत्पदार्थका ज्ञानभी है, इस अभिप्रायसे तत्पदके अर्थरूप ब्रह्मके लक्षणको कहताहुआ] ज्ञानविषे द्वारोंको कहता हुआ। अरु इन द्वारभूत अन्नादिको कहके पुनः तिस। अपने पुत्र जिज्ञासुको। ब्रह्मकालक्षण कहताहुआ। प्र० क्या तिस ब्रह्मका लक्षणहै। उ०। तहां कहते हैं, "यतोवाइमानिभूतानिजायन्ते। येनजातानिजीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति तद्विजिज्ञास स्व। तद्ब्रह्मेति॥ सतपोऽतप्यत। सतपस्तप्त्वा "। (जिससे प्र-सिद्ध यहभूत उपजे हैं, अरु जिसकरके उपजेहुये जीवते हैं, अरु

जिस ब्रह्मकेअर्थ जाते हैं, अरु तदात्म्यकोही पावतेहैं, तिसको सो ब्रह्महै, ऐसे विशेषकरके जाननेको इच्छाकर, सो तपकोहीतपताहुआ, सो तपकोतपके) अर्थात् जिससे प्रसिद्ध यह ब्रह्मादिकसोंलेके स्तंबपर्यन्त भूतउपजते हैं, अरु जिसकरके उपजेहुये जीवते हैं (अर्थात् प्राणके धारणरूप जीवनको करते हैं) अरु विनाशकालबिषे जिस ब्रह्मकेताईं जाते हैं अरु तादात्म्यकोही पावतेहैं, अर्थात् उत्पत्ति स्थिति अरु लय, इन तीनोंकालोंबिषे भूतों का देह जिसके स्वरूपभावको त्यागतानहीं, सो ब्रह्मका लक्षण है ॥ तिसको तू ,सो ब्रह्म है, इसप्रकार विशेषकरके जाननेकी इच्छाकर, अर्थात् जो उक्तलक्षणवाला ब्रह्म है तिसको तू अन्नादिक द्वारा प्राप्तहो । तहां "(प्राणस्य प्राणः उतचक्षुषश्चक्षुरुत श्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो मनो ये विदुस्ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यमिति)" प्राणका प्राणहै, चक्षुका चक्षु है, श्रोत्रका श्रोत्रहै, अन्नका अन्नहै, मनका मनहै, जो तिसको जानताहै सो पुराण (प्राचीन) अरु अग्रबिषे स्थित ब्रह्मको पावता है,। यह अन्य श्रुतिभी ब्रह्मके जाननेबिषे द्वारोंको देखावे है। सो भृगुइन ब्रह्मज्ञानके द्वारों को अरु ब्रह्मके लक्षणको पितासे श्रवण करके ब्रह्मज्ञानका साधनहोने करके तपकोही [यहां यह अर्थ है कि, पदार्थों के लक्षणकेही कथनसे अखंडनरूप वाक्यार्थ के अप्रतिपादनसे अरु पदार्थ के भेद ज्ञानसे पुरुषार्थ का असंभवहै ताते अरु "(उदरमन्तरं कुरुते अथ भयं भवति)" जो अल्पभी अन्तर (भेद) को करताहै तिसको भय होताहै । इत्यादि श्रुति वाक्यों से भेद ज्ञान निन्दितहै ताते । एतदर्थ वाक्यार्थ के ज्ञान पर्यन्त तात्पर्य से लक्ष्यपदार्थों के विचरणको वारंवार आचरता हुआ] तपता हुआ ॥ ननु, भृगुको (तप करनेका) उपदेश नहीं किये ही (भृगुको) तपके साधन भावका निश्चय किस करके होताहुआ, तहां कहते हैं , उ०, अवशेष सहित ब्रह्म के कथनसे भृगुको नहीं उपदेशकिये तपके साधन भावका निश्चयहुआ

। अर्थात् भृगुको वरुणने, जिसकरके भूत उपजते हैं, अरु उपजे हुये जिसकरके जीवते हैं, अरु अन्तविषे जिसमें लयहोते हैं तिसको तू ब्रह्मजान, इसप्रकार ब्रह्मको तटस्थ लक्षण से उपदेश किया, तब भृगुको स्वरूप लक्षणसे ब्रह्मको जानना अवशेषरहा तिसके जानने के अर्थ भृगु एकान्त विचाररूप तपरूप साधनका निश्चय करता हुआ, अरु पिताने कहा कि जिस करके भूत उत्पन्न होतेहैं, जिसकरके जीवते हैं अरु जिसबिषे प्रवेश को पावते हैं, सो ब्रह्महै, तब इन तटस्थ लक्षणों के श्रवण से भृगुको यह अवश्य विचारणीय हुआ, कि किससे यह सर्व्व भूत उपजते हैं, अरु उपजेहुये किस करके जीवते हैं, अरु अन्तबिषे किसमें प्रवेश पावते हैं, ऐसा विचार ब्रह्मके निश्चय जानने के अर्थ विचारमय तपरूप साधनका निश्चयकर आगे उक्त लक्षणों से प्रथम अन्नमयादिकों का विचाररूप तपकर पश्चात्, सत्यज्ञान अनन्तादि स्वरूप लक्षण से सर्व के आधार परमानन्दरूप ब्रह्म को अपने आत्मभाव से पावताहुआ। ॥ अरु जिसकरके ब्रह्मके निश्चयबिषे अन्नादिरूप द्वारको, अरु "यतो वा इमानिभूतानि जायन्ते" जिससे प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, । ऐसे लक्षणको कहताहुआ सो अवशेषरहे साधन सहितही है, क्योंकि साक्षात् ब्रह्मके उपदेशसे। अन्यथा जिज्ञासु पुत्र के अर्थ, यह ब्रह्म ऐसे रूपवालाहै, इसरीति से ब्रह्म उपदेश करने को योग्य है, अरु तब अवशेष सहित क्या कहतेहुये, अरु याते जानाजाताहै कि पिता ब्रह्म ज्ञानार्थ निश्चय करके अन्य साधन की भी अपेक्षा करे है। अरु उन दोनोंका विशेष निश्चय तो तपको सर्वका अत्यन्त साधक होने से होताहै। कि सब साधनों में मुख्य विचार मय तपही है। अरु जिसकरके सर्व नियमित साध्यों को विषय करने वाले साधनों का उक्त तपही अत्यन्त साधक अरु साधन है, इसप्रकार लोकबिषे प्रसिद्ध है। ताते भृगु पिताने नहीं उपदेश किये भी तपको ब्रह्मज्ञानका साधनहोनेसे जानताहुआ। अरु सो

तप बाह्य अरु अन्तर के करणों का एकाग्रपना है । क्योंकि सो ब्रह्मज्ञान तिस (इन्द्रिय अरु चित्तकी) एकाग्रतारूप द्वारवाला है ताते । अरु "मनसश्चेन्द्रियाणाञ्चैकाग्र्यंपरमंतपः,तज्ज्यायः। सर्व धर्मेभ्यः सधर्मः पर उच्यतेति" मन अरु इन्द्रियों का जो एकाग्रपनाहै सो परमतपहै, सो जाते सर्व धर्म्मों से बड़ाहै याते तिसको परमधर्म कहते हैं (इस स्मृति के प्रमाणसे । अरु सो [सो तपको तपिके, अर्थ यह पिताने कहा जो लक्षण सो कहां परिपूर्णहुआहै, इसप्रकार एकाग्रचित्तसे विचारके "(अन्नंब्रह्मेति" अन्न ब्रह्महै, । ऐसा जानताहुआ । यहां यह अर्थ है कि सर्व करके भोगियेहै, ऐसा जो सर्वकी प्राप्तिका साधारण स्थूलदेहका कारण विराट्नामवाला स्थूल पंचभूतोंका समूह, यहां अन्न शब्दकरके कहते हैं । तिसको स्थूल भौतिक पदार्थोंकाकारण होनेसे । जिससे यह भूतउपजते हैं, इस ब्रह्मके लक्षणको तहां योजना करने को शक्यहोने से सो (अन्न, ब्रह्महै इसप्रकार जानताहुआ] तपको तपके (अन्न ब्रह्म है इसप्रकार जानताहुआ, इसप्रकार प्रथम के अनुवाकसे सम्बन्धहै ॥ अर्थात् प्रथम अनुवाकके अन्तमें कहाहै कि "(तपस्तप्त्वा" (तपको तपिके, अरु इस अनुवाकके आदि में कहाहै कि "(अन्नंब्रह्मेतिव्यजानात्" (अन्नको ब्रह्म जानताहुआ, ताते पूर्वानुवाकके अन्त अरु इसके आदिके सम्बन्ध से यह अर्थ हुआके, तपको तपके अन्नको ब्रह्म जानताहुआ ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! "अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्" (अन्न ब्रह्महै, ऐसे जानता हुआ) जिसकरके सो अन्न ब्रह्मके उक्त लक्षणों करके युक्तहै, याते तिसकोब्रह्महै, ऐसे जानताहुआ । प्र० ॥ कैसे सो (अन्न) ब्रह्मके लक्षणोंकरके युक्तहै, तहांकहतेहैं "(अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, अन्नेनजातानि जीवन्ति, अन्नंप्रयन्त्यभिसंविशन्तीति" (जिसकरके अन्नसेही प्रसिद्ध यह सर्वभूत उपजतेहैं, अन्नसे उपजे हुये जीवते हैं, अन्नके ताईं सम्मुखजाते हैं प्रवेशकोपावते हैं—

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । अन्नेन जातानि जीवन्ति । अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा २।३।६ ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

अर्थात् अन्नसे उपजेहुयेभूत अन्नसेही जीवते हैं अरु परिणाम अन्नमेंही लयहोतेहैं, ताते अन्नका ब्रह्मपना युक्तहै। सो ऐसे तपको तपके लक्षण अरु युक्तिसे "। तद्विज्ञाय वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति "। (तिसको जानिके पुनः वरुण पिता के पास जाताहुआ, अरु कहा, हे भगवन्! ब्रह्मको कहिये ? अर्थात् अन्नरूप ब्रह्मको जानके पुनः संशयको प्राप्तहुआ भृगु अपने वरुण नामक पिताके समीप जाय कहताहुआ कि हे भगवन्! ब्रह्म को कथन करिये। प्र०। यहां संशयका कारण कौनहै, उ०। अन्नकी उत्पत्ति को देखने से उसको संशयहुआ। कि पिताकरकेकहे ब्रह्म के लक्षण अन्नविषे पायेजाते हैं परन्तु ब्रह्मअजहै औ अन्न उत्पत्ति वाला है ताते यह अन्न ब्रह्म कैसे होगा। "। तꣳ होवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्मेति, सतपोऽतप्यत, सतपस्तप्त्वा "। (तिस 'भृगुको पिता, कहताहुआ तपब्रह्महै, ऐसे तपकरके तू विशेष ब्रह्म के जानने की इच्छाकर, पश्चात् सो भृगु पुनः तप को तपताहुआ, सो तप को तपिके ? ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! प्राणोब्रह्मेति, व्यजानात्, प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि जीवन्ति, प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति "। (प्राणब्रह्म है, ऐसा जानताहुआ। प्राण से ही प्रसिद्ध यह सर्व भूतमात्र उपजते हैं, प्राणसे ही उपजेहुये जीवते हैं, अरु प्राणके अर्थ सम्मुख जातेहैं अरु प्रवेश को पावते हैं ? अर्थात् प्राणसे ही सर्वभूत उपजते हैं अरु उपजेहुये तिसहीसे

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेववरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । सतपोऽतप्यत । सतपस्तप्त्वा ३ । ३७ ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

जीवते हैं, अरु अन्त विषे तिन प्राणही में प्रवेश को पावते हैं "। तद्विज्ञायपुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवोब्रह्मेति"। (तिसको जानके पुनः ही वरुण पिताके समीप जाताहुआ, हे भगवन्! ब्रह्मको कहो ? अर्थात् उक्तप्रकार तिस प्राणरूप ब्रह्म को विचारके पुनः वो भृगु अपने वरुणनाम पिताके समीपजाय कहताहुआ हे भगवन्! ब्रह्मको कहिये, इसप्रकार ब्रह्म विषयक प्रश्न करताहुआ, तब "। तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व, तपोब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा "। (सो पिता कहता हुआ तपसे विशेष करके ब्रह्मको जानने की इच्छाकर, तप ब्रह्म है सो तपको तपताहुआ, तपको तपिके ॥ अर्थात् । प्राणको ब्रह्म के लक्षणों करके विचारनेसे भृगुको यह संशयहुआ कि यह प्राण उत्पत्तिमान् अरु आवागमन वाला अरु जड़ है अरु ब्रह्म अज अचल चैतन्य है, ऐसा विचार पितासमीप जा कहा हे भगवन् ! ब्रह्मकहो तब पिताने कहा तप सर्व साधनों में बड़ा है ताते तू तप करके ब्रह्मको विशेषकरके जानने की जिज्ञासाकर, तब वो भृगु पुनः तपको तपताहुआ, तपको तपिके । । आगे चतुर्थ अनुवाक से पूर्ववत् सम्बन्धहै ॥ इति तृतीयोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! "। मनोब्रह्मेति व्यजानात्, मनसोह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, मनसा जातानि जीवन्ति, मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति"। (मन ब्रह्म है, ऐसे जानताहुआ, मनसेही प्रसिद्ध यह भूत उपजते हैं, मनकरके उपजेहुये जीवते हैं, मनके अर्थ सम्मुख

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ४ । ३८ ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

जाते हैं अरु प्रवेशको पावते हैं; अर्थात् यहमनही ब्रह्महै ऐसेजानता हुआ, मनसेही सर्वभूत उपजे हैं अरु सो उपजेहुये मनकरकेही जीवतेहैं अरु अन्तबिषे मनके सम्मुखहुये मनविषे प्रवेश करतेहैं "। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति, तꣳहोवाच, तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा "। (तिसको जानके पुनः भी वरुण पिताकेपास जाताहुआ, हे भगवन्! ब्रह्मकहो, पिताने कहा तप बड़ाहै, तपकरके ब्रह्म के विशेष जानने की इच्छाकरो, सो तप को तपताहुआ, तपको तपि के; अर्थात् तिस मनरूप ब्रह्मको जानके । पूर्ववत् तिसविषे संशयको पायके । पुनः वो भृगु अपने वरुणपिता के समीप जायके । अपना संशयकह । कहताहुआ कि । हे भगवन्! ब्रह्मको कहिये, इसप्रकार जब भृगुने ब्रह्म पुछा तब वरुण कहताहुआ, तप । सर्वसाधनों में । बड़ा है, ताते तू तपको तपिके ब्रह्मको विशेष जानने की इच्छाकर, तब वो भृगु पुनः तपको तपताहुआ, तपको तपिके ॥ इसका सम्बन्ध आगेहै ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! "। विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशंतीति "। (विज्ञान ब्रह्म है ऐसा जानताहुआ, विज्ञानसेही यह सर्व प्रसिद्धभूत उपजे हैं । विज्ञानसेही उपजे जीवते हैं, विज्ञानके सम्मुखजाते हैं, प्रवेशकरते हैं; अर्थात्

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । विज्ञानेन जातानि जीवन्ति । विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳ होवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ५ । ३९ ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

विज्ञानही ब्रह्म है इसप्रकार जानताहुआ, क्योंकि विज्ञानसेही प्रसिद्ध यह सर्व भूतउत्पन्नहोते हैं, अरु उत्पन्नहुये सर्व विज्ञान सेही जीवते हैं, अरु अन्त विज्ञान के सम्मुखजाते प्रवेश करते हैं "। तद्विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार, अधीहि भगवो ब्रह्मेति तꣳहोवाच तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपोब्रह्मेति, स तपोऽतप्यत, स तपस्तप्त्वा "। (तिसको जानके पुनः ही वरुण पिताके पासजाताहुआ, हे भगवन्! ब्रह्मको कहो, पिता कहताहुआ, तप को तपिके ब्रह्मकी विशेष जिज्ञासा करो, सो तपको तपताहुआ सो तपको तपिके ;) अर्थात् सो भृगु विज्ञानको ब्रह्म जानके, अरु पूर्वप्रकार तिसमें संशयवान्होके पुनः अपने वरुणनामक पिताके समीपजाय कहताहुआ कि हे भगवन्! ब्रह्म कहो, इसप्रकार जब भृगुने प्रश्नकिया तब सो वरुणपिता कहताहुआ कि हे पुत्र! ऐसे ही तपकरके ब्रह्मको विशेष करके जाननेकी इच्छाकरो, क्योंकि सर्व साधनों में तप ब्रह्म (बड़ा) है, तब पुनः वो भृगु एकान्तमें जाय तपको तपताहुआ, तपको तपिके ॥ इसका अग्रिम अनुवाकसे सम्बन्धहै ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! "आनन्दो ब्रह्मेतिव्यजानात्, आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानिजीवन्ति, आनन्दं प्रयन्त्यभि संविशन्ति" (आनन्द ब्रह्म है ऐसे जानताहुआ, आनन्दसे प्रसिद्ध यह भूत उपजतेहैं, अरु आनन्दसे उपजेहुयेजीवते हैं, अरु आनन्दके

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव ख-ल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानिजीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। सैषा भार्गवी वारुणी विद्या। परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। स य एवं वेद। प्रति तिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति। प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्च्चसेन। महान् कीर्त्त्या ६। ४०॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

अर्थ सम्मुख हुयेजाते हैं अरु प्रवेशको पावते हैं; अर्थात् यहआनन्द ही ब्रह्महै क्योंकि (ब्रह्मासे पिपीलिका पर्यन्तसर्व) भूत उपजते हैं, अरु उपजेहुये सर्व आनन्दसेही जीवतेहैं, अरु अन्तमें आनन्द के सम्मुख जाते तिसहीबिषे प्रवेशको पावते हैं,। इसप्रकार जानता हुआ॥ यहां जो वारंवार तप का उपदेश है, सो तपकी अतिशय साधनता के निश्चयार्थ है। यावत् पर्यन्त ब्रह्मका निरतिशय लक्षण नहीं होताहै, अरु यावत् जिज्ञासा निवर्त्त नहीं होती है, तावत् तुझको तपही साधनहै, तिस तप करके ही ब्रह्मके जानने की इच्छाकर। यह पिताके (वारंवार तप करनेकी आज्ञा का, अभिप्रायहै॥ [यहां यह अर्थ है कि श्रुति स्मृतिबिषे विराट् की उत्पत्तिके देखने से तहां ब्रह्मके (अजरत्वादि सर्व) लक्षण घटते नहीं, यह जानके (अन्न ब्रह्मके जाननेके पश्चात्) पुनः (वोभृगु) तपको तपताहुआ॥ (अर्थात् यहां तप शब्दका अर्थ विचार है अरु यही अतिशय साधनहै अरु सो भी चक्षुरादि इन्द्रियां बाह्य करण अरु मन आदिक अन्तःकरण इनकी सम्यक् प्रकार एकाग्रता पूर्वक जो विचार है सो तप शब्द करके ग्राह्य है) ॥ तिस विराट् रूप अन्नके कारण क्रिया शक्तिका आश्रय होनेकरके प्राण शब्दके लक्ष्य अरु संकल्प अरु निश्चयकी सामर्थ्य से युक्त होन करके मन अरु विज्ञान शब्दके लक्ष्य हिरण्यगर्भ को ,ब्रह्म है, इसप्रकार जानताहुआ। तदनन्तर तिस हिरण्यगर्भको भी (") हि-

रण्यगर्भोजायमानः " इत्यादि वेद प्रमाणसे) कार्यरूप होने करके तहां भी ब्रह्मका (समस्त) लक्षण होतानहीं, यह विचारके तिस हिरण्यगर्भ के कारणको स्वतन्त्रपना होने से निश्चय करके प्रार्थना किया होनेसे आनन्द शब्दके वाच्य मायाविशिष्ट चैतन्य रूप अन्तर्यामी को , ब्रह्म है , ऐसा जानके उपाधि विशिष्ट को अन्य अविशिष्टकी स्वरूपताके संभवसे कारण भावकरके उपलक्षित शुद्ध आनन्द को . ब्रह्म है, इसप्रकार जानता हुआ] इस प्रकार भृगुऋषि जो है, सो तपकरके शुद्ध चित्तवाला हुआ प्राणादिकों बिषे सम्पूर्णपने करके ब्रह्म के लक्षणको देखताहुआ। अरु कुछ काल उपरान्त तिस बिषे प्रवेश करके, अत्यन्त आन्तर आनन्दरूप ब्रह्म को तपकरके अर्थात् तपरूप साधन करके ही जानताहुआ। ताते ब्रह्म के जिज्ञासु पुरुषकरके बाह्य अरु भीतर के करणोंकी (अर्थात् इन्द्रिय अरु मन आदिकों की) एकाग्रता रूप परम तपरूप (सर्वोत्तम) साधन अनुष्ठान करनेको योग्यहै, यह इस समस्त प्रकरणका अर्थ (अभिप्राय) है ॥ अब पिता पुत्र की आख्यायिकाको त्यागिके श्रुति अपने वचनोंकरके आख्यायिकासे कथन किये अर्थको कहे है "(सैषा भार्गवी वारुणी विद्या, परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता, सय एवं वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादो भवति, महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्त्या " (सो यह, भार्गवी वारुणी विद्या, परम व्योम बिषे, स्थितहुई है, जो ऐसे जानताहै, सो स्थितहोताहै, अन्नवान् होता है, अन्नाद होताहै प्रजाकरके पशु करके ब्रह्मवर्चसकरके महान् होताहै, कीर्त्तिकरके महान् होताहै? अर्थात् सो यह भृगुऋषि ने ज्ञातकरी ताते भार्गवी, अरु वरुणऋषिने कथनकरी ताते वारुणी विद्या, सो अन्नमय रूप आत्मासे प्रवृत्तहुई परमव्योम हृदयाकाशगत (बुद्धिरूपा) गुहा बिषे परमानन्दरूप अद्वैतबिषे स्थित कहिये समाप्त हुईहै । जो अन्य जिज्ञासु भी उक्तप्रकार तपरूप साधन करके ही इसही क्रमसे तिन अन्नमयादिक आत्माबिषे

प्रवेशहोयके आनन्दरूप ब्रह्मको जानताहै,सो इसप्रकार विद्याकी स्थितिसे आनन्दरूप परब्रह्म बिषे स्थित होताहै, अर्थात् ब्रह्मही होताहै ॥ इसप्रकार तिसको अदृष्ट फलकी प्राप्ति कहके, अब दृष्ट फल कहते हैं ॥ [यहां मूल श्रुतिबिषे अन्नकी बाहुल्यतारूप विशेषण सुनानहीं, तब तिसको कैसे रखतेहो, यह आशंका करके कहते हैं, यहां यह अर्थ है कि, यहां मूल श्रुति बिषे सामान्यमात्र अन्नके कहेहुये श्वान सूकरादिकोंको भी शरीरकी स्थित्यर्थ प्राप्त हुये अन्नकरके "। अन्नवान् भवति "। अन्नवाला होताहै,। इस विद्वान्के विशेषणसे विद्याका फल नहींकहा ऐसा होवेगा, एतदर्थ तिसके बलसे यहां अन्नकी बाहुल्यतारूप विशेषण धराहै] बहुत से अन्नवाला होताहै,। जिसकरके सामान्य रीतिसे तो सर्वजीव अन्नवान् है, इसकरके सो विद्यासे । विद्वान्का । विशेषण न होवेगा। एतदर्थ विद्वान् को ही बहुत से अन्नवाला कहा। अरु ऐसे अन्नको जो भोगता है,ऐसा जो प्रदीप्त जठराग्नि वाला अन्नका भोक्ता तिसको अन्नाद कहते हैं, सो होवे है । अर्थात् इस भार्गवी वारुणी विद्याका सम्यक् जाननेवाला बहुत अन्न (भोग्य सामग्री) अरु भोगनेकी विशेष शक्तिकरके युक्त होताहै। अरु पुत्रादिरूप प्रजा अरु गो अश्वादि पशुकरके, अरु शम दम ज्ञानादि निमित्तवाले ब्रह्मतेजरूप ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्व से अधिक । होवेहै । अरु शुभाचरण करने से प्रख्यातिरूप कीर्त्तिकरके महान् होताहै, अर्थात् तिनको साक्षात् अनुभव करताहै ६।४० ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ६

हे सौम्य ! [दैवगति से प्राप्तहुये निकृष्ट अन्न की भी निन्दा करनी नहीं, क्योंकि "। अद्योच्छिष्टमुतावरमित्युक्तत्वात् "। आज का पाककिया । सद्य । वा कल्हका पाककिया । बासी । अन्न भक्षण करना,। इसप्रकार शास्त्रान्तर बिषे कहाहै ताते । अर्थात् जो कदापि प्रारब्धवशात् सद्य पाकहुआ अन्न न प्राप्तहोय तो प्राप्तहुये बासी अन्नको भक्षण करना परन्तु अन्नकी निन्दा न

अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् । प्राणो वाऽन्नम् । शरीरमन्नादम् । प्राणेशरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरेप्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ७ । ४१ ॥ इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

करनी, अरु यावत् सद्यसिद्धकिया अन्नप्राप्तहोवे तावत् बासी अन्न न खावे क्योंकि गीतास्मृति में एक प्रहरमात्र के भी बासी अन्न को तामस अन्न वा भोजन कहाहै। यहां ब्रह्मवेत्ता को जो उक्त नियमकाकथन है सो, सो साधक के अनुष्ठानार्थ [अरु निन्दाके त्यागविषे] है] किंवा जिससे द्वारभूत अन्नकरके ब्रह्मका विज्ञान होता है ताते गुरुवत् "[अन्नं न निन्द्यात्, तद्व्रतम्]" [अन्न को निंदाका विषय करना नहीं, सो व्रतहै] [अर्थात् जैसे गुरु ब्रह्म की प्राप्तिका द्वार है तैसे अन्न भी विचारद्वारा ब्रह्मप्राप्तिका द्वार है, ताते किसीप्रकार के भी अन्नकी निंदा करनी नहीं [इसप्रकार का ब्रह्मवेत्ताओं का व्रत कहिये नियम उपदेश [प्रतिज्ञा] है। यहां व्रतका जो उपदेश है सो अन्नकी स्तुत्यर्थ है वा [अन्न की महिमा प्रकाशनार्थ है अरु अन्नको ब्रह्मज्ञानका उपायरूप होने से स्तुति की योग्यताहै ॥[ऐसे वाक्यार्थ के ज्ञानविषे लक्ष्यपदार्थ के अनुसंधान रूप मुख्य साधनको अरु तिसके फलको समाप्त करके, अब विचारविषे असमर्थ मन्द अधिकारी को अन्न अरु अन्नाद [भोग्य अरु भोक्ता] रूपसे प्राणादिकोंकी उपासना रूप गौण साधन को विधान करते हैं। यहां यह कथन किया होताहै कि उपासना भी फलकी इच्छा से अनुष्ठान की हुई मन्द अधिकारीको बुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानके अर्थ उपकारकरेहै,अरुमुख्य[उत्तम] अधिकारीको तो प्रपञ्चके अपवादार्थ उपकार करेगी] "[प्राणो वाऽन्नम्,शरीरमन्नादम्, प्राणे शरीरंप्रतिष्ठितम्, शरीरेप्राणःप्रति-

ष्ठितः" (वा प्राण अन्नहै,शरीर अन्नादहै,प्राणबिषे शरीरस्थितहै, शरीरबिषे प्राणस्थितहै; अर्थात् वा प्राण अन्नहै, क्योंकि प्राणका शरीर बिषे अन्तरभाव है ताते, अर्थात् जो जिसके अन्तरहोताहै सो तिसका अन्न होताहै। अरु शरीरबिषे प्राणस्थितहोताहै ताते प्राण अन्नहैं अरु शरीर अन्नाद (अन्नका भोक्ता) है। तैसे शरीरभी अन्नहै, अरु प्राणअन्नादहै क्योंकि शरीरकी स्थितिप्राणरूपनिमित्त वालीहै ताते,अरुजिसकरके प्राणबिषे शरीरस्थितहै,अरुशरीरबिषे प्राणस्थितहै, इसकरके यह दोनों शरीर अरु प्राण परस्पर अन्न अरुअन्नादरूपहैं, अरु जिसहेतुकरके परस्परबिषे स्थितहैं तिसही करके अन्नहैं, अरु जिसकरके परस्परकी स्थितिरूपहै तिसहीकरके अन्नाद (भोक्ता) है। एतदर्थ प्राण अरु शरीर ये दोनों अन्न अरु अन्नादरूपहैं "(तदेतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितम्, स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति, महान् भवति, प्रजयापशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, महान्कीर्त्या " (सो यह अन्न अन्नविषे स्थितहै, जो यहअन्नबिषे स्थितअन्नकोजानताहै सो अन्नअरुअन्नाद रूपसेही स्थितहोताहै, किंवा अन्नवान् अरु अन्नाद होताहै, अरु प्रजाकरके अरु पशुकरके ब्रह्मवर्चस करके महान् होता है अरु कीर्तिकरके महान्होता है) अर्थात् सो यह अन्न अन्नबिषे स्थित है, अरु जो इसअन्नबिषे स्थित अन्नको सम्यक्प्रकार जानता है सो अन्न अरु अन्नाद (अर्थात् भोग्य अरु भोक्ता) रूपसेही स्थित होताहै, अथवा अन्नवान् (अर्थात् अन्नादि सर्वभोग्य सामग्री सम्पन्न, अरु अन्नाद (अर्थात् भोगने के सामर्थ्य सम्पन्न सर्वभोगों का भोक्ता होताहै। अरु पुत्र पौत्रादि प्रजाकरके, अरु गो गज अश्वादि पशुओंकरके, शम दम समाधि आदि साधननिमित्तक ब्रह्मतेजकरके सर्वसे अधिक होताहै। अरु पुत्र पशु ब्रह्मवर्चस धर्मदानादि निमित्तक ख्यातिरूप कीर्ति करके लोकबिषे प्रख्यातहोताहै ॥ ७। ४१ ॥

इति सप्तमोऽनुवाकः ॥

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वाऽन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ८ । ४२ ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य! "अन्नं न परिचक्षीत, तद्व्रतम्, आपोवाऽन्नम्, ज्योतिरन्नादः, अप्सु ज्योतिःप्रतिष्ठितम्, ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः, तदेतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितम्" (अन्नको परित्याग करेनहीं सो व्रतहै, वा जल अन्न है, ज्योतिः अन्नाद है, जलविषे ज्योतिः स्थित है ज्योतिःविषे जलस्थितहै,सो यह अन्नविषे स्थित अन्न है,) अर्थात् अन्नको परित्याग करेनहीं (अर्थात् जो कदापि अन्न निकृष्टभी होय तथापि उसका निरादर वा निन्दारूप त्यागकरेनहीं (यह अन्नरूप ब्रह्मकेज्ञाता विद्वानोंका उद्देश (शिक्षा) रूप व्रतकहते हैं (यहां उक्त व्रतकाजो उपदेशहै सो अन्नकी स्तुतिके अर्थ है । अरु अन्न ऐसे शुभाशुभकीकल्पनासे अपरित्यागकिया स्तुतिका विषयकिया अरु महान् कियाहुआ होताहै । वा जल अन्नहै,अरु ज्योतिः कहिये तेज अन्नाद है (अर्थात् जल, भोग्यहै अरु तेज भोक्ताहै, यह लोकविषे प्रख्यात है (जलविषे ज्योतिः स्थित है, ज्योतिः विषे जलस्थित है । सो यह अन्नविषेस्थित अन्नहै । "सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादोभवति, महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या" (जो इस अन्नविषे स्थित अन्नको जानता है, सो अन्न अरु अन्नादके रूपसे स्थितहोता है,अथवा अन्न (भोग्य)वान् अरु अन्नाद (भोक्ता) होता है । अरु (पुत्रादि (प्रजाकरके, अरु (गवादि (पशुकरके अरु ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्वविषे प्रख्यातहोवे है, अरुदा-

अन्नं बहु कुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवी वाऽन्नम् । आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः । आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । सय एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद । प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन।महान् कीर्त्या ९।४३॥इतिनवमोऽनुवाकः॥

नादि सद्धर्माचरणके निमित्तसे लोकबिषे सर्वसे अधिक कीर्ति (यश) वाला होवे है ॥ ८ । ४२ ॥ इति अष्टमोऽनुवाकः ॥

हे सौम्य ! "(अन्नं बहु कुर्वीत, तद्व्रतम्, पृथिवी वाऽन्नम्, आकाशोऽन्नादः, पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः, आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता, तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्) " (अन्नको बहुत करना, सो व्रतहै, वा पृथिवी अन्नहै, आकाश अन्नादहै, पृथिवीबिषे आकाश स्थितहै, आकाश बिषे पृथिवी स्थितहै, सो यह अन्न अन्नबिषे स्थितहै ।) अर्थात् अन्नको बहुत करना, सो व्रतकहिये उपदेश करतेहैं। अर्थात् जल अरु तेज के अन्न अरु अन्नाद गुणवान्पनेकरके उपासकका अन्नकाबहुतकरनाव्रतहै। वा पृथिवीअन्नहै अरुआकाश अन्नादहै। पृथिवीबिषे आकाश स्थितहै।आकाशबिषे पृथिवीस्थित है । सो यह अन्न अन्नबिषे स्थितहै "(सयएतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितंवेद, प्रतितिष्ठति, अन्नवानन्नादो भवति, महान् भवति, प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, महान् कीर्त्या) " (जो इस अन्नबिषे स्थित अन्नको जानता है, सो अन्न अरु अन्नादरूपसे (भोग्य भोक्ताके रूपसे) स्थित होता है वा अन्नवान् (भोग्य सामग्री करके सम्पन्न) अरु अन्नाद (भोगनेकी शक्तिसम्पन्न) होताहै । अरु प्रजाकरके, पशु करके, ब्रह्मवर्चस करके महान् (सर्वसे अधिक) होवेहै, अरु शुभगुणोंके निमित्तसे यशकरके लोकबिषे महान् (अति प्रख्यात) होवे है) ९ । ४३ ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत । तद्व्रतम् । तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात् । अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते । एतद्वै मुखतोऽन्नꣳराद्धम् । मुखतोऽस्मा अन्नꣳराध्यते । एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम् । मध्यतोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते । एतद्वा अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते ॥ ४४ ॥

हे सौम्य! "(न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत, तद्व्रतम्, तस्माद्ययाकया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्, अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते)" (निवासार्थ, किसीको भी निवारण करना नहीं, सो व्रत है, ताते येनकेन प्रकारसे बहुत अन्नको प्राप्तहोना, इसके अर्थ अन्न सिद्ध है ऐसा कहते हैं ;) अर्थात् तैसे पृथिवी बिषे आकाशके उपासक का निवास करने बिषे किसी को भी निवारण करना नहीं, सो व्रत (प्रतिज्ञा) है (अर्थात् आकाश द्वारा ब्रह्मका उपासक निवासार्थ अपने स्थानपर आये अभ्यागतको निवास करने में निवारण (निषेध) करते नहीं क्योंकि अपने स्थानपर आये अभ्यागतको निवास देना ऐसा उनका प्रतिज्ञारूप व्रतहै ताते, अरु अब इस सांप्रतकाल में बहुधा ऐसा देखने में आयाहै कि जो किसी धनवान् गृहस्थके स्थानपर रात्रिको वा सायंकाल को मार्गचलनेसे श्रमितहुआ कोई साधुअभ्यागत आयके अपने एकरात्रिमात्र निवासार्थ स्थानकी याचनाकरताहै, अरु उस गृहस्थके यहां आरामादि स्थानभी हैं तथापि उस आये अभ्यागत को अपने स्थानके विषयमें राजकीयपुरुषों का वा चोरादिकों का भय देखाय अपने स्थानपर निवासकरने का उस अभ्यागतको निषेधकरते हैं, अरु जो कदापि उस अभ्यागतके प्रारब्ध भोगसे उस समय दैवप्रेरित वर्षावातादिक भी दुःखदायी होय, तथापि निर्दयी अविवेकी अधर्मी महाकृपण वो गृहस्थ उस निवासार्थी को अपने स्थानपर निवासमात्रभी देते नहीं तब अन्नदेने का

तो प्रसंगही क्याहै ? ॥ अरु अभ्यागतादिकों को निवास के दि-येहुये भोजनका देनाभी अवश्य योग्यहीहै, ताते येनकेनप्रकार से (अर्थात् जैसे बनै तैसे अन्नको प्राप्त (संग्रह) करना। अरु अ-न्नवाले (विद्वान् (अर्थात् जिसके पास अन्नादिक धनभीहै, अरु अभ्यागत अतिथिको अन्ननिवासादि देनेके पुण्यको अरु न देनेके पापको सम्यक् प्रकारजानताहै) अन्नके अर्थी अभ्यागत के अर्थ (अर्थात् जिससे किसीभी प्रकार का सम्बन्ध वा परिचय न होय अरु वो अपने स्थानपर निवासार्थी वा अन्नार्थी वा उभयार्थी होके आयाहोय तिसको अभ्यागत कहते हैं) इसकेलिये अन्नसिद्धहै ऐसाउदार वचन कहते हैं, अन्न नहीं है ऐसा (कृपण अरु अज्ञात पनेका) वचन बोलते नहीं (अन्न का निवारणकरते नहीं) तिससे बहुत अन्नका संग्रह करना, इसप्रकार पूर्वले पदसे सम्बन्धहै। अबअन्नदानका माहात्म्यकहतेहैं "(एतद्वैमुखतोऽन्नꣳराद्धम्,मु-खतोऽस्मा अन्नं राध्यते, एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳराद्धम् ,मध्यतोऽस्मा अन्नꣳराध्यते"((इसप्रसिद्ध सिद्धान्नको मुखसे देताहै,इसके अर्थ अन्न सिद्धहोताहै, अरु (इस प्रसिद्ध सिद्ध अन्न को मध्यसे देता है ,इसके अर्थ मध्यसे अन्न सिद्ध होताहै) अर्थात् जिसकाल में अरु जिसभावसे अन्न दानकरताहै, तिसही काल में अरु तिसही भाव से वोभी अन्न पावताहै। प्र०। कैसे पावता है। उ०। इस (लोकबिषे) प्रसिद्ध (तंदुल (चावल)दाल, मधुकरी(रोटी) आदिक) सिद्धहुये (पाककिये) अन्नको मुखसे॥ (अर्थात् मुख कहि-ये मुख्य,शरीरकी किशोरादि सविवेक प्रथमावस्थाकरके वा मुख्य जे श्रद्धा तिस श्रद्धावृत्तिकरके, अर्थात् बृहदारण्यकी श्रुति प्रमाण से मनुष्यों के परम कल्याणार्थ एक दानदेनारूप धर्म्महो मुख्य है, अरु " आशाप्रतीक्षे सङ्गतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्तेपुत्रपशूꣳश्च सर्वान्, एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्म-णोगृहे " (इत्यादि प्रमाणसे जिस अल्पज्ञ अविद्वान् पुरुषके गृह आया अभ्यागत अतिथि विश्राम अन्नादिकों से सत्कार पावता

नहीं तिसके धर्म कर्म पुत्र पशु आदिक सर्व नष्ट होते हैं, ताते अभ्यागतको श्रद्धा सत्कारपूर्वक सिद्धान्न देनायोग्यहै ऐसा विचारके,पूजनादि सत्कारपूर्वक जोअन्नार्थीअभ्यागतकोअन्नदेताहै, इसप्रकार जो अभ्यागतादिकों को सत्कारपूर्वक अन्नादिकों का देना है सो मुख्य वृत्तिसे देना है। अरु जो कहा कि प्रथमावस्था विषे देना सो, मुख्य देनाहै, तिसका आशय यह है कि शरीर की प्रथमवय बालकिशोरादि अवस्था विषे जो अतिथि अभ्यागतों की सेवारूप धर्मविषे अरु दानादि सद्धर्मविषे श्रद्धा पूर्वक रुचिका होना है सो पूर्वले उत्तमोत्तम संस्कारोंसे है, अरु उस प्रथमवयाविषे जो सद्धर्म में श्रद्धाका होनाहै सोपूर्वजन्मके धर्मात्मापने का बोधक असाधारण लक्षण है, अरु प्रथमवयविषे उत्पन्नहुई सद्धर्म विषयक श्रद्धा सो उसपुरुषके धर्मात्मा होनेमें मुख्य हेतुहै, जैसे नचिकेताको प्रथमवयविषेही पिताके हितरूप धर्म्म में श्रद्धा उत्पन्नहुई अरु सोई उसके परमधार्मिक होनेके प्रकाशार्थ मुख्यहेतुहुई, ताते प्रथमवय विषे अरु श्रद्धा सत्कारादिवृत्तिपूर्वक जो दानादि होते हैं सो, मुख्य, ऐसा कहते हैं। ॥ देताहै। प्र०। तिस। दाताको क्या फल होताहै।उ०। मुखसे (अर्थात् उक्तप्रकार। प्रथमवयविषे वा मुख्य (श्रद्धादि) वृत्तिसे। अभ्यागतादिकों को अन्नादि दानदेता है। ऐसे अन्नदाताके अर्थ अन्न सिद्ध होताहै, अर्थात् जैसा। जिस अवस्थामें अरु जिस वृत्तिसे। दियाहै तैसाही। तिसवय अरु तिस वृत्तिसे उसको भी इसलोक वा परलोक में। प्राप्त होता है॥। अर्थात् जो पुरुष अपनी प्रथमवयविषे श्रद्धा सत्कारपूर्वक अन्नादि देतेहैं, तिनके उस कर्म्म की उसही वयमें लोकविषे प्रख्याति होने से उसको भी उसही वयविषे श्रद्धा सत्कारादि मुख्य वृत्तिसे ही अन्नादिक प्राप्त होता है।अरु तिसकरके ही लोकविषे प्रसिद्ध है कि जो जैसा करता है सो तैसा पावता है, अरु इस उक्तविचारार्थ को आगे भी लगायलेना। ॥ इसप्रकारही, इस प्रसिद्ध

य एवं वेद। क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयोः। कर्म्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ॥ इति मानुषीः समाज्ञाः॥ अथदैवीः॥ तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति ४५॥

सिद्धान्नको मध्यसे (अर्थात् मध्यवयसे वा मध्यम वृत्तिसे) अभ्यागतों के अर्थ देताहै। तैसेही इस अन्नदाताके अर्थ मध्यसे (अर्थात् मध्यवयविषे वा मध्यमवृत्तिसे) अन्न सिद्धहोताहै। (अर्थात् जो पुरुष मध्यम भावसे देताहै तिसकोभी मध्यमभावसेही प्राप्तहोताहै)॥ अरु तैसेही "(एतद्वा अन्ततोऽन्नꣳ राद्धम्, अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते)"इस प्रसिद्ध सिद्धान्नकोअन्तसे देताहै, इसके अर्थ अन्तसे अन्नसिद्ध होताहै? अर्थात् तैसेही इसप्रसिद्धसिद्धअन्नको अन्तसे (अर्थात् अन्तके वयबिषे वा अधम वृत्तिसे) अभ्यागतके अर्थ देताहै। तैसे ही इस अन्नदाताके अर्थ अन्तसे (अन्तकी वयबिषे वा अधमवृत्तिसे) अन्न सिद्ध होताहै ४४॥

हे सौम्य! "(य एवंवेद, क्षेम इतिवाचि, योगक्षेम इतिप्राणापानयोः") (जो इसप्रकार जानता है, क्षेम है ऐसे वाणीबिषे, योग औ क्षेम है इसप्रकार प्राण अरु अपान बिषे) अर्थात् जो ऐसे उक्तप्रकारके अन्नकेमाहात्म्यको जानताहै, सो उक्त प्रकारके अन्नदानके फलको प्राप्त होता है॥ अब ब्रह्मकी उपासना का प्रकार कहते हैं। ग्रहण किये वा प्राप्तहुये वस्तुकाजो रक्षण तिसको क्षेम कहते हैं, सो क्षेम ऐसे वाणी बिषे, अर्थात् ब्रह्म वाणी बिषे क्षेमरूपसे स्थित है, इसप्रकार उपासना करने को योग्यहै। (अर्थात् आचार्यसे ग्रहणकिया वा प्राप्तहुई विद्यारूपवस्तु सो यद्यपि संस्काररूप से अन्तःकरण बिषे स्थित है अरु स्मृति होना भी अन्तःकरणका धर्म है, परन्तु इस प्रसंगबिषे आचार्यसे प्राप्तहुई विद्या जिह्वाग्रहोने सों वाणीबिषेही स्थित माननीहै, अरु तिसकी जो सर्वकाल यथार्थ स्मृतिका रहनाहै सोई उसकी क्षेम

रूप रक्षाहै अरु रक्षण करता चैतन्य होताहै अरु चैतन्यआत्मा-ही "। यो वाचि तिष्ठन्वाचोऽन्तरो यम् "। इस श्रुतिप्रमाणसे, वाणी बिषे स्थितहै, ताते वाणीविषे ब्रह्म क्षेमरूपसे उपासना करनेको योग्यहै । ॥ अरु अग्रहण वस्तुका ग्रहण किंवा अप्राप्त वस्तु की प्राप्तिको योग, अरु प्राप्तवस्तु की रक्षा क्षेम, सो योग क्षेमरूप है, सो प्राण अपानबिषे है, यद्यपि वो योग क्षेम बलवान् हुये प्राण अपानविषे ही होते हैं । क्योंकि सर्वका जीवनरूप योग क्षेम प्राण अपानकेही आश्रय होते हैं ताते । । तथापि वे योग क्षेम प्राण अपान रूप निमित्तवालेही नहीं हैं, किन्तु ब्रह्मरूप निमित्तवालेही हैं । । क्योंकि प्राण अपानका योग क्षेम भी किसी चैतन्य ब्रह्मके ही आश्रय है । तथाच "। न प्राणेन नापानेन मर्त्योजीवतिकश्चन इतरेण तु जीवन्ति "। यह अन्य श्रुतिका प्रमाण भी है । अरु "। यः प्राणे तिष्ठन्प्राणादन्तरोयम् "। इस श्रुतिने प्राणके अन्तर अन्तर्यामी रूपसे चैतन्य ब्रह्मकोही कहाहै । । अतएव ब्रह्म योग क्षेम रूपसे प्राण अरु अपानबिषे स्थितहै, ऐसे जानके उपासना करनेको योग्यहै । इसप्रकार पिछले अन्य । ज्ञानेन्द्रियरूप । वस्तु बिषे भी तिस तिस । दर्शन श्रवणादि सामर्थ्य। स्वरूपसे ब्रह्मही उपासना के योगहै "। कर्म्मेति हस्तयोः, गतिरिति पादयोः, विमुक्तिरिति पायौ ॥ इति मानुषीः समाज्ञाः "। (कर्म्म है ऐसे हस्त विषे, गतिरूपहै ऐसे पादोंबिषे, विमुक्ति रूपहै ऐसे पायु (गुद) बिषे, । ब्रह्म उपासना करने के योग्यहै । ऐसी मानुषी समाज्ञाहै; अर्थात् कर्म है इसप्रकार हस्तबिषे, अर्थात् कर्मोंको ब्रह्म करके निर्वाह करनेकी योग्यता होनेसे दोनों हाथोंबिषे कर्म रूपसे ब्रह्म स्थितहै । । अर्थात् हाथोंबिषे जो क्रियाशक्ति है सो सर्व शक्तिमान् चैतन्य ब्रह्मकीही है क्योंकि हस्तादिक कर्मेन्द्रिय जड़हैं तातेउन जड़ोंविषे कर्त्तृत्वादि कोई भी शक्ति उनकी नहीं अरु जहां शक्ति होतीहै तहां उस शक्तिका आश्रय शक्तिमान् भी अवश्य होताहै, ताते कर्मरूपसे हाथोंबिषे ब्रह्म स्थितहै । । इसप्रकार उपासना

करनेको योग्यहै। अरु गति कहिये गमनरूप है इसप्रकार पादों बिषे, ब्रह्मउपासना करनेको योग्यहै। विमुक्ति (मलका त्याग वा मृत्यु) रूपमें है, इसप्रकार पायु (गुदेन्द्रिय) विषे, ब्रह्म उपासना करनेके योग्य है। (अर्थात् जैसे हाथोंविषे कर्म रूपसे ब्रह्मके अ-स्तित्वमें कल्पितविशेषार्थ है तैसेहीपाद अरु पायु इन्द्रियोंबिषेभी अर्थकी योजनाकरके तिनकेतिनके कर्मरूपसे ब्रह्मको जानना) ॥ यह मनुष्योंबिषे होनेवाली ऐसी अध्यात्मिकरूप मानुषी समाज्ञा कहिये उपासनाहै "अथ दैवीः" (अब दैवी) अर्थात् अब देवों बिषे होनेवाली ऐसी दैवी समाज्ञा कहते हैं। "तृप्तिरितिवृष्टौ, बलमिति, विद्युति" (तृप्तिरूपहै ऐसे वृष्टि बिषे, बलरूपहै ऐसे विद्युतबिषे) अर्थात् तृप्तिरूपहै इसप्रकार वृष्टिविषे, क्योंकि वृष्टि को अन्नादिकद्वारा तृप्तिका हेतुपनाहै ताते ब्रह्मही तृप्तिरूपसे वृष्टि बिषे स्थितहै, इसप्रकार ज्ञानके उपासना करने को योग्यहै ॥ तथाच "यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः, आनन्दरूपा-स्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति" यह अन्य श्रुतिके अर्थकी भी योजना होती है ॥ अरु इसप्रकार अन्यों विषे तिस तिस रूपसे ब्रह्मही उपासना करनेको योग्यहै ॥ (अर्थात् जिस जिस देवता बिषे जो जो दैवी शक्तिहै सो सो उस सर्वशक्तिमान् परमात्मा कीही है, अरु उसही ने आकाशादि भूत सृजके तिसबिषे आपही प्रवेशकरके अपनी पृथक् २ विशेषशक्तिको आपही अनुभव करता है, जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे जल उत्पन्न करता है, तिस बिषे प्रतिबिम्बरूपसे प्रवेशभी आपही करता है, अरु तिस प्रतिबिम्ब द्वारा जलबिषे आई जो अपनी प्रकाशरूपा विशेषशक्ति तिसको अनुभव भी आपही करताहै तैसे, । ताते सर्वबिषे सर्वशक्तिमान् एक ब्रह्मही उपासना करनेके योग्यहै) ॥ तैसे बल ऐसे (बलरूप से) विजली बिषे है ४५ ॥

हे सौम्य! "यश इति पशुषु, ज्योतिरिति नक्षत्रेषु, प्रजातिर-मृतमानन्द इत्युपस्थे, सर्वमित्याकाशे, तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत,

यश इति पशुषु । ज्योतिरिति नक्षत्रेषु । प्रजातिर-मृतमानन्द इत्युपस्थे । सर्वमित्याकाशे । तत्प्रतिष्ठेत्यु-पासीत । प्रतिष्ठावान् भवति । तन्मह इत्युपासीत महान् भवति । तन्मन इत्युपासीत । मानवान् भवति ४६ ॥

प्रतिष्ठावान् भवति ” (यश ऐसे पशुबिषे, ज्योति ऐसे नक्षत्रोंबिषे, अमृत अरु आनन्द उपस्थ बिषे, सर्व आकाशबिषे है ऐसे, सो सर्वकी प्रतिष्ठाहै ऐसे उपासनाकरना, प्रतिष्ठावान् होताहै) अर्थात् यश इसप्रकार यशरूप से पशुओं बिषे, अरु ज्योति इसप्रकार नक्षत्रों बिषेज्योति रूपसे (अर्थात् “ यश्चन्द्रतारके तिष्ठन् ” “ तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ” “ यश्चन्द्रमसियश्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ” इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाणसे । अरु प्रजापति अरु पुत्रसे पितृऋणकी निवृत्तिद्वारा अमरभावकी प्राप्तिरूप, अ-मृत औ आनन्द कहिये सुख, ऐसे उपस्थइन्द्रियबिषे, अर्थात् प्र-जापतित्व, अमृत, सुख यह सर्व उपस्थइन्द्रियरूप निमित्तवाले हैं, ताते ब्रह्मही इनरूपसे उपस्थबिषे स्थितहै, इसप्रकार (जान के) उपासना करने को योग्य है । अरु जिसकरके सर्व आकाश बिषे स्थितहै, इसकरकेही, जो सर्व आकाशबिषे है सो ब्रह्मही है, इसप्रकार (जानके) उपासना करनी योग्यहै । अरु जिसक-रके सो आकाश ब्रह्मही है, इसही से वो सर्वकी प्रतिष्ठा (आ-धार) है इसप्रकार (जानके) उपासनाकरना । तिस प्रतिष्ठा रूप गुणकी उपासना से प्रतिष्ठावान् होते हैं । (अर्थात् आ-काश केवलअवकाशरूपहै ताते यावत् समस्त जगत् आकाशबिषे भासते हैं सो आकाशबिषे नहीं, किन्तु “ य आकाशे तिष्ठन् ” “ आ-काशशरीरम् ब्रह्म ” इत्यादि श्रुतियोंके प्रमाणसे जैसे शरीरी के आश्रय शरीर अरु तदाश्रित अवयवादि सर्व होताहै, आकाश स-मेत सर्व ब्रह्म से उपजाहै । अरु तिसकरके आकर्षितहुआ तिसही बिषे स्थितहै, ताते जो आकाशबिषेहै सो सर्व आकाशसहित ब्रह्म

तन्नम इत्युपासीत। नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्य्येण म्रियन्ते द्विषन्तः। सपत्नाः। परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश्चायं पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः ४७॥

ही है, अरु सो सर्व ब्रह्म के आकर्षण से स्थित है ताते सो सर्व की प्रतिष्ठाका ही ये आधार है "सर्वाधारो" इतिश्रुतेः। वा "सौम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः" इत्यादि श्रुति। जैसे पृथिवीसे उत्पन्नहुये घटसरावादिक पृथिवीरूपहैं, अरु पृथिवी के आश्रयहैं ताते पृथिवी उनकी प्रतिष्ठाहै, तैसेही ब्रह्मसे उत्पन्नहुआ सर्व ब्रह्मरूपही है अरु सर्व ब्रह्मकेही आश्रयहै ताते ब्रह्म सर्वका आधारभूतहोने से सर्वका आधाररूप प्रतिष्ठा है, इसप्रकार प्रतिष्ठारूप गुणविशिष्ट ब्रह्मको उपासताहै सो प्रतिष्ठावान् होताहै। इसप्रकार पूर्व कहि उपासना विषे भी जो जिसके आधीन फलहै सो ब्रह्मही है,ताते तिसकी उपासनासे तिसवालाही होताहै। "ये यथा माम्प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्" इसप्रकार जानना क्योंकि "तं यथा यथोपासते तदेव भवतीति" तिसको जैसे जैसे उपासते हैं सोई (फल) होताहै। यहअन्यश्रुतिकाभी प्रमाणहै।"तन्महइत्युपासीत,महान् भवति,। तन्मन इत्युपासीत मानवान् भवति" (सो महत है ऐसेउपासनाकरना, महान् होताहै, सो मन ऐसे उपासना करना, मानवान् होताहै) अर्थात् सो (ब्रह्म) महत्, पनेरूप गुणवान्, है इसप्रकार जानके उसकी उपासना करने से महान् होताहै, अरु सो (ब्रह्म) मनरूपहै ऐसा जानके उसकी उपासना करते हैं सो मानवान् कहिये मननविषे समर्थ होताहै ४६॥

हे सौम्य! "तन्नम इत्युपासीत, नम्यन्तेऽस्मै कामाः, तद्ब्रह्मेत्युपासीत,ब्रह्मवान् भवति तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत," (सो

नमहै ऐसे उपासनाकरना, इसके अर्थ काम नमते हैं, सो ब्रह्म है ऐसे उपासना करना, ब्रह्मवान्होवे है, सोब्रह्मका परिमरहै ऐसे उपासनाकरना ? अर्थात् सो नम , कहिये नमनरूप गुणवालाहै इसप्रकार (जानके) उपासना करना, तिसकरके इस उपासक के अर्थ भोगने योग्य विषयरूप कामनमते (प्राप्तहोतेरहते) हैं। अरु सो ब्रह्म (अर्थात् सर्व से बड़ा अत्यन्तघन परिपूर्ण) है ऐसा (जानके) उपासना करते हैं (सो उपासक ब्रह्मवान्)तिसब्रह्मके गुणवाला,होताहै।(अर्थात्ब्रह्मकेगुणोंवाला तबहोवेगा जब ब्रह्मरूप होवेगा, अतएव ब्रह्मका उपासक ब्रह्मरूपहुआ तिसगुणवान्होत, है)। अरु सो ब्रह्मका परिमर, कहिये वायु, है इसप्रकार(जानके उपासनाकरना । अर्थात् जिसबिषे, बिजली, वर्षा, चन्द्रमा,सूर्य, अरु अग्नि, यह पांचदेवता मरते हैं, ऐसा जो वायु सो "(अतो वायुःपरिमर") याते वायु परिमरहै, । इस अन्य श्रुतिबिषे प्रसिद्धहै । ताते वायुको ब्रह्मका परिमरकहते हैं, सो यहही वायु जिसकरके आकाशसे अनन्यहै इसी से आकाश ब्रह्मका परिमरहै। तिस वायुरूप आकाशको ब्रह्मका परिमरहै, इसप्रकार (जानके) उपासनाकरना ॥ इसप्रकार जाननेवाले उपासककेप्रति स्पर्द्धा करनेवाले द्वेषकरतेहुयेभी जिससे शत्रुहोते हैं, इसहीसे तिनको द्वेषकरनेवाले शत्रुहैं, इसप्रकारका विशेषणदेते हैं"(पर्य्येणम्रियन्ते द्विषन्तः ") (द्वेषकरनेवाले सर्वओरसे मरते हैं) अर्थात् सो इसके प्रति द्वेषकरनेवाले शत्रुसर्वओरसे मरतेहैं कहिये प्राणोंकोत्यागते हैं। किंवा "(सपत्नाः। परियेऽप्रिया भ्रातृव्याः ") (जो अप्रियभ्राता केपुत्रहैं, वेसर्व ओरसे मरते हैं) अर्थात् जो इस (उपासक) के अप्रियभ्राताके पुत्रहैं सो अद्वेषकरनेवाले हुयेभी सर्वओरसेमरते हैं । इसप्रकार [ऐसे मन्दाधिकारीके विषयउपासनाके समूहको अध्यारोप अवस्थासे उपदेशकरके, अब अपवाददृष्टिके अभिप्रायसे कहतेहैं] "(प्राणोवाऽन्नम्, शरीरमन्नादम् ") वा प्राण अन्नहै अरु शरीर अन्नाद है, । इससे आरंभकरके आकाशपर्यन्त कार्यों

काही अन्न अरु अन्नादपना कहा ॥ प्र० ॥ यह कहां तिसकरके क्या सिद्धहुआ। उ०। तिसकरके यह सिद्धहुआ कि भोज्य अरु भोक्ताकाक्रिया जो संसार है सो कार्यको विषयकरनेवालाही है (अर्थात् यह सर्व भोग्य भोक्तारूप संसार है सो आप कार्यरूप होनेसे कार्यपनेकोही लखावनेवाला है (आत्माबिषे तो नहीं है, परन्तु आत्माबिषे (तिसका (भ्रान्तिसे आरोप करते हैं। ननु, [भोक्तापने आदिरूप जो संसारहै, सो कार्यको विषयकरनेवाला है, ऐसा वर्णनकियाहै, तहां जीवको उपाधिरहित (स्वरूपसे) संसारीपना देखाहै तिसकोभी कार्यरूपहोनेसे। इस वैष्णवोंकेमत को प्रकटकरके दूषणदेतेहैं] आत्माभी परमात्माका कार्यहै, ताते इसको संसारयुक्तहै, सो कथन बनेनहीं क्योंकि असंसारीकेही प्रवेशकी श्रुतिहै ताते। अरु "(तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् "(तिसको सृजके तिसहीके अर्थ पुनः प्रवेशकरताहुआ, । इसप्रकार श्रुतिबिषे आकाशादिकोंके कारण असंसारी परमात्माकाही कार्योंबिषे प्रवेशकहाहै (अरु (सोई (सुनतेहैं ताते कार्योंबिषे प्रवेशकोपाया जो जीवरूप आत्माहै सो परमात्मारूपही असंसारी है। अरु "(सृष्ट्वानुप्राविशदिति "(सृजके पुनः प्रवेशकरताहुआ, । इसप्रकार सृष्टि अरु प्रवेशके समान कर्त्तापनेके संभवसे, जब सृष्टि अरु प्रवेश (उभय (रूप क्रियाका एककर्त्ताहै, ताते ,सृजि के प्रवेशकरताहुआ, ऐसाकहना युक्तहै। अरु जो कहे, प्रवेशकरने वालेकोतो अन्नभावकी प्राप्तिहोती है, सोकथन बने नहीं, क्योंकि प्रवेशको अन्यअर्थपनेकरके पूर्व षष्ठमन्त्रबिषे निषेधकियाहै ताते, । अरु जोकहे कि [छांदोग्यकी श्रुतिके अनुसारसे विकार (कार्य) के आकारवालेस्वरूपसे परमात्माके प्रवेशकी आशंकाकरके तहां वाक्यशेषके विरोधको कहेहैं] "(अनेनजीवेनात्मनाऽनुप्रविश्य "(इस जीवरूपसे प्रवेशकरताहुआ, । इस विशेषश्रुतिसे अन्यधर्मसे प्रवेशहुआहै, सोभी बनेनहीं, क्योंकि "(तत्त्वमसि "(सो तूहै, । इसप्रकार पुनः तिस परमात्मभावकाही कथनहै ताते, । अरुजो

[भ्रान्तिसे देहादिभावको प्राप्तहुये ब्रह्मसे व्यतिरिक्तजीवकोही रागके निषेधार्थ परस्त्रीविषे माताकी बुद्धिवत् संसारीपनेके निषेधार्थ ब्रह्मदृष्टि छान्दोग्यश्रुतिविषे उपदेशकियाहै, एतदर्थ " तत्त्वमसि " सो तूहै, । इस उपदेशसे अन्य अर्थवाला होनेसे, जीव को पारमार्थिक असंसारी ब्रह्मपना नहींहै । यह आशंकाकरके तिसको दूषणदेतेहैं । यहां यहअर्थहै कि अबाधित तत्पदसे मुख्य सामानाधिकरण्यके विरोधसे ब्रह्मरूपजीवविषे अब्रह्मभावकेसम्पादनकरनेरूप अर्थवान्पना कल्पनाकरनेको अशक्य है] कहे कि अन्यभावको प्राप्तहुये परमात्माकीही तिस अन्यभावके निषेधार्थ " तत्त्वमसि " सोतूहै, । ऐसे श्रुतिविषे सम्पत्ति कही है सो बनेनहीं क्योंकि " तत्सत्यं, सआत्मा, तत्त्वमसि " सो सत्य है, सो आत्माहै, सोतूहै, । इसप्रकार जीव अरु परमात्मा के सामानाधिकरण्य (एकार्थरूपता) है ताते, । अरु जो [संसारीभावके ग्राहक प्रत्यक्ष प्रमाणके विरोधसे जीव विषे अबाधितपना असिद्ध है, इसप्रकार पूर्ववादी कहे है । यहां सिद्धान्ती सर्व प्रमाणों का अनुग्राहक तर्क अङ्गीकारकरे हैं अरु आत्मा के संसारी रूप धर्मवान्पने को तर्ककरके असिद्धताहोने से, अरु तिस संसारीपने के प्रत्यक्ष प्रमाणको भ्रान्तरूप होनेसे तिस प्रत्यक्ष प्रमाण को शास्त्रजन्य ज्ञानका बाधकपना सम्भवे नहीं, इस प्रकार कहते हैं सुखादिकों को प्रतीयमान होनेसे रूपादिकवत् उपलब्धा (ज्ञाता) का धर्मपना सम्भवे नहीं, यह अर्थ है ।]कहे जीव का संसारीपना देखा है, सो कहना बने नहीं, क्योंकि उपलब्धा (प्रत्यक्षप्रमाण) को अप्रतीयमानपना है ताते, तिसका देखना सम्भवे नहीं क्योंकि धर्मों के अरु धर्मी के भेदसे अग्निके धर्म उष्णता अरु प्रकाशता को अग्नि करके जलावनेकी योग्यता अरु प्रकाश करने की योग्यता के असम्भववत्, अरु नेत्र के धर्म को नेत्रकी विषयता के असंभववत् आत्माके धर्म को आत्माके विषय होनेके असंभव से धर्म विशिष्ट आत्माकी प्रतीति

संभवे नहीं । अरु जो [प्रत्यक्ष प्रमाण के विरोधके अभावहुये भी (अर्थात् जीव ब्रह्मकी एकताविषे प्रत्यक्षप्रमाण विरोधी है तिस विरोधके अभाव हुयेभी) अनुमान प्रमाण का विरोध तो होवेगा, इसप्रकार पूर्ववादी कहता है] कहे कि आत्माको भयादिकके देखने से दुःखीपने आदिक धर्मोंका अनुमान होताहै अर्थात् आत्मा बिषे भयादि लिंगों के देखने से आत्मा बिषे दुःखादि धर्मोंका होना सिद्ध होता है (। सो भयादिक जोहै सो आश्रय सहित है, कार्य होने से, घटवत्, । अरु अन्य आश्रय के असंभवसे आत्माही तिसका आश्रय अनुमान से जानिये है । इसप्रकार कहना योग्य नहीं, क्योंकि जो जानने योग्य वस्तु है सो उपलब्धा कहिये जाननेवाला तिसका धर्मनहींहै, रूपादिकोंवत्, । इन व्याप्त्यन्तरके (अन्य व्याप्तिके) विरोधसे अध्याससे भी कार्यके दर्शनके असंभवसे। यह अर्थहै ।] बने नहीं, क्योंकि भय आदिकोंको अरु दुःखोंको प्रतीयमान होने से सो उपलब्धा (जाननेवाला) का धर्म्म नहीं है । अरु जो [जीवकी ब्रह्मरूपता के प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रको तर्कशास्त्रके विरोधसे अप्रमाणपनाहै, यह शंकाकरके दूषण देते हैं] कहे ऐसे माने हुये कपिलमुनिकृत सांख्यअरु कणादमुनिकृत वैशेषिक आदि तर्कशास्त्रोंका विरोध होवेगा, सो बनेनहीं, क्योंकि तिन कपिलादिकोंको मूलके अभावहुये अरु वेदके विरोधहुये, भ्रांतिके संभवसे, अरु आत्माका असंसारीपना श्रुति अरु युक्तिकरके सिद्धहै । अरु जीव[किंवा तार्किककरकेभी जीवकासुखीपना ईश्वरके आधीन निरूपणकरनेकोयोग्यहै, सो निरूपणकरनेकोयोग्यनहीं, क्योंकिअपने आत्मरूप ईश्वरबिषे सुखदुःखकी हेतुताका असंभवहै तातेइसअभिप्रायसे कहते हैं] ईश्वरकीएकतासे ईश्वरके आधीन जीवके सुखीपनेका निरूपणकरनेको शक्यनहीं । ननु, जीव अरु ईश्वरकीएकता कैसे है, तहां कहते हैं " स यश्चायं पुरुषे, यश्चासावादित्ये , स एकः " " सो जो यह पुरुषबिषे है, अरु, जो यहसूर्य्यबिषे है,सो एकहै" ॥

स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य इमांल्लोकान् कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन् । एतत्साम गायन्नास्ते । हा ३ वु हा ३ वु हा ३ वु ॥ ४८ ॥

हे सौम्य! [अब इस तृतीयावल्लीकी समाप्ते पर्यन्त जो (अवशेष (ग्रन्थहै तिसके तात्पर्यको उक्त अर्थके कथनसे कहते हैं] "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" (सत्य ज्ञान अनन्त ब्रह्महै,इस २४ चौबीसवीं ऋचा का अर्थ तिसकी विवर्णरूप आनन्दवल्लीकरके विस्तारसे व्याख्यानकिया । अरु "(सोऽश्नुते सर्वान् कामान्सह ब्रह्मणा विपश्चितेति "(सो विपश्चित् (सर्वज्ञ) ब्रह्मस्वरूपसे सर्व कामों (भोगों) को भोगताहै, । इस तिसके फल वचनके अर्थ का "कौन वे सर्वकामहैं, वा सो किसको विषय करनेवाले हैं, वा तिनको कैसे सो ब्रह्मरूप हुआ एक कालमें भोगताहै, इस रीतिका विस्तार कहानहीं, सो कहनेको योग्यहै, याते यह अब आरंभ करते हैं । तहां पूर्वोक्त विद्याकी साधनरूप पिता अरुपुत्र की आख्यायिका विषे ब्रह्मविद्या का तपरूप साधनकहा । अरु प्राणसे आदिले आकाशपर्यन्त जो कार्य है तिनका अन्त अरु अन्नादपने करके उपयोगकहा, । अरु ब्रह्मको विषयकरने वाले उपासन कहे । अरु नियमित अनेकसाधनोंकरके साध्य आकाशादि कार्यके भेदको विषयकरनेवाले जो सर्व कामहैं सो देखाये । अरु एकता विषे काम अरु कामीपने का असंभव है, क्योंकि सर्वभेदके समूहको आत्मरूपता है ताते । तहां उक्तप्रकार जाननेवाला विद्वान् एककाल विषे ब्रह्मस्वरूपता करके सर्वकामोंको कैसे भोगताहै, तहां कहतेहैं, [विद्वान् जो है सो अविद्याके लेशमात्रके वशहोनेकरके द्वैत के भ्रमको अनुभवकरता

हुआ „सर्वस्य आत्माहमिति,, सर्वका आत्मा मैंहौं, । इसप्रकार मानताहुआ, अणिमादि ऐश्वर्यवाले योगियोंका जो कामान्नपना [अर्थात् कामनाके अनुसार अन्नवान्‌पना, अरु कामरूपपना [अर्थात् कामनाके अनुसार रूपका धारनेपना, है तिसको [अपने एकात्मपनेके यथार्थ अनुभवसे] मेराही है, ऐसे देखता हुआ एककालविषेही सर्व विषयानन्द को भोगताहै, ऐसाकहाहै, सोई कहते हैं] सर्वात्मता के संभव से सो एककालविषे ब्रह्मरूपसे सर्व कामों (भोगों) को भोगताहै ॥ प्र० ॥ तिसकी सर्वात्मताका संभव कैसेहै, तहां कहते हैं । "स य एवंवित्, अस्माल्लोकात्प्रेत्य, एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतंविज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य, " [जो ऐसे जाननेवाला है सो इस लोकसे निरपेक्ष होके, इस अन्नमय रूप आत्माको उल्लङ्घनकरके, इस प्राणमयरूप आत्माको उल्लंघन करके, इस मनोमयरूप आत्माको उल्लङ्घनकरके, इस विज्ञानमयरूप आत्माको उल्लङ्घनकरके, इस आनन्दमयरूप आत्माको उल्लङ्घन करके,,] अर्थात् जो उक्तप्रकार [आत्मा को] जाननेवाला है सो इस दृष्ट अरु अदृष्ट [इसलोक परलोक] रूप इस लोकसे [अर्थात् समस्त नामरूपात्मक कार्यरूप जगत् से] निरपेक्षहोके [अर्थात् लोकादि एषणासे रहितहोके] पुरुष अरु सूर्यविषे स्थित आत्माकी [अभेद] एकताके विज्ञान से उत्कर्ष अरु अपकर्षको दूरकरके, पुनः इस अन्नमयरूप आत्माको उल्लङ्घनकरके । [अर्थात् इस स्थूलदेहरूप अन्नमयकोशको पञ्चभूतों के तमोगुणकाकार्य केवल अन्नरूपहोनेसे इसको कार्यरूप विकारीजान इसमेंसेआत्मबुद्धि त्यागके] । पुनः प्राणमयरूप आत्माको उल्लङ्घनकरके । [अर्थात् अन्नमय कोशके भीतर अरु अन्नमयसे सूक्ष्महोनेसे अन्नमयकाआत्मा जो प्राणमय कोश तिसको भी भूतोंका कार्य विकारी मान तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके] । पुनः मनोमयरूप आत्मा

को उल्लङ्घन करके । (अर्थात् उक्तप्रकार के प्राणमय कोश के भीतर अरु प्राणमयसे सूक्ष्महोने से प्राणमयका आत्मा जो मनोमय कोश तिसकोभी भूतोंके रजोगुणका कार्य विकारी चंचल आत्माके लक्षणसे विपरीतलक्षणवाला जान तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके) । पुनः विज्ञानमयरूप आत्मा को उल्लंघन करके । (अर्थात् मनोमय कोशके अन्तर अरु मनोमय से सूक्ष्मअरु मनोमयकी नियन्ता मनीषा नामवाली बुद्धिरूप विज्ञानमय कोश तिसको भी भूतोंके सत्त्वगुणकाकार्य शुभाशुभकी कर्त्ता विकारीजान, तिस विषयक आत्मबुद्धि त्यागके) । पुनः आनन्दमयरूप आत्माको उल्लंघनकरके । (अर्थात् विज्ञानमय कोशके अन्तर अरु विज्ञानमय से सूक्ष्महोनेसे विज्ञानमय कोशका आत्मा, अरु अविद्याका कार्य धन पुत्रादिकोंके संयोगरूपनिमित्तसे अपने प्रियआदिक अवयवोंसहित कचित् भासनेवाला अनात्मा जड़, तिसविषयक आत्मबुद्धि त्यागके, ॥ इसप्रकार अविद्याकल्पित अन्नमयसेलेके आनन्दमयपर्यन्त जो आत्मा कहेहैं, तिनको क्रमसे उल्लङ्घनकरके । (हे सौम्य! यह जो अन्नमयादिकोशोंका उल्लंघनकरनाकहाहै सो किसी तीर्थके जानेवाला यात्री जैसे मार्ग के ग्रामों को उल्लंघनकरके उस तीर्थको प्राप्तहोताहै (तैसे इन अन्नमयादिकोशरूपग्रामोंको उल्लङ्घनकरके मुमुक्षुरूप यात्री अपने परमानन्दमय आत्मरूपतीर्थको प्राप्तहोय अभेद अनन्यता अनुभवरूप स्नान कर परमपुरुषार्थ (मोक्ष) रूप फलको प्राप्तहोताहै । परन्तु, उस यात्रीका बाह्यगमनहै तैसे मुमुक्षुरूप यात्रीका देशान्तरके गमनवत् बाह्यगमन नहीं किन्तु अन्तरमुख गमन है, अब इसपर अन्यदृष्टान्त श्रवणकरो । हे सौम्य ! जैसे किसी चक्रवर्त्ती राजाके राजगृह की अनेककक्षा (ड्योढ़ी) होती हैं अरु जो पुरुष उस राजाके दर्शनार्थ उस राजगृह में जाताहै सो प्रथमकक्षासे लेके अन्तकी कक्षापर्यन्त सर्वको देखता अरु द्वारपालों से मिलताजाता है तब राजाके साक्षात् दर्शन पावताहै, अरु जो कदापि वो राज-

दर्शनाभिलाषी पुरुष उन कक्षाओं को देखे विना अरु उन द्वारपालों से मिले विना उस राजाके दर्शनार्थ जाय तो वो द्वारपाल उसको मार्गही में अपने निकट अवरोधकरके उसको राजाके सन्मुख प्राप्त होने देतेनहीं। हे सौम्य! तैसेही "निहितं गुहायां परमेव्योमन्" "गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्" "अंगुष्ठमात्रः पुरुषो सर्व्वजनानां हृदि सन्निविष्टः" "पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः" "नवद्वारे पुरे देही" इत्यादि अनेक श्रुतियों स्मृतियों के प्रमाणसे इस शरीररूप पुर बिषे हृदयरूप गुहा किंवा बुद्धि रूपा गुहाहैं सो साक्षी आत्मारूप चक्रवर्त्ती राजाका राजगृह है तिसबिषे वो महाराज विराजमानहै। अरु तिस राजगृहके प्राप्त होने को क्रमसे अन्नमयसे आनन्दमयकोश पर्यन्त पांच कक्षा हैं अरु तत्तद्विशिष्ट जो चिदाभासहै सोई उन कक्षाओंके अभिमानी द्वारपालहैं अरु "ते वा एते पञ्च ब्रह्म पुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः" इस छांदोग्यकी श्रुतिसे भी उक्त पंचकोशोंको द्वारपना, अरु तदाभिमानी चिदाभासोंको द्वारपालत्वपना, सिद्ध होताहै,। हेसौम्य! उक्तप्रकारके राजमन्दिरबिषेस्थित जो साक्षीरूप आत्मा "सर्वेषांराजा" सर्वइन्द्रादिकोंका राजा महाराज तिसके साक्षात् दर्शनाभिलाषी जिज्ञासु मुमुक्षु, सो जब क्रमसे अन्नमयादि कोश रूप द्वारमार्ग से इस शरीररूप पुरान्तर उक्त राजगृहको चलता है अरु उक्त द्वारपालों से विचारद्वारा मिलताहै पुनः क्रमसाध्य एक एक कक्षाको उल्लंघन करता उक्त द्वारपालों से उक्त प्रकार मिलता आगेको अन्तरमुख चलता अपने स्वस्वरूपकी ओर आवताहै तब उक्त राजा महाराजको उक्त राजमन्दिरके भीतर केवल आनन्दरूप सिंहासन पर "अहंब्रह्माऽस्मि" भावसे साक्षात् यथार्थ अनुभव रूप दर्शनकर अभेदतासे परमानन्द सुखको प्राप्त होताहै। अतएव हे सौम्य! उसराजाके दर्शनार्थ तुमको जो जाना है सो उक्त कोशोंको उल्लंघन करते अन्तरको जाना है, क्योंकि "कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्" इस

श्रुतिप्रमाणसे उक्तप्रकार अन्तरमुख चलनेसेही आत्माका दर्शन होवे है) ॥ अरु, सत्य, ज्ञान (चैतन्य), अनन्त, अदृश्यादि धर्म वाले स्वाभाविक आनन्द स्वरूप अजन्मा अमृत अभय अविनाशी अद्वैत,ब्रह्मरूप फलको प्राप्तहोके "(इमाँल्लोकान् कामान्नी कामरूप्यनुसञ्चरन्। एतत्सामगायन्नास्ते। हा३वु हा३वु हा३वु "। (कामान्नी, कामरूपीहुआ, इन लोकों के अर्थ विचरता हुआ हावु, हावु, हावु इस सामका गायन करताहुआ स्थित होताहै) अर्थात् (उक्तप्रकारका विद्वान् ब्रह्मविद्याके विषय) अद्वैत ब्रह्मरूप फल को प्राप्तहोके, कामान्नी (अर्थात् कामनाके अनुसार अन्नको पावने वाला)। अरु कामरूपी (अर्थात् कामनाके अनुसार रूपको धारने वाला) होयके इन पृथिव्यादि लोकोंके अर्थ विचरताहुआ। (अर्थात् "(लोकैषणायाश्चव्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति)" इस बृहदारण्य की श्रुतिप्रमाण लोकैषणा कि जिस विषे पुत्रैषणा अरु वित्तैषणाका अन्तरभावहै, तिसको त्यागके भिक्षान्न भोजनकरता हुआ विचरताहुआ, अर्थात् सर्वात्मरूप से इनलोकोंको आत्मपने करके अनुभव करता हुआ) । , हावु, हावु, हावु, इस साम को गायन करता हुआ स्थित होताहै। प्र० । काहे को इस साम को गायन करताहुआ स्थितहोताहै,।उ०। (सर्वत्र सर्वविषे) समरूप होने से ब्रह्मही साम है । (अर्थात् "समो नागे समो मशके" "विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणेगविहस्तिनि , शुनिचैवश्वपाकेच पण्डिताःसमदर्शिनः" इत्यादि श्रुति स्मृतियों के प्रमाण से अव्याकृतसे लेके तृण पर्यन्त सर्वमें समरूपसे एक अद्वैत चैतन्य आत्माही सुशोभितहै। ताते साम नामवाले आत्माको ही गायन करताहै)। तिस सर्वसे अनन्य ब्रह्मरूप सामको सर्व लोकों के हितार्थ,आत्मज्ञान के फल अतिशय कृतार्थपने को गायन करता हुआ। (अर्थात् एक अद्वैत चैतन्य आत्मा की सर्वत्र समता को लखावताहुआ)। स्थित होताहै । अरु यहां तीनबार हावु हावु हावु, ऐसे कहाहै,सो अहो! इस आश्चर्यरूप अर्थविषेवर्त्तमानहुआ

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादो ३ अहमन्ना दो ३ अहमन्नादः। अह छंश्लोककृदहछंश्लोककृदह छंश्लोककृत्। अहमस्मिप्रथमजोऋता ३ स्य। पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्यना ३ भायि। योमाददाति स इदेव मा ३ वाः। अहमन्नमन्नमदन्तमा ३ द्मि। अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां ३। सुवर्ण ज्योतिः। य एवं वेद। इत्युपनिषद् राध्यतेविद्युति। मानवान् भवत्येको ह्या ३ वु य एवं वेदैकश्च ४६॥

अत्यन्त विस्मय (आश्चर्य) के जनावनेके अर्थ है॥ "आश्चर्यो-वक्ताकुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्य्योज्ञाता कुशलानुशिष्टः" "आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेन" इत्यादि श्रुति स्मृतियोंकेप्रमाणसे ४८॥

हेसौम्य!। प्र०। यह विस्मय कौनहै,। उ०। अद्वैत आत्मारूप निरंजन हुआभी, "। अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्, अहमन्नादो ३ अहमन्नादो ३ अहमन्नादः। अहछंश्लोककृदहछं श्लोककृदहछं श्लोककृत्"। (मैं अन्न हौं, मैं अन्न हौं, मैं अन्न हौं। मैं अन्नादहौं,मैं अन्नादहौं,मैं अन्नादहौं। मैं श्लोकका कर्त्ता हौं,मैं श्लोकका कर्त्ता हौं, मैं श्लोकका कर्त्ता हौं,) अर्थात् श्लोक जो अन्न अरु अन्नादका संघाततिसका कर्त्ता चैतन्य मैंहीं हौं। अथवा अन्नादरूपजोअन्यतिसके अर्थ हुये अनेकरूप जे अन्नकेही संघात तिनका परार्थ रूप हेतु करके कर्त्ता मैंहीं हौं। और यहां तीनवार जो कथन है, सो विस्मयपने के प्रख्यात करने के अर्थहै। किंवा "। अहमस्मि प्रथम जो ऋता३ स्य, पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्यना ३ भायि, यो मा ददाति स इदेव मा ३ वाः, अहमन्नमन्नमदन्तमा३ द्मि, अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां ३, सुवर्ण ज्योतिः"। (मैं ऋतरूप इसके पूर्व उत्पन्न हुआ हौं, देवताओं से पूर्व अमृतका नाभिहूं, जो मुझको देताहै सो मुझको रक्षण करताहै, अन्नके भक्षण करनेवालेको मैं अन्नही

भक्षण करता हौं, मैं भुवनको भक्षण करताहौं, प्रकाशवान् मेरा ज्योतिहै) अर्थात् मैं ऋत कहिये मूर्त्त अमूर्त्त, रूप इस जगत्के प्रथम उत्पन्नहुआ हिरण्यगर्भ हूं, अरु व्यष्टिरूप देवताओं से पूर्व विराट् रूपही हौं, अरु मैं अमृतका नाभि (मध्य)हौं अर्थात् प्राणियों का अमृतभाव मेरे बिषे स्थितहै । अरु जो कोई एक मुझ अन्नरूपको किसी अन्नार्थीके अर्थ देता है (अर्थात् मुझ अन्नको किसी जिज्ञासेके प्रति अन्नरूपसे उपदेशकरताहै)सो ऐसे अविनाशी रूप हुयेभी मेरी रक्षा करता है । (अर्थात् अमृतवत् सर्व का जीवन जो अन्नरूप ब्रह्म तिसको जो पुरुष किसी क्षुधित अन्नार्थी के अर्थ देताहै सोई उसअन्नरूप ब्रह्म जो सर्वका जीवन हुआ आप अविनाशी है तिसकी रक्षा करताहै क्योंकि अन्नार्थी के अर्थ जो अन्नका देनाहै सोई उस अन्नकीसाफल्यता रूप रक्षाहै, अथवा उस अन्नार्थी को ब्रह्मसे अभिन्नहुये उसकी जो अन्नदान से रक्षा करनी है सोई उस अविनाशीरूप ब्रह्मकी रक्षाहै अथवा ब्रह्मको जो अधिकारी जिज्ञासुप्रति अन्नरूप से उपदेश करना है सोई उस अविनाशीरूप ब्रह्मकी रक्षाकरनी है क्योंकि अधिकारीके प्रति जो उपदेश होताहै सो अपने निरादर पनेरूप भयको पावतानहीं।)अरु जो कोई अन्य (अविद्वान्) मुझ अन्नको अर्थियोंके अर्थ समयके प्राप्तहुये न देके अन्नकोभक्षण करताहै। "(अर्थात् जो अविद्वान् पुरुष अपने भोजन के समयआय प्राप्तहुये जे अन्नार्थी अतिथि अभ्यागत तिनको अन्न न देके आपही अन्नको भक्षण करताहै) । तिस अन्नको भक्षण करनेवाले पुरुषको मैं अन्नही उलटाभक्षण करता हौं । (अर्थात् गृहस्थ के यहां जो भोजनार्थ अन्नपाक होताहै, तिस सिद्ध हुये अन्नमें से प्रथम गार्हपत्याग्नि (रसोई के व पाकशालाके स्थानका अग्नि) बिषे बलि वैश्वदेव कर्म की आहुति, अरु प्राप्तहुये अतिथि अभ्यागत के जठरका वैश्वानरनाम अग्नि 'जोकि वैश्वानरविद्या के ज्ञाता विद्वान् के भोजन के निमित्त से सर्वात्मरूप से भोक्ता

हुआ समस्त जगत्की तृप्ति करनेवालाहै, तिसमें भिक्षान्नरूप आहुति देने से अवशेष रहा जो सिद्धान्न सो " यज्ञशिष्टामृतभुजो वा यज्ञशिष्टाशिनःसन्तो" इत्यादिप्रमाणसे अमृतरूप होता है, अरु तिस यज्ञशिष्ट अन्नका भोजन करनेवाला विद्वान् ब्रह्मलोकको प्राप्तहोता है। वा सर्व पापों से छूटता है अरु जो विद्वान् से अन्य अविद्वान् गृहस्थ अपने गृहमें सिद्धहुआ जो अन्न तिस सिद्धान्न में से बलि वैश्वदेव की आहुति अरु अतिथि अभ्यागतको, भिक्षा, दिये विना जो आपही अन्न को भक्षण करताहै तब वो अन्न "भुञ्जतेतेत्वघंपापा येपचन्त्यात्मकारणात्" इत्यादि प्रमाणसे पापरूपहुआ, भक्षकका विनाशकर्त्ता विषके तुल्यहोताहै, एतदर्थ विद्वान् कहताहै कि जो पुरुष समयपर प्राप्त हुये अन्नार्थी अतिथिरूप जो मैं, कि जो " अतिथि देवोभव " इत्यादि श्रुतियोंने देवता के तुल्य पूजनीय लक्ष करायाहै, तिसको अन्न न देके आपही उस अन्नको भक्षणकरताहै तिस भक्षणकर्त्ता पुरुषको मैं अन्नही (उसके उदरमें अजीर्णादि दोष विकार प्रकटकर उस पुरुषको भक्षणकरताहौं) ॥ यहां वादी कहता है कि, जबऐसेही है (कि जैसे तुम कहतेहो) तब मैं सर्वात्मभावकी प्राप्तिरूप मोक्षसे भयको पावताहौं, मुझको संसारही होवो। जिसकरके मुक्तहुआभी मैं अन्नरूपहुआ अन्नकाही भक्ष्यहोवोंगा, ताते मैं मोक्षसे भयपावताहौं, तहां सिद्धान्तीकहताहै कि, हे वादिन्! तू भय मतकर क्योंकि सर्वकामों के भक्षणको व्यवहार का विषयहोने से, यह अविद्वान् अन्न अरु अन्नादादिरूप अविद्या के किये व्यवहारके विषयको भक्षणकरता है, अरु विद्यासे ब्रह्मभावको प्राप्तहुआ जो विद्वान्है तिसको (आत्मासे) द्वितीय अन्य वस्तु है नहीं कि जिसकरके भयकोप्राप्तहोवे, एतदर्थ मोक्षसे भय करनेकेयोग्य नहीं है ॥ प्र० ॥ जब ऐसेही है, तब यह विद्वान् "मैं अन्नहौं—३, मैं अन्नादहौं—३, इसप्रकार यह क्या कहता है, ॥ उ० ॥ जो यह अन्न अरु अन्नादादिक स्वरूप कार्यरूप व्यवहार

है सो व्यवहार कार्यरूपही है. परमार्थवस्तु नहीं, सो व्यवहार ऐसाहुआभी ब्रह्मरूप निमित्त है ब्रह्मविना असत्है । [अर्थात् अध्यस्तकार्यकी जो व्यावहारिक सत्ताहै सो वास्तव में असत् है तथापि जो उसकी सत्यता प्रतीतिमात्र भासती है सो ब्रह्मरूप सत्य अधिष्ठानके आश्रयहुई भासती है अरु सत्यरूप अधिष्ठान विना बन्ध्यासुतवत् असत् है] । इसप्रकार होनेकरके विद्वान् के सर्वात्मभावकी स्तुतिके अर्थ "मैं अन्नहों, मैं अन्नहों, मैं अन्नहों" "मैं अन्नादहों, मैं अन्नादहों, मैं अन्नादहों" इत्यादिरूप यह ब्रह्म विद्याका कार्य्य कहते हैं । [अर्थात् विद्वान्का सर्वात्मभाव कैसे है इसका भी किञ्चित् बुद्ध्यनुसार विचार कर्त्तव्य है 'एक अद्वैत, इस शब्दकाअर्थ सजातीय विजातीय स्वागतआदि सर्व भेद से रहित निर्विकल्पवस्तुको लखावे है अरु 'सर्व, इस शब्दका जो अर्थ है सो एक अद्वैतशब्दके अर्थ से विपरीतहुआ नानात्वका वा संघातका वा समुदायका वा भेदोंकाबोधकहै, ताते एक इसशब्द के अर्थ में सर्व इसशब्दके अर्थकाप्रवेश होवेनहीं, ताते 'सर्वात्म, इस शब्दमें जो आत्मशब्द के साथ सर्व शब्दका कथनहै सो कथनमात्रही है, जैसे एक मृत्तिकामें उससे अभिन्नहुये घट सरावादि हैं, तैसे भी एक अद्वैत निराकार परिपूर्ण आत्माविषे सर्वशब्दका विषयनहीं अरु रज्जुमें सर्पवत्भी अद्वैत निराकार आत्मा में सर्व शब्दका अर्थ नहीं क्योंकि अदृश्य में दृश्यकी अरु निराकार में साकारकी भ्रान्ति होवेनहीं, अरु जिन शास्त्रकारों ने एक अद्वैत निराकार आत्मा में मृत्तिका में घटादि अरु रज्जु में सर्पादिवत् सर्व शब्दकाविषय नानात्वमाना है तिन्होंने मायाको स्वीकारकरके मानाहै ताते उनकाकथन मायामात्र है अरु, या, मा, सा माया अर्थात् जो वास्तव में होवेनहीं केवल कहनेमात्रही होवे सो माया अरु ऐसी कथनमात्रही जो माया सो शुद्ध एक अद्वैत आत्माविषे कल्पकके अभावसेहै नहीं, अरुअमायी (मायारहित) शुद्ध आत्माके अनुभवमें मायामात्रभी नानात्व नहीं, ताते केवल

अविद्या करके कल्पित नानात्व है परन्तु अविद्या जब अपने आश्रय शुद्ध अद्वैत आत्मा में परिणामहोती है तब अविद्यारूप कल्पक के अभावहुये कल्पनामात्रभी नानात्वनहीं 'जैसे रज्जुके ज्ञानमें जब रज्जुका अज्ञान अपने परिणामभावको पावता है, तब अपने कल्पकके अभावसे कल्पित सर्पभी अभावहोताहै तैसे। अर्थात् तमकी अरु अज्ञानकी वस्तुको यथार्थ न लखावने बिषे एकताहै अरु प्रकाश अरु ज्ञानकी वस्तुको यथार्थ लखावने बिषे एकताहै क्योंकि बाह्यके तमको पायके तिसके आश्रय अन्तरका अज्ञानरूप तम रज्जुरूप वस्तुको सर्पादिरूपसे अन्यथाकर देखावेहै, अरु जब बाह्यका दीपकादिकों के निमित्तका प्रकाश होता है तब तिसके आश्रय अन्तरका ज्ञानरूप प्रकाश रज्जुरूप वस्तुको ज्योंकीत्यों लखावे है, अरु जब बाह्यका प्रकाश अरु अन्तर का ज्ञान एकत्रहोते हैं तब बाह्यका तम बाह्यके प्रकाश में अरु अन्तरका अज्ञान अन्तर के ज्ञानमें परिणामको पावते हैं तब उस निर्विकार शुद्ध रज्जुबिषे कल्पकके अभावहुये पुनः भ्रान्तिमात्रभी सर्परहेनहीं, अरु जैसेसर्पका कल्पकअज्ञान ज्ञानरूप परिणामको पावताहै तब वो कल्पित सर्प अपने रज्जुरूप अधिष्ठानमें परिणाम कोपावताहै। सो अपने कारण कल्पकअज्ञानके अभावहुये पुनः वो भ्रान्तिमात्रसर्पभीउत्पन्नहोवेनहीं,अरुउसशुद्धरज्जुकोतोकालत्रय मेंभीसर्पका गंधमात्रभीनहीं वो अपने एकअद्वैत स्वरूप के यथार्थ अनुभवमें दूसरे सर्पको जानतीभी नहीं जो सर्प क्या अरु कैसा होताहै तैसेही एक अद्वैत आत्मा को सर्वत्र परिपूर्णतासे घन शिलावत् यथार्थअनुभव करताहै तिसविद्वान्के अनुभवमें सिवाय एक अपने आप अद्वैत परिपूर्ण अखण्ड आत्माविषे सर्व शब्दके विषयका गन्ध भी नहीं, ताते उसके सर्वात्मअनुभव में यह भाव नहीं कि कुछ सर्व शब्द का विषय है अरु तिसका मैं आत्मा होनेसे सर्वात्मा हौं, किन्तु उसके अनुभव में ऐसा है कि मेरे एक अद्वैत परिपूर्ण स्वरूप में अज्ञान के अभावसे सर्व शब्द

का विषय कल्पनामात्र भी नहीं ताते वास्तव करके मैं सर्व का आत्मा वा सर्वरूप आत्मा नहीं सर्व विकल्प कल्पनासे रहित अवाच्य निर्विकल्पहो अरु जो अज्ञानकरके मायाके आश्रय मुझ बिषे नानात्व की कल्पना करते हैं तिस कल्पनाका आश्रय अधिष्ठान होनेसे उनके अनुभवका नानात्व ' जो वास्तव करके मेरे बिषे गंधमात्रभी नहीं, सोभी मैंही हौं ताते मेरेबिषेसर्व शब्द के विषयके अभावसे जो हौं सो मैंही हौं अरु अविद्या करके कल्पित अरु मेरे वास्तव स्वरूप में अत्यन्त अभावरूप अविद्वान्करके भासमान अन्न अरुअन्नाद सो भी मैंही हौं। इसप्रकार सम्यक् आत्मानुभावी विद्वान् अपने वास्तवस्वरूप में सर्वशब्दके विषयको न देखताअपनेसर्वात्मापनेको अनुभवकरता है । एतदर्थ उक्त प्रकारके ब्रह्मभूत विद्वान्को अविद्याकेनाशहुये अविद्यारूप निमित्तकाक्रिया भयादिकदोषोंका विद्वान्के बिषे गंधमात्रभीनहीं। इस अभिप्रायसे ब्रह्मभूत विद्वान् पुनः कहताहै कि ब्रह्मादिक भूतों करके भोगने योग्य वा जिसबिषे भूत होवेहैं ऐसाजोभुवन है तिस । चतुर्दशादि । सर्व भुवनोंको मैं परमेश्वररूपसे संहार [ईश्वर रूपताके ज्ञानसे मैं द्वैतका बाधकरताहौं, तातेमुझको भयका कारण नहीं । । अर्थात् " द्वितीयाद्वैभयंभवति " इत्यादि प्रमाणसे भयकाहेतु अज्ञानजन्य द्वैतभावहै, तिसका विद्वान् ने एक अद्वैत सर्वात्मज्ञानकरके निःशेष बाधाकियाहै ताते उस विद्वान्को भयका हेतु रंचकमात्र भी नहीं, यह अर्थ है] करताहौं अरु सूर्य्यवत् एकही कालबिषे प्रकाशवान् मेरा ज्योति है। अरु "य एवंवेद, इत्युपनिषद् राध्यते विद्युति, मानवान् भवत्येको हा३ वु ॥ य एवंवेदैकश्च " (यह उपनिषद् है जो ऐसे जानता है, सिद्ध होताहै मानवान् होताहै, एकहावु जो ऐसे जानताहै अरु एक है) अर्थात् यह द्वितीय अरु तृतीयवल्ली करके कथन किया उपनिषद् , कहिये परमात्मविषयक ज्ञान, है । तिस इस उक्त प्रकार की उपनिषद् को " शान्तोदान्तउपरतस्तितिक्षुः

समाहितो भूत्वा॑शान्त (बाह्येन्द्रियकी उपरामता) दान्त(मन का दमन वा तृष्णादि दोषोंकी निवृत्ति) उपरति (पुत्रादि एषणाकी निवृत्ति) तितिक्षा (शीतोष्णादि द्वंद्वकी सहिष्णुता) समाहित चित्त (चित्तकी एकाग्रता) इसप्रकार साधन सम्पन्न होयके। भृगुवत् महान् तप (एकाग्र चित्तसे सम्यक् विचार) को आश्रय करके जो उक्त प्रकार। ब्रह्म आत्मा की अभेदताको सम्यक् प्रकार। जानता है, तिसको अग्रिम कथित फल होता है। सिद्ध होताहै। अर्थात् उस साधन सम्पन्न विचारशील विद्वान् पुरुषको अपने आपविषे सर्व्वात्मभाव अनुभव सिद्ध होताहै। मानवान् होताहै। अर्थात् उस ब्रह्मभूत पुरुषको लोक बिषे विवेकी पुरुष ब्रह्मपनेका मानदेतेहैं। एकहातु।एकहीविस्मय (आश्चर्य)है। जोपुरुषअनादिकालकेअविद्याकरकेअल्पज्ञजीवभाव को पाया सताजन्मजरामरणादिकों के क्लेशोंको अनिवार्यतासेपावता अरु अपने किये शुभाशुभ कर्मोंके आश्रय स्वर्गनरकादिकोंमें सुखदुःख भोगता बारम्बार देवतासे तृण पर्यन्त शरीरोंको धारता तापत्रयरूपअग्निकरके जलताहायहायकरता रोवतासुखप्राप्तिकी कामनासे दीनहुआ वृक्ष पाषाणादिकोंको पूजता कामनाकी असिद्धि अरु अनिवृत्तिसे सर्व ओर भ्रमता सर्वकरके तिरस्कारपाया अपनेको पापी अपराधी अतिदीन नारकी ईश्वरादिकोंका किंकर मानतारहा। सो पुरुष ब्रह्मविद्याके प्रताप से अपने स्वरूप को यथार्थ साक्षात् अनुभवकरईश्वरादिकोंकाभी ईश्वर ब्रह्मभूतहुआ ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंकरके पूज्यसर्वात्मभावसे स्थित अभय अक्रियअविनाशीअजअद्वय सत् चैतन्यआनन्दअनन्तपरमानन्दमय होताहै, यही ब्रह्मविद्याकी अलौकिक विलक्षण आश्चर्यरूपाशक्ति है।। इसप्रकार जानताहै। अरु ऐकहै ॥।अर्थात् अपने आप यथार्थ आत्मानुभव में सर्व शब्दके विषयको देखता सापेक्षिक एकसंख्या से रहित सर्व संख्यातीत एकअद्वैत अर्थात् द्वैतसंख्याकी सापेक्षिक जो एक संख्याहै तिस एक संख्यातीत सम अद्वैत है। ॥

भृगुस्तस्मैयतो विशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व तत्रयोदशान्नं प्राणंमनो विज्ञानमितिविज्ञाय । तन्तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति । सैषा दशान्नं ननिन्द्यात् । प्राणःशरीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहुकुर्वीत । पृथिव्यामाकाश एकदशैकादश । न कञ्चनैकषष्टिरेकान्न विंछंशतिरेकान्नविंछंशतिः । सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तुमाविद्विषावहै । ॐशान्तिःशान्तिःशान्तिः भृगुरित्युपनिषत् शन्नोमित्रः । आवीद्वक्तारम् ॐशान्तिः इतिदशमोनुवाकः ५० ॥

इतिभृगुवल्ली इति तैत्तिरीयोपनिषत्सम्पूर्णम् ॥

हे सौम्य ! "। सह नाववतु, सहनौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै "। ६सो (परमात्मा) हमारी (गुरु शिष्यकी आसुरी सम्पदासे) ; रक्षाकरो, अरु सो (परमात्मा) हम (गुरु शिष्यको अपना अभेदानन्द) भोगावो, अरु सो (परमात्मा हमारे विषे निदिध्यासन समाधिका) सामर्थ्यकरो, अरु (हे परमात्मन् !) हमारा अध्ययन किया (उपनिषद् अध्यात्मशास्त्र ब्रह्मविद्या सो) अविद्यारूपा अपराविद्या प्रवृत्तिशास्त्र, तिसकी विस्मृति पूर्वक । । अर्थात् " अन्यावाचो विमुञ्चथ" यह श्रुति ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्र से इतर भाषण करनेका निषेध (त्याग) कहतींहै ताते, अरु ब्रह्मविद्याके विचारवान्को अपराविद्या प्रवृत्तिशास्त्रकी स्मृति विक्षेपकारीहै ताते। । तेजस्वीहो, अरु हम शिष्य अरु आचार्य (किसीप्रकारके भी निमित्तको पायके) परस्परमें द्वेषको न प्राप्तहोवें, । ॐ (यह सत्य है । अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति विषे "। एतदालम्बनंश्रेष्ठम्" यह प्रणवोपासनाही सत्य (मुख्य) है यह मैं सत्य कहताहौं "। ॐ शान्तिः शान्तिःशान्तिः"। शान्तिहोवो,शान्तिहोवो, शान्तिहोवो ॥

यह जो उपनिषद् विद्या के अध्ययन वा पाठकरनेके आदि अन्त में शान्तिपाठ करना कहाहै तहां पूर्व के शान्ति पाठ से विद्याके समस्त अध्ययन होनें पर्यन्त आध्यात्मिकादि क्लेशकी निवृत्ति के अर्थ परमात्मासे प्रार्थनाहै,अरु अन्तके शान्तिपाठसे अध्ययन कीहुई विद्याकीउक्त विघ्नोंसे विस्मृतिकी निवृत्तिकेअर्थ परमात्मासे प्रार्थनाहै। अरु जहांकहीं विघ्न विक्षेपहोताहै तहां आध्यात्मि-कादि क्लेशोंके निमित्तसेही होताहै,एतदर्थ मुख्यकरके उक्त विघ्नों की निवृत्तिके अर्थही आदिअन्तमें परमात्माकी प्रार्थनारूप शान्ति पाठहै॥ हे सौम्य! इस मन्त्रके आरंभमें " भृगुस्तस्मै "भृगु तिस के अर्थ, यहां से लेके "एकान्नविंशति"एक उन्नीस १९, यहां पर्यन्त जो इस तृतीयाध्यायके मन्त्रकी स्मरणार्थ शृङ्खलाहै, तिस को निरुपयोगी जानके भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्यजीने अर्थकिया नहीं, अरु तिसही अभिप्रायसे आनन्दगिरिने, वा अन्य भाषाटी-काकारोंने भी तिसका अर्थ कियानहीं। एतदर्थ ज्येष्ठ श्रेष्ठोंकी परम्परासे मुझ अल्पज्ञने भी उक्त मन्त्रों के अर्थ की कल्पनाकिया नहीं॥ १०। ५०॥ इति दशमोऽनुवाकः १०॥

इति तैत्तिरीयोपनिषद्गत भृगुवल्लीनामक
तृतीयोध्यायः समाप्तः॥

इति श्रीस्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती का अतिअल्पज्ञ शिष्य
यमुनाशङ्कर नामक नागरब्राह्मण कल्पित यह तैत्तिरीय
उपनिषद् का भाषाभाष्य समाप्त हुआ॥

ॐ हरिः॥ ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणम्॥

लखनऊ मुंशीनवलकिशोर (सी, आई, ई) केछापेखानेमेंछपी॥
सितम्बर सन् १९०६ ई०॥



इस मतबे में जितने उपनिषद् छपे हैं उनमें से कुछ नीचे लिखे हैं॥

कठवल्ली उपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ≡)॥

इस उपनिषद् में गुरु शिष्यसंवाद द्वारा श्रीवाजश्रवा ऋषीश्वर के पुत्र श्रीउद्दालक ऋषिने जिसप्रकार से विश्वजित् नामा यज्ञ की और उसीयज्ञ के दक्षिणा में ऋत्विजादि ब्राह्मणों को अपरिमित धन व गौओंको दान दिया और उसी यज्ञ में अपने परमप्रिय पुत्र ज्ञानशिरोमणि श्रीनचिकेता को मृत्यु के अर्थ दानदिया और नचिकेता यमालयमें गया और मृत्यु ने सावधान पूजन किया और परस्पर वार्त्तालाप हुआ वह सब वृत्त संवित मंत्रों में वर्णित है॥

माण्डूक्योपनिषद् भा० टी०सहित क़ी० ॥≈)

ॐ कारस्वरूप का प्रतिपादन व ब्रह्मकी आत्माकी अभेदताका निरूपण आगम, यवैताख्य, अद्वैताख्य व अलातशान्ताख्य इन चार प्रकरणों में निरूपण कियागया है अवलोकन करने योग्य है॥

ऐतरेयउपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ≡)

यह उपनिषद् ऋग्वेद के ब्राह्मणभाग से सम्बन्धित है—इस में मुख्य ब्रह्म विद्याका वर्णन है॥

ईशावास्योपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० –)॥

जिसे वाजसनेयीसंहिता भी कहते हैं-इस उपनिषद् में यावत् नाम रूपात्मक जगद्भाव है सब ईशही में घटित कियाहै॥

केनोपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ≈)

अब इसबार अत्यन्त शुद्धतापूर्वक सरलभाषा तिलक से युक्त मुद्रित की जाती है– इसमें आत्मविद्योपदेश श्रीप्रजापतिद्वारा वर्णन किया गयाहै॥

छांदोग्यउपनिषद् भा० टी० सहित क़ी० ॥≈)॥

इस उपनिषद् में इन्द्रियादिकों के संघात बिषे स्थित प्राणों की ज्येष्ठताका व श्रेष्ठताका एक आख्यायिका द्वारा प्रतिपादन है-मंत्रों के नीचे सरल देशभाषा में सुन्दर तिलक कियागया है॥